सत्साहित्य-प्रकाशन

पड़ोसी देशों में

दक्षिण-पूर्वी एशिया, अफगानिस्तान तथा
नेपाल की यात्रा का सजीव वर्णन

यशपाल जैन

•

•

१६६५
सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

जिसकी गोद में आज भी भारतीय
संस्कृति की अनमोल निधियां
सुरक्षित हैं

उस पावन भूमि
को

—यशपाल जैन

प्रकाशकीय

हमने अपने यहा से अवतक वहुत-सा यात्रा-साहित्य प्रकाशित किया है। उसमे कई पुस्तके भारत के विभिन्न स्थानो के प्रवास मे सबधित है और कुछ अमरीका, रूस, जापान, यूरोप आदि के प्रवासो से। इन सवकी विशेषता यह है कि ये उन व्यक्तियो द्वारा लिखी गई है, जिन्होने स्वय यात्रा की थी। अत ये सब पुस्तके जहा प्रामाणिक है, वहा अत्यन्त सजीव और रोचक भी हैं।

हमे हर्ष है कि दक्षिण-पूर्वी एशिया, अफगानिस्तान तया नेपाल के प्रवास की यह पुस्तक उस माला मे पाठको को उपलब्ध हो रही है। इसके लेखक कुछ समय पूर्व स्वय वहा गये थे और उन्होने वर्मा, थाईलैण्ड, कम्बोडिया, दक्षिण वियतनाम, सिंगापुर और मलाया, इन छ देशो मे भ्रमण किया था। उससे पहले वह अफगानिस्तान तथा वाद मे नेपाल भी गये थे। इन्ही सब देशो का हाल उन्होने इस पुस्तक मे दिया है।

लेखक की कई यात्रा-पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है और यह प्रसन्नता की वात है कि उनमे से प्राय सभी के एक से अधिक सस्करण हो गए हैं।

हमे विश्वास है कि यह पुस्तक सभी क्षेत्रो मे चाव से पढी जायगी।

—मत्री

निवेदन

प्रस्तुत पुस्तक मे मैंने यात्रा-विवरण के साथ वर्मा, थाईलैण्ड, कम्बोडिया, दक्षिण वियतनाम, सिगापुर, मलाया, अफगानिस्तान तथा नेपाल, इन देशो की अधिक-से-अधिक जानकारी देने का प्रयत्न किया है। ये सब हमारे पडोसी देश है और इनके साथ भारत के बहुत ही पुराने सबध रहे है। भारतीय सस्कृति की अत्यन्त मूल्यवान निधिया आज भी इन देशो मे सुरक्षित है और वहा के निवासियो के जीवन पर आज भी भारतीय आचार-विचार का प्रभाव दिखाई देता है।

मेरी एक ही आकाक्षा है और वह यह कि अपने इन पड़ोसी देशो को हम भली प्रकार जाने और इनके साथ हमारे सास्कृतिक, साहित्यिक तथा भावनात्मक सबधो का आदान-प्रदान बढे।

दक्षिण-पूर्वी एशिया तथा अफगानिस्तान का वृत्तान्त एक लेख-माला के रूप मे 'नवभारत टाइम्स' पत्र के दिल्ली तथा बबई सस्करणो में प्रकाशित हुआ था। यद्यपि उस सामग्री मे बहुत से परिवर्तन कर दिए हैं और कई नये अध्याय जोड दिए है, फिर भी मैं उस पत्र के सम्पादक का इस अवसर पर स्मरण किये बिना नही रह सकता। मुझे हर्ष है कि सिगापुर, थाईलैण्ड तथा नेपाल की यात्रा मैं हाल ही मे फिर कर आया हू। विज्ञान की कृपा से यद्यपि हर जगह कुछ-न-कुछ परिवर्तन बराबर होते ही रहते हैं, तथापि किसी भी देश की मूल आत्मा आसानी से नही बदलती।

नेपाल का यात्रा-विवरण पहली बार प्रकाश मे आ रहा है। जिन बधुओ से इस पुस्तक की तैयारी मे मुझे सहायता मिली है, उनका मै आभार मानता हू।

७/८, दरियागज,
दिल्ली।

विषय-सूची

दक्षिण-पूर्वी
एशियाई देशों में

: १ :

यात्रा की पृष्ठभूमि और प्रस्थान

एशिया के मानचित्र पर जब हमारी निगाह जाती है तो हमे भारत के दक्षिण-पूर्व मे कई देश और द्वीप दिखाई देते हैं। इन देशो और द्वीपो के साथ भारत के सबध बहुत पुराने समय मे रहे है। दुनिया के दूसरे देशो मे अपने सम्पर्क स्थापित करने और अपनी सस्कृति की छाप उनपर डालने की इच्छा से भारतीय आर्यों ने विदेशो की यात्राएं आरभ की थी। उन्होने तरह-तरह के जहाज और नावे बनाई, जल-मार्गो की खोज की और दूर-पास के बहुत-से देशो मे अपना आना-जाना शुरू किया। वैदिक-काल तथा महाकाव्य-युग मे हमे लम्बी-लम्बी यात्राओ के विवरण मिलते है। ऋग्वेद मे ऋषि तुग्र द्वारा अपने लडके भुज्यु को एक बडे जहाज मे बिठाकर शत्रुओ से लडने भेजने का उल्लेख आता है। उस काल मे भारत का समुद्री व्यापार मिस्र, बेबीलोन आदि से होता था।

रामायण मे भी आर्यो की जल-यात्राओ के प्रसग आते हैं और जहाजो द्वारा दक्षिण-पूर्व के देशो और द्वीपो मे जाने के वर्णन मिलते है। किष्किधा-काड मे सुग्रीव वानरो को आदेश देता है कि वे पूर्व के द्वीपो मे जाय। यवद्वीप (जावा) और सुवर्ण द्वीप (सुमात्रा) मे भी जाने के उल्लेख है। रामायण मे लोहित सागर का जो प्रयोग हुआ है, वह आज के 'रेड सी' (लाल सागर) के लिए है।

महाभारत तथा बौद्धग्रथो मे भी समुद्री यात्राओ की अनेक स्थानो पर चर्चा आई है।

ईस्वी सन की पहली शताब्दी मे दक्षिण-पूर्व के टापुओ मे भारतीय उपनिवेश स्थापित होने आरभ हुए और उनका सिलसिला कई सौ साल तक जारी रहा। दक्षिण भारत के निवासियो ने, जिनका समुद्र के साथ निकट का सबध था, इस दिशा मे सबसे पहले कदम उठाया। ये लोग मलाया, जावा, सुमात्रा, कम्बोडिया, बोर्नियो आदि स्थानो पर

जाकर बस गए। वे अपने साथ भारतीय सस्कृति और कला को भी लेते गए। ब्रह्मदेश, स्याम तथा हिन्द-चीन मे भारतीयो की वडी-वडी बस्तिया बसी। उनमे से बहुत-सी बस्तियो और नगरो के नाम भारत से लिये गए।

उपनिवेश बसानेवाले इन भारतीयो की उन टापुओ मे रहनेवालो के साथ शुरू मे अवश्य टक्कर रही होगी, लेकिन आगे चलकर वे आपस मे घुलमिल गए। फिर तो उन टापुओ मे हिन्दू-राज्य और हिन्दू-साम्राज्य स्थापित हुए। हिन्दुओ के प्रभुत्व के उस युग मे वहा भारतीय सस्कृति और कला को वडा प्रोत्साहन मिला। कम्वुज, श्रीविजय, अकोर, मज्जापहित जैसे विशाल नगरो का निर्माण भारतीय कारीगरो द्वारा हुआ। उन्होने कलापूर्ण मदिर भी बनाये, जिनके अवशेषो मे बची हुई कला को देखकर आज भी दुनिया के लोग दातो तले उगली दबा लेते है।

बाद मे जब वहा बौद्ध शासक पहुचे तो सत्ता के लिए हिन्दुओ से उनकी मुठभेड हुई। धीरे-धीरे बौद्धो का भी प्रभाव बढा। कोई चौदह सौ बरस तक हिन्दू और बौद्ध राज्यो का अस्तित्व बना रहा और आपस मे सघर्ष चलता रहा। विशाल या बृहत्तर भारत के इतिहास की वह कहानी उतार-चढावो से भरी हुई है।

पद्रहवी सदी मे इन टापुओ पर मुसलमानो का अधिकार हो गया। उसके कुछ समय बाद पुर्तगाल, स्पेन और हॉलैण्ड वाले वहा पहुचे, फिर अगरेज आये और अत मे अमरीकी, इस तरह समय-समय पर अनेक देशो का हाथ इन टापुओ में रहा।

पूर्व के ये देश यद्यपि अब स्वतन्त्र हो गए हैं, तथापि आज भी वहा पर भारतीय सस्कृति एव कला की अमूल्य निधिया विद्यमान है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने ठीक ही लिखा है, "जिस प्रकार गगा और यमुना का जल स्वाभाविक रीति से मिलकर एक हो जाता है, उसी प्रकार भारतीय सस्कृति की धारा स्थानीय सस्कृति के साथ सर्वथा मिल गई अथवा मेघजल के समान वह स्याम और कम्बुज की सस्कृति के क्षेत्र मे बरस पडी। उसके स्वातिजल से स्थानीय शुक्तिया निर्मल मुक्ताओ से भर गईं। इन्ही उज्ज्वल मोतियो के दर्शन स्याम, कम्बुज आदि देशो के

प्राचीन सास्कृतिक चिह्नो मे मिलते हैं, किन्तु भारत के उस अमृत-वर्षण का वरदान देश और काल मे समाप्त नही हो गया। उसमे आज भी जीवन का उमगता हुआ रस भरा है। प्राचीन भारतवासी सास्कृतिक मेघ-वर्षण की कला मे अत्यन्त प्रवीण थे। उन्होने अपने चारो ओर के पडोसी देशो को उस अमृत-प्रोक्षण मे पवित्र कर दिया। भगवान राम के आर्य चरित्र और भगवान बुद्ध के उदात्त धर्म के जो प्रदीप पद्रह शती पूर्व इन देशो मे प्रज्ज्वलित हुए, वे आज भी प्रकाशित हैं।"

भारत और इन देशो मे समय-समय पर जो राजनैतिक परिवर्तन हुए, उनमे अद्‌भुत समानता मिलती है। भारत मे हिन्दू-राज्य स्थापित हुआ तो इन देशो मे भी हिन्दू-राज्य का विकास हुआ, भारत मे बौद्ध धर्म का स्वर ऊचा हुआ तो वहा भी बौद्ध धर्म की महत्ता बढी, भारत के शासन की बागडोर मुसलमानो के हाथ मे आई तो वहा भी मुसलमानो का प्रभाव बढा और अब जबकि भारत स्वतत्र हुआ, वे देश भी विदेशी सत्ता के जुए को कधे से उतारकर स्वाधीन हो गए।

आज जबकि यातायात के साधन पहले की अपेक्षा अधिक सुलभ और यात्राए अधिक सुगम हो गई है, हमे चाहिए था कि इन पडोसी देशो के साथ अपनी प्राचीन सास्कृतिक शृ खला को फिर से जोडते, उसे मजबूत बनाते, लेकिन ऐसा हुआ नही।

भौतिक समृद्धि की दृष्टि से ये देश बहुत पिछडे हुए है और वहा यूरोप तथा अमरीका जैसी चमक-दमक नही है। अत. इन देशो मे जाने का आकर्षण कम ही लोगो को होता है। जो भारतीय वहा गये हैं और जाकर बस गए है, उनमे से अधिकाश व्यापारी-वर्ग के है। उनके सामने कमाई का लक्ष्य है। अपनी सस्कृति, कला, इतिहास, पुरातत्त्व आदि मे उनकी अभिरुचि नही के बराबर है। यही कारण है कि इन देशो मे भारतीयो की पर्याप्त सख्या होते हुए भी वहा के लोकजीवन से भारतीय सस्कृति की धारा बडी तेजी से क्षीण होती जा रही है। आज हम अपने उस पुराने इतिहास को बहुत-कुछ भूल चुके है।

सन १९५७ मे यूरोप के प्राय. सभी प्रमुख देशो की यात्रा कर आने के बाद मुझे लगा कि अपने पडोसी देशो को भी देखना चाहिए, जिससे

पूर्वी और पश्चिमी इतिहास का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके और उनकी अद्यतन स्थिति का यथार्थ ज्ञान हो सके। कुछ साल पहले मेरे एक घनिष्ट मित्र थाइलैण्ड और कम्बोडिया हो आए थे। उन देशो मे भारतीय सस्कृति के अनुपम अवशेषो की बार-बार चर्चा करते हुए वह बताते थे कि वहा के लोगा के रहन-सहन, पर्व-त्योहार, साहित्य आदि पर हमारी सस्कृति का आज भी गहरा असर दिखाई देता है। उन सारी चर्चाओ का प्रभाव भी मेरे मन पर था।

मानना होगा कि दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशो के प्रवास के लिए इन सब बातो की प्रेरणा रही। सयोग से, कुछ दिन पहले मेरे परम मित्र, हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक, श्री विष्णु प्रभाकर ने बताया कि बगला के लोकप्रिय लेखक स्व० शरतचन्द्र चटर्जी की जीवनी लिखने के सिल-सिले मे उन्हें बर्मा की यात्रा करनी होगी, क्योकि शरत सन १९०३ से १९१६ तक वहा रहे थे। अपनी इच्छा की पूर्ति का अवसर देखकर मैंने न केवल उनके विचार का समर्थन किया, अपितु स्वय भी साथ जाने की इच्छा प्रकट की।

इसी बीच रगून से हमारे मित्र और अखिल बर्मा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के स्तभ डा० ओमप्रकाश तथा श्री सत्यनारायण गोयनका का निमत्रण मिला कि विष्णुभाई और मैं सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन मे भाग लेने वहा आवे। हम लोग तो जाने के लिए लालायित बैठे ही थे। झट निमत्रण स्वीकार कर लिया। अधिवेशन दीपावली के अवसर पर हो रहा था। इसलिए हमे प्रसन्नता हुई कि सम्मेलन के साथ-साथ एक विशेष त्योहार भी देखने का मौका मिलेगा।

लेकिन हमारी इच्छा पूरी नही हुई। बहुत-कुछ भाग-दौड करने पर भी समय पर वीसा नही मिला। जाने कैसे रगून मे बर्मी अधिका-रियो को भ्रम हो गया कि हम बर्मा के विषय मे सामग्री इकट्ठी करने आ रहे हैं और पता नही, वहा से लौटकर उस देश के बारे मे क्या-क्या लिख डालेंगे। इस गलतफहमी ने उन्हें इतना चौंका दिया कि कई महीने तक वीसा नही मिल सका। रगून के मित्रो ने सम्मेलन के अधि-वेशन की तिथिया बदली और अत मे निश्चय किया कि अधिवेशन होली

पर रखे, जिससे हम दिवाली नही देख सके तो दूसरे महत्त्वपूर्ण त्योहार को तो देख ही ले। उन्होने हमे सूचित किया कि ब्रह्मदेश की होली भारत की होली से एक महीने बाद आती है, अर्थात नववर्ष मे आरभ होकर चार दिन तक चलती है।

इस समाचार से हमे कुछ सतोष हुआ, पर जाने की बात तो तब हो सकती थी, जबकि वीसा मिले। उसकी अब भी कोई आशा न थी। फिर भी प्रयत्न चलता रहा। दिल्ली-स्थित बर्मी दूतावास के अधिकारी बार-बार आश्वासन देते थे, लेकिन उनकी लाचारी यह थी कि जबतक रगून से अनुमति न मिले, वे कुछ नही कर सकते थे। आखिर हारकर उन्होने कह दिया कि वीसा नही मिल सकेगा। हमने बर्मा के अपने तत्कालीन राजदूत को लिखा और एक बुजुर्ग मित्र ने भी दिल्ली मे कोशिश की, पर सच यह है कि हमने वहा जाने की आशा ही छोड दी। हम ही नही, रगून के हमारे मित्र भी निराश हो गए। मन बडा खिन्न हुआ, पर चारा ही क्या था ?

अचानक एक दिन दिल्ली के बर्मी दूतावास से फोन आया कि हमारा वीसा मजूर हो गया है, आकर ले जाइए। बडा विस्मय हुआ। खुशी भी हुई। सोती अभिलाषा फिर जाग उठी। पर तभी एक कठिनाई सामने आ गई। होली के लिए अभी कुछ महीने बाकी थे और वीसा की मियाद वीसा मिलने की तारीख से शायद एक महीने की थी। विष्णुभाई और मैं बर्मी दूतावास गये और अधिकारियो को कठिनाई बताई तो उन्होने कहा, "इसमे क्या बात है! जरूरी नही कि आप वीसा अभी लें। जब आपको जाना हो तब ले लीजिए।"

हमने उन्हें धन्यवाद दिया और होली की प्रतीक्षा करने लगे। इस बीच रगून के मित्रो को सूचना दी। उन्हे बडा हर्ष हुआ। उन्होने सम्मेलन की तिथिया अतिम रूप से निश्चित की। हमारी तैयारिया आरभ हुई। आयकर का प्रमाण-पत्र लिया, टीके लगवाकर स्वास्थ्य का प्रमाण-पत्र प्राप्त किया, हवाई टिकट की व्यवस्था की। सोचा कि कलकत्ते तक ट्रेन से जाय और वहा से हवाई जहाज से रगून पहुचें। इसी हिसाब से दिल्ली की एक प्रवास-एजेंसी से प्रबध कराया। कलकत्ते से रंगून

का वापसी टिकट लिया । विचार हुआ कि सुविधा होगी तो दूसरे देशो मे भी हो आवेंगे । सो एजेंसी से तय किया कि रगून से हमारी सूचना मिलने पर हमे बैंकाक (थाइलैण्ड), व्यनत्यान (लाओस), सियमरीयप और नामपेन (कम्बोडिया), सैगाव (दक्षिण वियतनाम), सिगापुर, क्वालालामपुर तथा पिनाग (मलाया) का टिकट भेज दें तथा पिनाग से बैंकाक होकर रगून तक का । एजेसी को पूरा चार्ट बनाकर दे दिया । १२ अप्रैल को कलकत्ते से रगून के लिए सीटे बुक हुई । इसी दर्मियान हमने वीसा ले लिया ।

६ अप्रैल, १६६० की शाम को रेल द्वारा दिल्ली से रवाना हुए । स्टेशन पर परिवार के सदस्यो तथा मित्रो ने बडी भावना और मगल-कामनाओ के साथ विदाई दी । ११ अप्रैल को सवेरे कलकत्ता पहुचे । वह दिन घूमने-घामने और मिलने-जुलने मे निकल गया । अगले दिन दोपहर को ११ बजे डमडम हवाई अड्डे पर पहुच गए । विमान ११-४० पर छूटता था ।

हवाई अड्डे पर सामान तुला, पासपोर्ट जाचे गए, स्वास्थ्य का प्रमाण-पत्र देखा गया, फिर कस्टम मे पहुचे । वहा सामान खुलवाकर देखा । सामान तो ठीक था, पर हमारी जेब मे ७५–७५ रुपये तथा उधर के देशो मे भेंट मे देने के लिए पाच-पाच रुपये के भारतीय सिक्के थे । हमने रुपयो के साथ उन सिक्को की भी घोषणा कर दी । उसपर कस्टम-अधिकारी बोला, "आप नियमानुसार कुल ७५ रुपये ले जा सकते हैं ।"

हमने कहा, "उससे ज्यादा हमारे पास हैं कहा ! सिक्के तो विदेशी बच्चो को भेंट मे देने के लिए हैं ।"

अधिकारी ने कहा, "जी नही, यह नही हो सकता । आप ७५ रुपये से एक पाई भी अधिक नही ले जा सकते ।"

बडा बुरा लगा । यह तो सरासर ज्यादती थी । हमने आग्रह किया तो उसने एक दूसरे अधिकारी को बुलाया और उसे सब हाल बताया । उसने थोडा सोचकर कहा, "ले भी जाने दो ।" लेकिन पहले अधिकारी के लिए शायद यह मान-अपमान का प्रश्न बन गया था । अहसान-सा करते हुए बोला, "अच्छा, पाच के नही, दो रुपये के सिक्के ले जाओ ।"

हमने ज्यादा बहस करना ठीक नही समझा और दो रुपये के सिक्के अपने पास रखकर बाकी अपने मित्र को दे दिए, जो हमे पहुचाने आये थे ।

कस्टम की खाना-पूरी होने पर हमने चैन की सास ली । दिल्ली की प्रवास-एजेसी ने बताया था कि हम अपने साथ ४४–४४ पौण्ड सामान ले जा सकते हैं । हमने उसी हिसाब से सामान रखा । कई जरूरी चीजें छोड दी । लेकिन हवाई अड्डे पर पता चला कि ६६-६६ पौण्ड तक ले जा सकते थे । बडा मलाल हुआ ।

गर्मी बहुत जोर की पड रही थी । कस्टम से छुट्टी पाने के बाद एक-एक क्षण भारी लगने लगा । बरामदे मे घूमते रहे और हवाई अड्डे के मैदान को देखते हुए आगे की यात्रा के बारे मे सोचते रहे ।

अत मे घोषणा हुई कि रगून जानेवाले यात्री अमुक विमान मे सवार हो । कुछ ही गज के फासले पर विमान खडा था । उसमे जा बैठे । विमान साफ-सुथरा था और उसमे चवालीस सीटे थी । कुर्सियो की गद्दिया मुलायम और आरामदेह थी । नीचे फर्श पर नीले रग की मखमल बिछी थी । हम कुल बाईस यात्री थे, जिनमे कुछ अगरेज तथा कुछ बर्मी थे । सबके बैठ जाने पर विमान का दरवाजा बद हुआ । इजन ने हलचल की, शोर मचाया और फिर धीरे-धीरे भूमि पर चलने लगा । कुछ दूर चलकर रुका और फिर तेजी से दौडकर धरती से नाता तोड अम्बर की ओर बढ चला । उस समय हमारी घडी मे पौने बारह बजे थे ।

: २ :

ब्रह्मदेश की ओर

विमान ऊपर पहुचकर समगति से चलने लगा तो अकस्मात निगाह नीचे गई। देखता क्या हू, समूची कलकत्ता-नगरी भूमि पर बिछी हुई है। नगरी का मीलो का विस्तार सिमटकर एक परिधि मे बध गया था और उसके मकानो, सडको, मोटर-लारियो, वृक्षो आदि की असमानताए जैसे लुप्त हो गई थी। उस दृश्य को देखकर क्या-क्या विचार मन मे उठे, उनको आज याद करना मुश्किल है, लेकिन इतना अवश्य लगा कि आदमी ऊचाई पर हो तो बहुत-से भेदभाव अपने-आप मिट जाते हैं।

नगरी के आखो से ओझल होते ही सूचना मिली कि हम जिस यान मे सफर कर रहे हैं, वह इडियन एयरलाइन्स का वाइकाउट है, ए० भट्टाचार्य उसके कप्तान हैं और यात्रा के दौरान मे वह विमान साढे सत्रह हजार फुट की ऊचाई तक जायगा। इस घोषणा के उपरात विमान मे कुछ निस्तब्धता-सी छा गई। अधिकाश यात्री जैसे अपने-आपमे खो गए।

लगभग आधा घटे तक हम कुछ यात्री खिडकी मे से ऊपर नीले निरभ्र आकाश को और नीचे यत्र-तत्र बिखरे बादलो के झरोखो से धरती के अस्पष्ट चित्रो को देखते रहे। अचानक दृश्य बदला। बादल साफ हो गए। धरती पर अनगिनत नदियो का जाल बिछा हुआ दिखाई देने लगा। छोटी-बडी, पतली-मोटी, अनेक जल-धाराए प्रवाहित हो रही थी और उनके बीच-बीच की भूमि हरित परिधान मे बडी मनोरम लग रही थी। विष्णुभाई ने कहा, "सुन्दरवन आ गया। अब आगे गगा अपने आपको बगाल की खाडी मे विसर्जित कर देगी।"

सुन्दरवन सचमुच बडा सुन्दर है। उसमे खूब हरियाली है। उसके बीच बडी ही शान्त और गभीर मुद्रा मे गगा अनन्त भुजाओ से सागर को भेंटने जाती दिखाई देती है। प्रकृति देवी की वह लीला अलौकिक जान पडती है।

हम कुछ सोचे कि देखते क्या है, गगा अपनेको सागर मे विलीन कर रही है। गगा के मायके के हम गोमुख मे दर्शन कर चुके थे। उसकी लम्बी पहाडी यात्रा का भी बहुत-सा भाग देखा था। उसके विसर्जन के दृश्य को देखकर हृदय रोमाचित हो उठा।

अब हमारा विमान बगाल की खाडी की असीम जलराशि के ऊपर उड़ने लगा। कुछ देर तक तो हमे रस आया, किन्तु आगे जब क्षितिज पर बादलो की ऊंची-नीची किनार और नीचे सागर के तरगित जल के एक-से दृश्य दिखाई देने लगे तो जी कुछ ऊबने-सा लगा। उसी समय खाना आ गया। हमने अपने शाकाहारी होने की सूचना पहले से ही दे रखी थी। अत भोजन मे हमे पूरिया, चावल, गोभी-आलू का साग, खूबानी का मुरब्बा तथा अन्य निरामिष चीजें मिली। आराम से खाना खाया। खाना खाने के बाद थोडा अवसाद-सा आ गया, पर आखें झपें कि उससे पहले ही सागर का रूप बदल गया। अगम जल के वक्ष पर गर्व से सिर उठाये छोटे-बडे अनेक टापू दिखाई देने लगे। वे टापू बडे रोमाचकारी लगते थे और उनकी आकृतियो को देखकर कभी-कभी तो बहुत ही मनो-रजन होता था। जैसे-जैसे हमारा विमान आगे बढता गया, टापुओ की शृ खला मे वृद्धि होती गई। एक टापू की आकृति ने तो भ्रम मे डाल दिया। उसे देखते ही लगा, जैसे कोई घडियाल पडा है, पर ध्यान से देखने पर पता चला कि वह जमीन है। जमीन का रग लाल था और सागर के नीले जल से वह विचित्र भिन्नता उपस्थित करता था।

हवाई सफर मे मौसम प्राय अनिश्चित रहता है। पुलकित होकर जब हम टापुओ की शोभा देख रहे थे, अचानक बादल दौड-दौड़कर आने लगे और कुहरे ने चारो ओर अपनी चादर फैला दी। कुछ तो बादलो के कारण और कुछ उस भाग मे एयर-पाकिट होने से विमान ऊपर-नीचे होने लगा। इस हलचल ने यात्रियो मे चैतन्य ला दिया, लेकिन यह स्थिति अधिक समय तक नही रही। समुद्र के समाप्त होते-होते मौसम एकदम साफ हो गया और प्रकृति के आशीर्वाद के साथ हमने ब्रह्मदेश मे प्रवेश किया। लगभग आधे घटे तक अपने पडोसी देश की भूमि पर उडते रहने के उपरान्त अपनी घड़ी के अनुसार ठीक दो बजे

और वहा के समय के अनुसार तीन बजे हमारा विमान मिगलाडोन हवाई अड्डे पर उतरा। रगून का यह हवाई अड्डा काफी बडा और साफ-सुथरा है। सबसे बडी बात यह है कि हवाई जहाज के उतरने पर यात्रियों को काबुल या अन्य स्थानो की भाति धूल के बादलो का सामना नही करना पडता।

विमान से उतरकर सीधे कस्टम मे गये। बर्मी अधिकारियों ने बडी सावधानी से हमारे सामान की जाच की, पासपोर्ट, वीसा तथा स्वास्थ्य के प्रमाणपत्र आदि देखे और मुद्राओ की घोषणा कराई। इस सारी खानापूरी मे कोई पौन घटा लग गया। उससे छुट्टी पाकर बाहर आये तो बडी उत्सुकता से प्रतीक्षा करते डा० ओमप्रकाश, उनकी पत्नी, श्री सत्यनारायण गोयनका तथा बर्मा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के पदाधिकारियो ने हमारा स्वागत किया। उनकी सहृदयता तथा व्यवहार के खुलेपन से हमे ऐसा अनुभव हुआ, मानो हम अपने ही परिवार मे हो। स्वागत करनेवाले तीस-पैंतीस व्यक्तियो मे सभी भारतीय थे। हमारे ठहरने की व्यवस्था श्री सत्यनारायणजी के यहा मुगल स्ट्रीट में की गई थी। हवाई अड्डे से वह जगह कोई बारह मील दूर थी।

सामान बाहर आने पर हम लोगो ने अपनी चीजें छाटी। उन्हे मोटर मे रखा गया और फिर हम सब शहर की ओर रवाना हो गए। कहने की आवश्यकता नही कि मुगल स्ट्रीट पहुचते-पहुचते नगर का बहुत-सा भाग हमारी आखो के सामने से गुजर गया।

: ३ :

रंगून नगरी

रगून वर्मा की राजधानी है। जब हम उस नगरी को अच्छी तरह से देखते है तो यह मालूम होते देर नही लगती कि उसका महत्त्व केवल इसीलिए नही है कि वह एक देश की राजधानी है, वल्कि इसलिए भी है कि उसकी एक अपनी विशेषता है। आप चाहे हवाई मार्ग से जाय अथवा जलमार्ग से, वहा पहुचते ही अनुभव होता है कि आप किसी विशेष नगर मे आ गये है।

रगून का इतिहास चमत्कारपूर्ण न होते हुए भी वडा रोचक है। हम पहले अध्याय मे वता चुके है कि अपने इन पडोसी देशो के साथ भारत के सवध प्राचीनकाल से रहे है और समय-समय पर अनेक भारतीय इन देशो मे आकर वसते रहे हैं। किसी जमाने मे भारत के उत्कल प्रदेश से कुछ लोग ब्रह्मदेश मे गये और वर्तमान रगून के आसपास की भूमि पर स्थायी रूप से रहने लगे। अपनी मातृभूमि की स्मृति मे उन्होने उसका नाम उत्कल से मिलता-जुलता 'उक्कल' रखा। रगून का यही सवसे पहला नाम था। वाद मे वहा के प्रसिद्ध मदिर श्वे डगोन पगोडा की प्रमुखता के कारण उसका नाम 'डगोन' पड गया। लेकिन जव सन १७५५ मे राजा अलागफया ने निचले वर्मा पर अपना आधिपत्य स्थापित किया तो 'डगोन' से उसका नाम 'रानको' अथवा 'यान्‌को' हो गया। 'रानको' का अर्थ होता है 'सघर्ष का अत' यानी 'युद्ध की समाप्ति।' सन १८५२ मे जव ब्रह्मदेश के भाग्य ने फिर पलटा खाया और वह अगरेजो के अधीन हो गया तो 'रानको' पर भी उसका प्रभाव पडे विना न रहा। 'रानको' का अगरेज़ीकरण हुआ और उच्चारण की सुगमता के कारण वह रगून हो गया।

जिस समय अलागफया ने रगून पर अधिकार किया, उस समय के रंगून और उसके आकार की आज शायद ही कोई कल्पना कर सकता है। रगून-

नदी के किनारे पर वह एक छोटा-सा गाव था, जिसका क्षेत्रफल एक वर्ग-मील के आठवें भाग से अधिक न था। लेकिन जब अगरेज़ो ने उसे अपने शासन का केन्द्र बनाया तो उसका रूप-रग एकदम बदल गया। अगरेज़ वास्तु-विशारदो ने उसके पुनर्निर्माण की योजना बनाई, नक्शे तैयार किये और उन्हीके हिसाब से व्यवस्थित रूप मे नये नगर की रचना की। उसकी मौजूदा बनावट शतरज के बोर्ड की भाति है। उसकी सडकें और गलिया एकदम सीधी हैं और उनके दोनो ओर एक कतार मे मकान बने हुए हैं। अमरीकी शैली पर नगर को कुछ बडी सडको मे विभक्त कर दिया गया है, जिनके समानान्तर छोटी-छोटी गलिया हैं। इन गलियो के नाम अमरीका की पद्धति के अनुसार 'फर्स्ट स्ट्रीट', 'सैकिण्ड स्ट्रीट' इस प्रकार रखे गए हैं। नगर का वर्तमान क्षेत्रफल ७७ वर्गमील है और उसकी आबादी आठ लाख से ऊपर है।

आज का रगून वास्तव मे बडा आकर्षक है। पूर्व, दक्षिण और पश्चिम, तीन दिशाओ मे वह रगून नदी की भुजाओ मे आबद्ध है। मुगल स्ट्रीट से, जहा हम ठहरे थे, रगून बदरगाह निकट ही था। सबसे ऊपर की मजिल के अपने कमरे की छत पर से हमे नदी की विशाल जलधारा और उसमे आते-जाते छोटे-बडे जलपोत दिखाई देते रहते थे और उनके भोंपुओ की आवाजें प्राय सुनाई देती रहती थी। बाद मे जब हम जैटी पर गये तो नदी के पाट को देखकर ऐसा लगा, मानो किसी सागर के तट पर खडे हो। रगून बदरगाह के निकट ७२०० गज चौडी और ३५ से ५० फुट तक गहरी जलराशि विभिन्न देशो के जहाजो के आवागमन तथा छोटी-छोटी नौकाओ के विचरण से बराबर मुखरित रहती है। इस बदरगाह के अन्तर्गत नागरिको के आवागमन तथा व्यापारिक सुविधाओ के कारण १७ जैटिया और नाव तथा पीपो के ३२ पुल हैं, जिनपर हर समय यात्रियो की भीड लगी रहती है।

शहर बडा हरा-भरा है। सडको के दोनो ओर के घने पेडो के अलावा बाग-बगीचो की वहा भरमार है। बर्मा के अमरशहीद जनरल औ सौं की स्मृति मे जो उद्यान बना है, वह रगून की दर्शनीय वस्तुओ मे से एक है। ब्रह्मदेशवासी प्रकृति के उपासक हैं। नगर का कोई भी भाग ऐसा नही

है, जहा हरियाली न हो। घनी आबादीवाली बस्तियों में भी छोटे-बड़े बगीचो के लिए जगह निकाल ली गई है। उपबस्तियो मे तो हरियाली का कहना ही क्या।

फूलो से वहा के नर-नारियो को विशेष प्रेम है। सम्पन्न घरों की स्त्रियो से लेकर मजदूरी करनेवाली मामूली हैसियत की स्त्री तक के केशो में फूल लगे दिखाई देते है। घरो की सजावट में भी पुष्पो का उपयोग होता है।

बाग-बगीचो की तरह जलाशयो की भी वहा बहुतायत है। सारे नगर मे छोटी-बडी बीसियो झीले हैं, जिनके किनारे-किनारे रास्ते बने हुए है। सुबह-शाम वहा स्त्री-पुरुषो के मुस्कराते चेहरे देखकर और बच्चो की किलकारिया सुनकर मन पुलक उठता है।

बाग-बगीचो को इतनी बडी सख्या मे देखकर अनेक पर्यटको ने रंगून को 'उद्यानो का नगर' कहा है। कुछ ने उसके जलाशयो के कारण उसे 'झीलो की नगरी' की सज्ञा दी है। जो हो, इसमे सदेह नही कि बगीचों और झीलो ने जहा शहर की शोभा मे चार चाद लगाये हैं, वहा नगरवासियो के स्वास्थ्य की सुरक्षा में भी सहायता पहुचाई है।

रगून के अन्य आकर्षणो मे वहा के पगोडा अर्थात बौद्ध मदिर प्रमुख हैं। वहा के श्वे डगोन पगोडा को देखने के लिए तो दूर-दूर से धर्मपरायण तथा कला-प्रेमी लोग आते हैं। इस तथा अन्य पगोडाओ की विस्तृत चर्चा हम आगे करेगे।

शिक्षा किसी भी देश के नागरिको के लिए बडी महत्त्वपूर्ण होती है। उसकी व्यवस्था किस प्रकार के वातावरण मे होनी चाहिए, इस बात को बर्मा के शासको ने भली प्रकार समझा है। रगून का विश्वविद्यालय नगर की घनी बस्ती से दूर, इनिया झील के किनारे, बड़े ही उन्मुक्त वायु-मण्डल मे अवस्थित है। उसका क्षेत्रफल ४३५ एकड है। इस विश्वविद्यालय की स्थापना गवर्नमेण्ट कालेज के रूप मे सन १८८० मे हुई थी। विद्यार्थियो की ऐतिहासिक हडताल के बाद सन १९२० मे रगून यूनिवर्सिटी एक्ट पास हुआ। फिर तो रगून का मेडीकल कालेज, माडले का कृषि विद्यालय, टीचर्स ट्रेनिंग कालेज आदि स्थापित हुए।

द्वितीय महायुद्ध मे इस विश्वविद्यालय की बडी क्षति हुई। उसके भवन का विध्वस हो गया। उसका पुस्तकालय, जिसमे पूर्वी देशो के साहित्य का सबसे अधिक सग्रह था, जलकर राख हो गया।

बर्मा के स्वतत्र होने पर विश्वविद्यालय के भाग्य का फिर से उदय हुआ। युद्ध से पहले उसमे अनेक शिक्षा-सस्थाए मिली हुई थी, लेकिन अब उसका स्वतत्र अस्तित्व हो गया। अब उसमे सात विभाग हैं कला, विज्ञान, कानून, इजीनियरिंग, शिक्षा, स्वास्थ्य और कृषि। सन १९२२ मे इसमे ३०० विद्यार्थी थे और युद्ध से पूर्व कोई २०००, पर अब उनकी सख्या १२ हजार के लगभग है। उसमे करीब सवासौ इमारते हैं। पुस्तकालय मे ४०-४५ हजार पुस्तके इकट्ठी हो गई हैं। विश्वविद्यालय का अपना तैरने का तालाब है, बोटिंग क्लब है, सैनिक दल है, बौद्ध और ईसाई छात्रो की पूजा के लिए देवालय है।

विश्वविद्यालय के भवन इतने कलापूर्ण है कि उधर से आते-जाते व्यक्तियो की निगाह उनकी ओर जाये बिना नही रहती। जिन दिनो हम लोग वहा थे, गर्मी की छुट्टिया थी, इसलिए हम विद्यार्थियो की हलचल को तो देख नही सके, लेकिन हमें मालूम हुआ कि शिक्षा और अनुशासन, दोनो की दृष्टि से यह विश्वविद्यालय सारे देश मे विख्यात है। लडके-लडकियो की साथ-साथ पढाई होती है।

जिसकी जन-जीवन मे रुचि हो, उसे शहर के मध्यभाग मे चले जाना चाहिए। वहा एक पगोडा है, जिसे 'सूले पगोडा' कहते है। शहर का सबसे चौडा मार्ग 'सूले पगोडा रोड' है, जिसके दोनो ओर बडी-बडी दूकाने हैं और उनके बीच एक विशाल सिनेमाघर है। पास ही रगून-कार्पोरेशन का लम्बा-चौडा भवन है। पगोडा के निकट से नगर के सभी भागो को सडकें जाती हैं। इन सडको पर सारे दिन लोकजीवन की धारा प्रवाहित रहती है। बर्मी लोगो के रहन-सहन, उनके पारस्परिक व्यवहार, उनके शिष्टाचार, उनकी विनोद-प्रियता, उनकी स्फूर्ति, उनकी सामाजिक अवस्था आदि की वहा अच्छी झाकी मिल जाती है।

सूले पगोडा के पास ही पश्चिम मे बण्डूला स्क्वायर है। उसके बगीचे के बीच मे स्वतत्रता-स्तभ का निर्माण बर्मी शासको की

दूरदर्शिता का परिचायक है। केन्द्रीय स्थल होने के कारण वहा खूब भीड इकट्ठी होती है। अनगिनत नर-नारियो को जैसे वह स्तभ अहर्निश सन्देश देता है कि किसी भी देश के लिए उसकी स्वतत्रता से वढकर और कोई चीज़ नही है। वर्मा ४ जनवरी, १६४८ को स्वतत्र हुआ था। उसी महान दिवस की स्मृति मे इस स्तभ का निर्माण कराया गया था। इस उद्यान मे सध्या के समय एक नये ही समाज को देखा जा सकता है, जिसमे न केवल वर्मी नागरिक होते हैं, अपितु चीनी तथा भारतीय स्त्री-पुरुष-बच्चे भी मौजूद रहते हैं। उन्हे देखकर यह भेद करना असभव है कि चीनी अथवा भारतीय वहा के लिए विदेशी हैं। चीनी लोग तो वहा के लोक एव व्यावसायिक जीवन के अभिन्न अग बन गये हैं और भारतीयो ने पीढी-दर-पीढी से वहा रहकर जैसे उस देश को अपना ही बना लिया है। यहासे कुछ ही फासले पर उच्चतम न्यायालय का भवन है।

इस पगोडा से चलकर जब रेलवे-कार्यालय के सामने पुल को पार करते हैं तो दाहिनी ओर को मुडने पर औं सॉ मैदान आ जाता है। इस विशाल मैदान मे सार्वजनिक सभाए होती हैं और अतर्राष्ट्रीय खेल-प्रतियोगिताए भी। मैदान के सामने रेलवे-स्टेशन है। उसकी इमारत बहुत बडी है। द्वितीय महायुद्ध मे यह भवन भूमिसात हो गया था, लेकिन बाद मे उसका इस ढग से निर्माण हुआ कि अब वह स्थापत्य-कला का एक सुन्दर नमूना माना जाता है।

शहर के उत्तर-पश्चिम मे चाकस्सान के मार्ग मे टर्फ-क्लब है, जहा एशिया का सर्वोत्तम माना जानेवाला घुड़दौड का मैदान है। दौड का मार्ग कोई डेढ़ मील लम्बा है। गर्मी के महीनो को छोडकर बाकी के महीनो मे रविवार को वहा घुडदौड होती है।

रगून की रायल लेक मानो उस नगरी का प्राण है। उसीके तट पर जनरल औं सॉ की मूर्ति बनी है। यह मूर्ति स्वतत्रता की इस महान विभूति के प्रति वर्मी लोगो की गहरी श्रद्धा और भावना की द्योतक है। झील के किनारे-किनारे पक्की सड़क है। सड़क पर जहा-तहा बैठने के लिए बेंचे पड़ी हैं। सवेरे-शाम लोग चहलकदमी के लिए आते हैं। झील मे नौकाविहार की भी व्यवस्था है।

शहर से अलोन रोड होते हुए पश्चिम को जाते हैं तो मार्ग मे ऊचाई पर अवस्थित एक विशाल भवन दिखाई देता है । यह स्वतत्र बर्मा के राष्ट्रपति का भवन है । राष्ट्रपति भवन के रूप मे परिवर्तित होने से पूर्व यह गवर्नर-हाउस था । उसके सभा-कक्ष मे अन्तिम बर्मी राजा थीबो का सिंहासन रखा हुआ है ।

श्वे डगोन पगोडा के निकट एक छोटी-सी वाटिका है, जिसमे प्रविष्ट होते समय भारतीय पर्यटक का दिल भर आता है । उसमे भारत के अन्तिम मुगल वादशाह वहादुरशाह जफर और उनकी बेगम आदि की कब्रें हैं । सन १८५७ की क्राति के विफल होने के बाद वहादुरशाह को कैद करके रगून लाया गया था और यही पर कटु स्मृतियो के बीच अपने जीवन के अन्तिम दिनो को व्यतीत करते हुए जफर की जीवन-लीला समाप्त हुई थी । बदी-जीवन वैसे ही दुखदाई होता है, फिर 'जफर' तो वादशाहत के दिन देख चुका था । उसके दिल मे अरमान थे, जो पूरे होने के लिए छटपटाते थे । वे अरमान उसके साथ ही चले गये । अपनी तमन्ना और बेबसी को उसने स्वय इन पक्तियो मे व्यक्त किया है

लगता नहीं है दिल मेरा उजड़े दयार में ।
रोजे हशर से मागकर लाया था चार दिन,
दो आरजू में कट गये, दो इंतजार में ।
इतना था बदनसीब 'जफर' दफन के लिए,
दो गज जमीन भी न मिली कूचे यार में ।

उन कब्रो की आज भी अच्छी तरह देखभाल होती है । बाहर के शिला-पट्ट पर 'जफर' के अन्तिम दिनो की चर्या का उल्लेख है । फिर कुछ सीढिया चढकर एक कक्ष आता है, जिसमे तीन कब्रे पास-पास हैं । उनमे से दो सम्राट और उनकी बेगम की हैं । उनकी व्यवस्था के लिए एक कमेटी है ।

रगून मे छोटे-बडे कई बाजार हैं, लेकिन सबसे अधिक चहल-पहल वाला बाजार 'नाइट मार्केट' अर्थात रात्रि-बाजार के नाम से विख्यात है । दिन-भर वहा की दूकानें सोती पडी रहती हैं । लेकिन शाम होते ही वहा ऐसी चहल-पहल होती है कि कुछ न पूछिये । छोटे-से मैदान की सारी

दूकाने बिजली की रोशनी से जगमगा उठती है और दिन-भर के थके-मादे नर-नारी वहा घूमने और अपनी जरूरत की चीजे खरीदने आ जाते है। यह बाजार रात को १२-१ बजे तक खुला रहता है। उसमे खिलौनों से लेकर कपडे आदि तक सब प्रकार की चीजे सामान्यतया सस्ते मूल्य मे मिल जाती है। एक ओर को अनेक छोटे-छोटे भोजनालय तथा रेस्ट्रा खुल जाते हैं। बहुत-से बर्मावासी रात का भोजन बाहर करना पसन्द करते हैं। मामूली गृहस्थो के अतिरिक्त बौद्ध भिक्षु भी इस बाजार मे घूमते हुए मिल जाते है। लेकिन स्मरण रहे कि रात्रि-बाजार होते हुए भी उसमे किसी प्रकार की उच्छृ खलता नही दिखाई देती। वहा खूब रौनक रहती है, लेकिन लोगो का जीवन मर्यादित रहता है। बर्मी लोगो मे सरसता और मनोरजन की भावना कम नही होती, लेकिन वे सुसभ्य और सुसंस्कृत नागरिक की सीमाओ का उल्लघन नही करते।

: ४ :

पगोडाओं के देश में

ब्रह्मदेश की भूमि पर पहुचते ही पहली छाप मन पर यह पडती है कि वह बौद्ध साधुओं (फुगियो) तथा बौद्ध मन्दिरो (पगोडाओ) का देश है। वैसे वहापर विभिन्न धर्मो एव सम्प्रदायो के लोग भी बसते हैं और उनके अपने-अपने देवालय हैं, लेकिन सारे देश मे सबसे अधिक प्रचलन बौद्ध धर्म का है। उसके अनुयायियो की सख्या पूरी आबादी की लगभग ६० प्रतिशत है। अपने पाच सप्ताह से अधिक के निवासकाल मे हमने रगून और उसके आसपास के स्थानो के अलावा उत्तरी, दक्षिणी तथा मध्य बर्मा के कई शहर और गाव देखे। हमे इस बात मे आश्चर्य-मिश्रित हर्ष हुआ कि पश्चिमी विचार-धारा के तीव्र प्रवाह के बावजूद वहा के लोग अपने धर्म मे गहरी आस्था रखते हैं। मामूली-से-मामूली हैसियत का आदमी भी फुगियो को अन्न-वस्त्र आदि के रूप मे कुछ-न-कुछ दिये बिना नही रहता। जिनके पास ज्यादा पैसा होता है, वे अपनी सामर्थ्य के अनुसार छोटा-बडा पगोडा बनवा देते है। उन लोगो की इस धर्म-परायणता के फलस्वरूप आज सारे देश मे पगोडा बहुत बडी सख्या मे दिखाई देते हैं। बहुत-से प्राचीन पगोडाओ को देखकर पता चलता है कि ब्रह्मदेशवासी प्राचीनकाल से ही धर्म के प्रति आस्थावान रहे हैं। हमारे देश मे मदिरो की सख्या कम नही है, विशेषकर दक्षिण मे तो उनकी पराकाष्ठा है, लेकिन हमारा यह पडोसी देश तो हमसे भी बाजी मार ले गया है। कही भी चले जाइये, भले ही वह कोई बडा शहर हो या छोटा गाव, पर्वत की चोटी हो या मैदान, वन हो या घाटी, नदी-झील हो या समुद्र का तट या द्वीप, एक भी जगह ऐसी नही मिलेगी, जहा घूमते हुए फुगी और सिर ऊचा किये खडे पगोडा दिखाई न देते हो।

रंगून के हवाई अड्डे पर उतरते ही हमे कुछ फुगी दिखाई दे गये थे, लेकिन जब हम शहर की ओर बढे तो सडक के दोनो ओर रास्ते मे इतने

पीत वस्त्रधारी साधु मिले कि उनकी गिनती करना मुश्किल हो गया। हमारे अचरज का ठिकाना न रहा, जब हमने देखा कि उस साधु-समाज मे आठ-आठ, दस-दस साल के बालक भी थे, जिनसे चीवर भी नही सम्भल पा रहे थे। पूछने पर मालूम हुआ कि बर्मा मे एक अजीब प्रथा है। प्रत्येक बौद्ध धर्मावलम्बी के लिए कम-से-कम सात दिन तक भिक्षु का जीवन व्यतीत करना आवश्यक होता है। यदि कोई अधिक समय तक साधु रहना चाहे, जैसाकि बहुत-से लोग करते है, तो उसे वैसा करने की आजादी है। उन लोगो की मान्यता है कि इस विधि के सम्पन्न हो जाने से उनका भावी जीवन अनेक कठिनाइयो और अनिष्टो से बच जाता है और वे भविष्य मे सुख और शान्ति के अधिकारी बन जाते हैं। उनकी इस मान्यता मे कितनी सचाई है, यह तो वही जानें, लेकिन उनकी इस धारणा के प्रत्यक्ष परिणामस्वरूप चारो ओर फुगी-ही-फुगी दिखाई देते हैं। कहने की आवश्यकता नही कि अपने इन साधुओ के प्रति नागरिको तथा शासन की बडी श्रद्धा है, और वे उन्हे सब प्रकार की सुविधाए प्रदान करते हैं। जब हमे यह मालूम हुआ कि सवारी मे बैठने पर फुगियो को भाडा नही देना पडता, सिनेमा का उन्हे टिकट नही लेना पडता, आदि-आदि, तो हमे बडे मनोरंजन की सामग्री मिल गई। विष्णुभाई और मैं बार-बार विनोद मे मित्रो से कहते थे, "क्यो भाई, हम भी कुछ समय के लिए फुगी हो जाय तो कैसा रहेगा ?" विनोद को आगे बढाते हुए मित्र उत्तर देते थे, "जी हा, जरूर फुगी हो जाइये, लेकिन एक बात का ध्यान रखिये कि सिर मुड जायगा और कपडे बदल जायगे तो घर के लोग पहचान भी नही पायगे, और आप लोगो को घर मे पैर नहीं रखने देगे। है इसके लिए तैयार?" हम लोग हँसते हुए कहते थे कि "इसकी नौबत ही कहा आने पावेगी ? नाम के बदलने मे हमारे पासपोर्ट बेकार हो जायगे और तब हमारी व्यवस्था यहां की सरकार अपने आप कर देगी।"

'पगोडा' शब्द सिहली भाषा के 'डगोबा' का अपभ्रश है। उसकी व्युत्पत्ति सस्कृत के 'धातुगर्भा' शब्द से सम्बन्धित है, जिसका अर्थ है—पवित्र अवशेषो की स्थापना का स्थल।

पगोडाओ की आकृति किस प्रकार निश्चित हुई, इसके पीछे बडी

रोचक कहानी है। अपने महापरिनिर्वाण से कुछ समय पूर्व भगवान बुद्ध ने सूचना दी थी कि उनकी समाधि पर चावल के ढेर की आकृति का स्मारक बना दिया जाय। कहा जाता है कि अपनी माता के गर्भ मे बुद्ध की आकृति कमल की कली के समान थी। अत माना जाता है कि इन दोनो के योग से पगोडाओ के स्वरूप की कल्पना निर्धारित की गई। जो हो, सारे ब्रह्मदेश मे पगोडाओ की आकृति अधिकाशत. एक-सी है। मोटे तौर पर उन्हें चार श्रेणियो मे विभाजित किया जाता है १ जिनमे भगवान बुद्ध के धातु-अवशेष प्रतिष्ठित होते है, २ जिनमे बुद्ध अथवा बौद्ध साधुओ की पोशाक आदि प्रतिष्ठित होती है, ३ जिनमे बुद्ध की मूर्तिया प्रतिष्ठित होती हैं और ४ जिनमे बौद्ध धर्म के ग्रथ प्रतिष्ठित होते हैं।

अधिकाश पगोडा ईटो और चूने के बने हुए है, लेकिन कुछ पत्थर के भी मिलते हैं। मूर्तियो मे कुछ सगमरमर की होती हैं, कुछ पत्थर की, कुछ धातु की, कुछ ईंट-चूने की। छोटी-मोटी मूर्तिया चादी और सोने की भी होती है। बुद्ध की मूर्तिया सामान्यतया तीन प्रकार की मिलती हैं १. बैठी (पद्मासन), २. खडी (खड्गासन), ३ लेटी (निर्वाण)। पद्मासनस्थ मुद्रा मे या तो दोनो हाथ एक-दूसरे के ऊपर नाभि के निकट रखे होते हैं, जो चिन्तन अथवा ध्यान के द्योतक है, या बाया हाथ गोद मे ऊपर को उठा हुआ और दाया दाए घुटने पर, उगलिया भूमि की ओर। यह मुद्रा सम्बोधि-प्राप्ति का सकेत करती है। खडी मूर्तियो मे प्राय हाथ उठा रहता है और वह उपदेश की मुद्रा कहलाती है। लेटी मूर्ति दाई करवट लिये हुए होती है, उसका दाया हाथ सिर के नीचे टिका होता है और बाया हाथ बाई टाग पर फैला हुआ होता है।

श्वे डगोन पगोडा

रगून सही अर्थ मे पगोडाओ की नगरी है। उसका सबसे प्राचीन और सबसे विशाल पगोडा 'श्वे डगोन पगोडा' है, जिसका स्वर्णिम शिखर तथा ऊपर का गोलाकार भाग, वृक्षो की ऊचाइयो को परास्त करता हुआ अपनी समस्त छटा के साथ लोगो का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है। यह शहर से कोई छ-सात मील दूर है। कहा जाता है कि आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले तपस्स और भल्लिक नाम के दो बर्मी व्यापारी

भारत आये थे। सौभाग्य से बुद्ध से उनका साक्षात्कार हो गया। व्यापारियों ने उन्हे चावलो के बने मोदक अर्पित किये। यह बुद्ध के सम्बोधि-प्राप्ति के सात सप्ताह बाद की बात बताई जाती है। तथागत ने प्रसन्न होकर उन्हें अपने सिर के आठ केश दिये। उस मूल्यवान निधि को लेकर वे बर्मा लौट गये और उसे एक रत्नखचित स्वर्ण-मजूषा मे बन्द करके श्रृ गोत्तरा पहाड़ी पर धूमधाम से भूगर्भित किया और वहापर एक स्तूप का निर्माण कराया। यही स्तूप श्वे डगोन पगोडा कहलाता है। यह भी कहा जाता है कि बाद के कुछ और पावन अवशेष इस पगोडा के विभिन्न भागो मे स्थापित किये गए हैं।

इस पगोडा का निर्माण ईसा से ५८५ वर्ष पूर्व हुआ था। आरम्भ में वह केवल २७ फुट ऊचा था, लेकिन बाद मे अनेक राजाओ, धनिको तथा श्रेष्ठियो ने उसका नवनिर्माण किया और उसके आकार मे वृद्धि की। आज उसकी ऊचाई ३२६ फुट है। १६३ फुट ऊची पहाडी पर निर्मित होने के कारण वह बीस मील दूर से ही दिखाई दे जाता है।

पगोडा मे प्रवेश करने के लिए चारो दिशाओ मे चार छायादार प्रवेश-मार्ग हैं। इन मार्गो के दोनो पार्श्वो मे विभिन्न प्रकार की चीजो की दूकाने हैं। पूजन के निमित्त फूल, मोमबत्ती, सोने के वरक, खिलौने, पीतल के पात्र आदि इन दूकानो पर मिल जाते हैं।

पगोडा की विशालता का पूरा आभास ११० सीढिया चढकर अन्दर पहुंचने पर होता है। २ फुट ३ इच की कुर्सी पर प्रधान पगोडा की अष्ट-कोण परिधि है, जो १४२० फुट की है। मध्य मे चार विशाल पगोडा हैं। उनके चारो ओर ६४ छोटे-छोटे पगोडा है। प्रधान पगोडा का विशाल प्रागण सगमरमर का हे और परिक्रमा करते समय स्थान-स्थान पर लकडी पर बडी सुन्दर कारीगरी देखने मे आती है।

चारो प्रवेश-मार्गो के सामने अन्दर चार पूजा-मण्डप हैं, जिनमे भगवान बुद्ध की कई-कई मूर्तिया स्थापित हैं। इनके अतिरिक्त, चारो ओर कई धर्म-मण्डप हैं, जिनमे पूजा-अर्चना के उपरान्त यात्री विश्राम करते हैं। इन धर्म-मण्डपो मे से एक मे बुद्ध की ३० फुट लम्बी निर्वाण-मुद्रा मे बडी मनोहारी मूर्ति है। जगह-जगह पर ऊचे ध्वज-स्तम्भो पर

गरुड, राजहंस आदि की मूर्तिया वनी हुई है ।

प्रागण मे छोटे-वडे अनेक घटे लगे हुए हैं । इनमे महाघण्ट तथा महातिस्सद घण्ट सवसे विशाल और ऐतिहासिक महत्त्व के हैं । भारतीयो की मान्यता है कि महाघण्ट को जो जितनी वार वजाता है, उसे उतनी ही वार वर्मा जाने का अवसर मिलता है ।

प्रधान पगोडा का नीचे का विशाल आकार ऊपर की ओर कम होता जाता है, यहातक कि ऊपर जाकर वह औंधे कमल के रूप मे परिवर्तित हो जाता हैं । अनन्तर वह केले के फल की आकृति मे ऊपर वढता है और अन्त मे कमल-दल के आकार मे वहुत ही पतला हो जाता है । उसके ऊपर महाराज मिण्डोन का वनवाया लाखो की लागत का सुविख्यात स्वर्णछत्र है, जो ३३ फुट ऊचा है । उसकी चोटी पर एक स्वर्ण-पताका लगी है, जिसके चारो ओर सोने-चादी की घटिया हवा के स्पर्श से हर घडी मधुर सगीत सुनाती रहती हैं ।

हम लोगो को तीन वार इस महान पगोडा के अदर से दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । हर समय वहापर दर्शनार्थियो का ताना लगा रहता है । अपनी श्रद्धा-भक्ति को सचित करके भक्तजन वहा जाते है और वडी निष्ठा से उसे देव के चरणो मे अर्पित करते है ।

४ जनवरी, सन १९४८ को जव हमारे तत्कालीन राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद रगून गये थे तो अपने साथ वोधगया से महावोधि वृक्ष की एक शाखा ले गये थे, जिसे उन्होने इस पगोडा के पश्चिमोत्तर चवूतरे पर लगा दिया था । वह पौधा वढकर अव विशाल वृक्ष वन गया है । वहाके निवासी वडी भावना से उसकी पूजा करते हैं ।

सूले पगोडा

नगर के मध्य में अवस्थित सूले पगोडा तो वार-वार आखो के सामने आता है । वह २२०० वर्ष पुराना है । कहा जाता है, वुद्ध के महापरिनिर्वाण के २३६ वर्ष वाद महिन्द नाम का एक भिक्षु लका गया था और वहा तीन वर्ष रहने के वाद जव वह लौटने को हुआ तो लका के तत्कालीन राजा ने उसके साथ आठ व्यक्तियो का एक शिष्टमण्डल तथा कुछ पवित्र

अवशेष भेजे । महिन्द के वर्मा जाने पर सि[illegible] के राजा [illegible]सेन ने उन सबका वडे आदर से स्वागत किया और अपने मंत्री अथोक (अशोक) को एक पगोडा वनाने का आदेश दिया । इस पगोडा का प्रारम्भिक नाम 'चइक अथोक' या 'चइक सुरा' पडा । सुरा 'शर' शब्द का अपभ्रंश है । अशोक वास्तव मे बडा शूर था । कालातर मे सुरा से 'सूले' वन गया ।

एक कहानी यह भी प्रचलित है कि भगवान वुद्ध के जीवन-काल में श्वे डगोन पगोडा के निर्माण के लिए स्थान खोजने के विचार से उस स्थान पर एक सभा हुई थी, जहा आज सूले पगोडा है । 'सू' का अर्थ होता है—भीड । सभा में बहुत भीड इकट्ठी होने के कारण उसे यह नाम दिया गया ।

इस पगोडा की ऊचाई १५७ फुट है । उमके भीतर तथागत की छोटी-वडी अनेक मूर्तिया है और वाहर हर तरफ चित्रो, पुस्तको आदि की दूकाने हैं । पगोडा के निकट ही व्यवसाय के वडे-वडे केन्द्र है और कुछ ही कदम पर चीनियो की बस्ती है । इस प्रकार शोरगुल के वीच, भौतिकता मे लिप्त प्राणियो को यह पगोडा शान्ति और अपरिग्रह की प्रेरणा देता रहता है ।

बो टठाऊं पगोडा

रगून नदी के तट का एक भाग वो टठाऊ कहलाता है । कहते हैं, जब तपस्स और भल्लिक तथागत के आठ केश लेकर रगून लौटे और उनका जलपोत नदी के तट पर आकर लगा तो रमण प्रदेश का राजा उक्कलाया एक हजार सैनिको को साथ लेकर वहा गया और बड़ी श्रद्धा से उनका स्वागत किया । उसी समय से उस तट का नाम 'वो टठाऊ' पड गया । 'वो' का अर्थ होता है सैनिक, 'टठाऊ' माने एक हजार । उस तट पर एक वडा विशाल पगोडा है, जो 'वो टठाऊ पगोडा' कहलाता है । अन्य पगोडाओ की भांति इस पगोडा के निर्माण के पीछे एक वर्मी जनश्रुति है । कहा जाता है कि कोई दो हजार वर्ष से कुछ पहले आठ भिक्षुओं का एक शिष्टमण्डल भगवान वुद्ध के केश लेकर भारत से रगून आया था । सिरिअम के तत्कालीन राजा ने उसका स्वागत किया और अवशेष लेकर अपने मंत्री को दे दिये । उन अवशेषो को श्वे डगोन पगोडा के दक्षिण-पूर्व मे

सात हजार हाथ की दूरी पर रगून नदी की तटवर्ती पहाडी पर स्थापित कर दिया गया । वहा पर जिस पगोडा का निर्माण किया गया, वही 'बो टठाऊ पगोडा' कहलाता है ।

इस पगोडा के इतिहास मे बडी उथल-पुथल हुई है । आरभ मे जिस पगोडा का निर्माण हुआ था, वह सन १६४३ के नवम्बर मास मे मित्र-राष्ट्रो की सेनाओ के द्वारा की गई बमबारी मे ध्वस्त हो गया, पर उसका भाग्य सदा के लिए अस्त नही हुआ । उसका भाग्य पुन उदय हुआ और पहले की अपेक्षा कही अधिक विशाल पगोडा उठ खडा हुआ । जिस समय आरभिक पगोडा के खण्डहरो की खुदाई हो रही थी, मलवे के नीचे एक कक्ष मिला, जिसमे पाषाण की एक मजूषा रक्खी हुई थी। उस मजूषा की आकृति पगोडा के समान थी । उसके साथ-साथ विभिन्न प्रकार के हीरे-जवाहरात, सब तरह के आभूषण, नक्काशीदार बर्तन तथा सोने-चादी, पीतल और पत्थर की प्रतिमाए मिली । मूर्तियों की सख्या सातसौ थी । इन पात्रो मे एक पात्र बडे ऐतिहासिक महत्त्व का था । उसके एक ओर भगवान बुद्ध की मूर्ति थी, दूसरी ओर दक्षिण भारत की विकसित ब्राह्मी लिपि मे एक पाली शिलालेख था । पाषाण-मजूषा के भीतर एक और पत्थर की मजूषा थी, जिसमे चादी के अधिष्ठान पर एक छोटा-सा स्वर्ण-पगोडा था । उसमें भगवान बुद्ध के दो धातु-अवशेष तथा एक केश था । ये सभी वस्तुए प्रदर्शन के लिए आज भी वहा रक्खी हुई हैं ।

वर्तमान पगोडा पुराने से बहुत-कुछ मिलता-जुलता है । उसकी ऊचाई १३१ फुट ८ इच है । उसकी योजना इस प्रकार की गई है कि उसकी प्राचीन आत्मा को सुरक्षित रखते हुए उसकी शैली आधुनिक रहे । अदर मे वह खाली है, जिससे दर्शनार्थी भीतर जाकर मूर्तियो तथा सगृहीत वस्तुओ को देख सकें । चारो ओर दीवारो मे आले बनाकर मूल्यवान अवशेषो के प्रदर्शन की व्यवस्था की गई है, जो खुदाई के समय मे प्राप्त हुए थे ।

जहा अवशेष मिले थे, ठीक उसी स्थान पर, मध्य मे अवशेषो को रखने के लिए एक कूप-जैसा है । आवश्यकता पडने पर सार्वजनिक प्रदर्शन तथा पूजा के लिए उन अवशेषो को बाहर निकाला जा सकता है ।

वैसे तो प्राय सभी पगोडाओ मे सोने, चादी तथा अन्य धातुओ की अनेक चीजे देखने को मिलती है, लेकिन इस पगोडा की अधिकाश वस्तुओ का, उनकी प्राचीनता के कारण, ऐतिहासिक महत्त्व है ।

पगोडा से सटा एक तालाव है, जिसमे सैकडो मछलिया तथा कछुए हैं। उन्हें खिलाने के लिए दर्शनार्थी दूकान से डवल रोटी, मक्की के फूले आदि खरीद लाते है और उन्हे पानी मे डालकर मछली-कछुओ की दौड तथा छीना-झपटी देखते हैं । तालाव का पानी वहुत गदा होते हुए भी लोगो के मनोरजन का अच्छा साधन है ।

कवा एइ पगोडा

वर्मा मे सहस्रो प्राचीन पगोडा है, लेकिन कुछ पगोडा ऐसे भी है, जिनका निम.ण हाल ही के सालो मे हुआ है । 'कवा एइ पगोडा' उन्हीमेसे एक है । उसका निर्माण-कार्य सन १९५० मे आरभ हुआ था और वह सन १९५२ मे पूर्ण हुआ ।

इस पगोडा को बनाने की कल्पना कैसे हुई, इसके पीछे वडी रोचक कहानी है । कहते हैं, सन १९४८ मे पकोक की बस्ती से कुछ मील पर, शिन मा चौं की पहाडी की तलहटी मे, सया ठे नामक एक वर्मी ध्यानस्थ बैठा था । अकस्मात एक श्वेत वस्त्रधारी वृद्ध उसके पास आया और उसे बास का एक दड दिया, जिसपर पाली लिपि मे 'सिरी मगला' खुदा था । उसे देते हुए वृद्ध ने अनुरोध किया कि वह उसे तत्कालीन प्रधान-मंत्री ऊ नू को दे दे । उस व्यक्ति ने यह भी इच्छा प्रकट की कि ऊ नू एक पगोडा बनवा दे और 'बुद्ध सासना' अर्थात बुद्ध शासन की बुनियाद को पक्का करे । इस प्रकार के आह्वान पर ऊ नू ने पगोडा बनाने के लिए उपयुक्त स्थान की खोज आरभ की । रगून से सात मील की दूरी पर एक पहाडी का चुनाव हुआ । सयोग से उस पहाडी का नाम 'सिरी मगला' निकला । वहापर जिस पगोडा का निर्माण हुआ, वही 'कवा एइ पगोडा' कहलाता है ।

पगोडा का नीचे का व्यास ३०० फुट है और ऊचाई ११८ फुट । उसके शिखर पर सोने का छत्र है । पगोडा के भीतर १०० फुट की एक

गुफा है। उसके पाच द्वार है। प्रत्येक द्वार के सामने तथागत की एक-एक विशाल मूर्ति है। इन मूर्तियो को आधा टन चादी और ४ हडरवेट पीतल से ढाला गया है। एक ऊची वेदी पर वुद्ध के पहले के २८ बुद्धो की स्वर्णिम प्रतिमाए प्रतिष्ठित हैं।

इस पगोडा मे वुद्ध के दो प्रधान शिष्यो—सारिपुत्र तथा महामोग्गलायन—के पवित्र अवशेष स्थापित हैं। सन १८५१ मे ये अवशेष जनरल कनिंघम को साची के तीन स्तूपो मे से एक मे मिले थे। काफी समय तक वे लन्दन के सग्रहालय मे रहे, अनन्तर भारत के स्वतत्र हो जाने पर उन्हें पुन प्राप्त करके भारत, वर्मा तथा श्रीलका मे प्रदर्शित किया गया।

वस्तुत इस पगोडा की मूल भावना अन्य पगोडाओ से कुछ भिन्न है। वह पूजा-अर्चना के लिए तो है, लेकिन मुख्यत वह विश्व-कल्याण तथा विश्व-शाति के महान ध्येय के लिए समर्पित है। उसका नाम भी इसीका द्योतक है। 'कवा' का अर्थ होता है 'विश्व' और 'एइ' कहते है 'शाति' को।

ऊचाई पर अवस्थित होने के कारण इस पगोडा के पास से चारो ओर के दृश्य वडे सुन्दर दिखाई देते हैं।

महापासना गुफा

पगोडा के पास ही 'महापासना गुफा' है। मानव-निर्मित ऐसी गुफा विश्व मे अन्यत्र शायद ही मिले। कहते हैं, वर्मा के तत्कालीन प्रधानमत्री ऊ नू भारत मे विभिन्न तीर्थों के दर्शन करते हुए राजगिरि पहुचे, जहा उन्होंने 'सत्तपाणि' गुफा देखी। फिर वोधगया गये और वहा बोधि-वृक्ष के नीचे ध्यानमग्न होकर बैठ गये। उसी समय ध्यान मे उन्हें एक गुफा दिखाई दी, जो ठीक इस 'महापासना गुफा' जैसी थी। उसमे देश-देशान्तर से आये हुए वौद्ध भिक्षुओ का समुदाय था, जो युद्ध से क्षत-विक्षत विश्व को भगवान वुद्ध का शाति और प्रेम का सदेश देने के लिए एकत्र हुआ था। ऊ नू का वही स्वप्न इस गुफा मे मूर्तिमान हुआ। तीर्थयात्रा से लौटकर उन्होंने स्वप्न मे देखी गुफा की रूपरेखा तैयार कराई और उसके आधार पर यह गुफा वनवाई।

इस गुफ़ा का निर्माण विशेष रूप से छठा बौद्ध सगायन सम्पन्न करने के लिए किया गया था। सगायन का आरभ सन १९५४ के मई मास की १७ तारीख को हुआ और वह लगातार सन १९५६ के मई महीने मे पूर्णिमा तक चलता रहा। उसकी समाप्ति बुद्ध की ढाई हजारवी जयती मनाने के साथ हुई।

इस गुफा की बाह्याकृति एक गुफा की भाति है। उसमे प्रवेश के लिए छ. द्वार हैं। अन्दर एक विशाल सभा-कक्ष है, जिसमे छः स्तभ है। यह कक्ष २२० फुट लम्बा और १४० फुट चौडा है। बाहर से गुफा की लबाई-चौडाई क्रमश. ४५५ और ३७७ फुट है। इस गुफा के निर्माण मे ७० लाख च्या (बर्मी मुद्रा, जो रुपये के बराबर होती है) खर्च हुए और उसके तैयार होने मे लगभग चौदह मास (१ मार्च, १९५३ से १० मई, १९५४) लगे। इस गुफ़ा के निर्माण मे सार्वजनिक रूप से आर्थिक योगदान तो मिला ही, लेकिन सबसे उल्लेखयोग्य बात यह है कि विभिन्न समुदायो के ६३,५३३ व्यक्तियो ने श्रमदान के रूप मे अपनी सेवाए अर्पित की।

सभा-कक्ष मे चारो ओर हजारो बौद्ध भिक्षुओ के बैठने के लिए सीढ़ी-नुमा स्थान बने हुए है। बीच के फर्श पर दर्शनार्थियो के बैठने की व्यवस्था हैं। हमे पता नही था कि सामान्य दिनो मे, जबकि साधुओ के स्थान रिक्त हो, तब भी कोई गृहस्थ वहा नही जा सकता। कक्ष मे घूमते हुए हम सीढियो से होकर साधुओ के सबसे ऊपर के स्थान पर कुतूहलवश पहुंच गये। इतने मे वहा का एक कर्मचारी आ गया और उसने हमे नीचे आने का सकेत किया। हम नीचे उतर आये। हमे मालूम हुआ कि सगायन के अवसर पर यह स्थान विश्व के आकर्षण का केन्द्र बन गया था। बर्मा-वासियो के लिए तो वह एक महान गौरव की वस्तु थी ही।

गुफा मे ऊपर जाने के लिए सीढियां हैं, लेकिन जन-साधारण को ऊपर जाने की अनुमति नही है। जिस कर्मचारी ने हमे रोका था, वह बाद मे हमारे प्रति इतना उदार हो गया कि स्वत ही हमे ऊपर ले गया और बडी अच्छी तरह से गवाक्षो से न केवल सभा-कक्ष ही दिखाया, अपितु सबसे ऊपर ले जाकर छत पर बने बुद्ध-भगवान के मदिर मे तथा-गत की मूल्यवान मनोज्ञ प्रतिमा के भी दर्शन करा दिये। उसने वह छोटी-

सी कोठरी भी दिखाई, जिसमे जब-तब आकर ऊ नू बैठ जाते है और एकान्त-चिंतन करते हैं ।

गुफा के पास ही एक विद्यालय है, जिसमे विभिन्न धर्मों, सस्कृतियो और उनके प्रचार की शिक्षा दी जाती है। इस विद्यालय की नीव ३ अप्रैल, १९५४ को ऊ नू ने रखी थी। उसका मुख्य प्रयोजन प्राच्य तथा पश्चिमी विद्वानो के लिए एक ऐसा केन्द्र स्थापित करना है, जहा वे बौद्ध एव प्राच्य दर्शन मे विशेषज्ञता प्राप्त करके ससार मे सास्कृतिक मैत्री स्थापित तथा सुदृढ कर सके ।

चाक ठा ची पगोडा

रगून मे और उसके आसपास और भी कई पगोडा है । श्वे गोनडाइन रोड पर 'चाक ठा ची पगोडा' मे बुद्ध की एक विशाल निर्वाण-मुद्रा की प्रतिमा है। उसके पास ही बौद्ध विहार है, जिसमे ६०० से अधिक बौद्ध भिक्षु निवास करते हैं ।

को दा चो पगोडा

'को दा ची पगोडा' मे, जो केमेन्डाइन मे है, बुद्ध की ६५ फुट ऊची पद्मासनस्थ मूर्ति है । इसी प्रकार 'डा दानी पगोडा' भी अपनी विशाल मूर्ति के लिए विख्यात है ।

इस अध्याय मे हमने रगून के ही थोडे-से पगोडाओ की चर्चा की है। अन्य नगरो के पगोडाओ का उल्लेख यथास्थान किया जायगा ।

छोटे-बडे सभी पगोडाओ मे नर-नारियो और बच्चो की भीड लगी रहती है, लेकिन क्या मजाल कि कही शोर-गुल सुनाई दे । बडी शान्ति के साथ लोग वहा आते हैं, चढावा चढाते हैं, पूजा करते हैं और चले जाते हैं । धर्म-मण्डपो मे बैठकर वे बातें भी करते हैं, पर देवालय की मर्यादा का उन्हें बराबर ध्यान रहता है ।

उनकी एक विचित्र प्रथा से हमे शुरू-शुरू मे बडा अटपटा-सा लगा। पगोडाओ मे लोग जूते पहनकर नही जाते, जूतो को हाथ मे ले जाते हैं। मूर्ति के सामने पहुचकर वे जूतो को अपने पास रख लेते हैं। इतना ही

नही, मूर्ति को अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करके कुछ लोग वही बैठ जाते है और चुरुट जलाकर पीने लगते हैं। स्त्री-पुरुषो का जूते पास मे रखना और धुंआ उडाना जब हमने पहली बार देखा तो मन पर बडी अजीब-सी छाप पड़ी। कुछ लोगो को मूर्ति के सामने बैठकर भोजन करते और चटाई पर सोते देखकर और भी विचित्र लगा, लेकिन जब उनकी धर्म-निष्ठा की ओर हमारा ध्यान गया, पूजा के समय उनकी अविचल भक्ति देखी, तो हृदय गदगद हो गया।

: ५ :

बर्मा की होली

हम पहले ही बता चुके हैं कि हम लोगो को उस अवसर पर बर्मा बुलाने का एक मुख्य कारण यह भी था कि हम वहाकी होली देख सकें। ब्रह्मदेशवासियो के लिए वैसे तो सभी त्योहार महत्त्व रखते हैं, क्योकि वे लोग स्वभाव से उत्सव-प्रिय हैं, लेकिन नये वर्ष के आगमन पर मनाये जानेवाले 'तिजान' अथवा जलोत्सव की तो महिमा ही निराली है।

हवाई अड्डे पर उतरकर शहर जाते हुए हमे दिखाई दिया था कि रास्ते मे जगह-जगह पर वर्मी वालक-वालिकाए पिचकारिया तथा वाल्टी-कटोरे लिये सडक पर खडे थे और स्मरण दिला रहे थे कि ये होली के दिन हैं। बच्चो की टोलियो को देखते ही हम मोटर के शीशे वन्द कर लेते थे। फिर भी, पूरी सावधानी के वावजूद दो-एक जगह थोडा पानी हमपर पड ही गया। लेकिन जब हमने वस्ती मे प्रवेश किया तो नगर की सज-धज और नगरवासियो के उछाह को देखकर यह छिपा न रहा कि होली का पर्व वहाके लोगो के लिए वडा ही महत्त्वपूर्ण है, और वहाके लोक-जीवन मे उसका विशेष स्थान है। अलग-अलग मुहल्लो मे सडको पर कलापूर्ण मण्डप वनाये गए थे और उन्हे रग-विरगी पन्नियो तथा कागजो से सजाया गया था।

यह जलोत्सव नववर्ष के आरभ की खुशी मे मनाया जाता है, और इसे वहा के लोग 'तिजान' कहते है। 'तिजान' शब्द सस्कृत के 'सक्रान्त' शब्द का वर्मी रूपान्तर है। इस अवसर पर पहले दिन देवराज इन्द्र का आह्वान किया जाता है। अनन्तर दो दिन तक पानी से खूब होली खेली जाती है। सारा देश आनद मे सरावोर हो जाता है। पर्व की मूल कल्पना मे जहा नववर्ष के अभिनन्दन की भावना है, वहा यह प्राचीन मान्यता भी है कि गरम और प्यासी धरती को पानी से शीतल कर दिया जाय और पीछे के वर्ष की सारी कलुषता को शुद्ध जल डाल-डालकर धो दिया जाय।

इस पर्व का महान आकर्षण उसकी विभिन्न सास्कृतिक झाकिया है, जो चार दिन तक रोज शाम को निकलती है। मोटरो और ट्रको पर नाना प्रकार के कलापूर्ण दृश्य बनाये जाते है और उनके बीच रगमच पर युवको और युवतियो की टोलिया सुन्दर अभिनय करती हुई, वाद्यो की मधुर तानो के साथ, सारे शहर मे चक्कर लगाती हैं। इस पर्व का नगर के महापौर द्वारा विधिवत रूप से उद्घाटन होता है, जिसमे सहस्रो नर-नारी सम्मिलित होते हैं।

रंगून पहुचने के दिन हमने शाम को नगर मे चक्कर लगाया। मण्डपो की सजावट तथा कुछ झाकिया देखी। लेकिन अगले दो दिन मे जलोत्सव का जो आनद लिया, वह चिरस्मरणीय रहेगा। खुली गाडी मे पहले दिन शहर मे घूमे। सडको और गलियो मे जगह-जगह पर बालको, युवको, युवतियो और कही-कही बडो ने भी, गाड़ी को रोककर पानी की ऐसी वर्षा की कि हमने उसकी कल्पना भी नही की थी। सडक पर या सडक के किनारे कही पानी से भरे पीपे रखे थे, कही बाल्टिया या दूसरे बर्त्तन और कही-कही नल मे रबर की मोटी नली लगाकर पानी को सडक पर ले आया गया था। पानी से सराबोर हुए बिना किसीका भी आगे बढना संभव न था। चारो ओर उल्लास-ही-उल्लास दिखाई पडता था। जिस समय लोगो के ऊपर पानी डाला जाता था, उनकी टोली खिलखिलाकर हाथ से ताल देती हुई, 'ईराबो-ईराबो' चिल्लाती थी, जिसका अर्थ था—"बस, इतना ही पानी डालोगे! हम खुश हैं। लो, डालो, और डालो।" इस मधुर चुनौती का उत्तर वे लोग और पानी डालकर देते थे। मैं और विष्णुभाई कानो को पानी के प्रहार से बचाने के लिए सिर पर तौलिया डाले हुए थे। उससे उन लोगो को भ्रम होता था कि गाडी मे लड़किया बैठी हुई हैं। परिणाम यह होता था कि हम दोनो पर उनकी सबसे अधिक कृपा होती थी, यो प्रसाद सबको मिलता था। पानी पडते ही हम अपना सिर झुका लेते थे और कभी-कभी देखते थे कि किसीने गर्दन के पास से कुर्ते को जरा हटाकर बर्फ का टुकडा अन्दर डाल दिया है। कही-कही हमे बडे प्यार से शरबत पिलाया जाता था और हमारे पीने से जो शरबत बचता था, उससे उतने ही प्यार से हमे स्नान भी करा दिया जाता था।

होली के भावपूर्ण तथा उमग से छलछलाते दृश्यो को देखते हुए हमने पहला दिन शहर मे और दूसरा दिन रगून से लगभग ५२ मील दूर, पेगू नगर मे, व्यतीत किया। बीसियो शहरी तथा ग्रामीण टोलियो ने हमसे होली खेली, लेकिन कही भी पानी के अतिरिक्त रग, कीचड अथवा मिट्टी का उपयोग होते हुए हमने नही देखा। होली का उन्माद सभीपर छाया हुआ था, किंतु छोटो से लेकर बडो तक किसीके भी व्यवहार मे उच्छृखलता अथवा असयम न था। एक प्रकार की शिष्टता थी, जो बर्मावासियो की परिष्कृत रुचि का आभास कराती थी। इसका मतलब यह नही कि उनमे विनोद की भावना की कमी थी। वे मजाक करते थे और कहीं-कही तो खूब करते थे। हमारी गाडी को रोककर अनेक स्थानो पर पूछते थे कि उसमे लडकिया हैं और जब हम मना कर देते थे तो वे मुह बनाकर रास्ते से हट जाते थे। एक जगह तो हमने बिलकुल नये ढंग का मजाक देखा। एक आदमी बेंगी मे दो छोटे-छोटे बच्चो को बिठलाकर कंधे पर लिये जा रहा था। कहता था, "इनकी मा खो गई है। बच्चे मां चाहते हैं। है कोई स्त्री, जो इन्हे अपनाले?" आदमी की वेशभूषा और भाव-भगिमा को देखकर हम लोग हँसी के मारे लोटपोट हो गये।

होली का तूफान सवेरे से ही शुरू हो जाता है। शाम को जब झाकियां निकलती हैं, उसका वेग बहुत कम ही नही, बल्कि समाप्त हो जाता है। झाकियो पर लोग सामान्यतया पानी नहीं डालते, लेकिन झाकियो की गाडियो मे से लडके-लडकिया सडक के उधर-इधर एकत्र भीड पर थोडा-बहुत पानी डालते जाते हैं।

अपराह्न मे कोई दो बजे के लगभग पानी डालनेवाले अपने-अपने घर चले जाते हैं, और फिर शाम को बढिया कपडे पहनकर झाकिया देखने निकलते हैं। उस समय जगह-जगह पर भीड को देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो ब्रह्मदेशवासियो में रगीनी बहार आगई है। इसका आभास उनकी कीमती रग-बिरगी पोशाको से ही नही होता, अपितु उनके उल्लास के उमडते सागर को भी देखकर विशेष रूप से होता है।

इस आनंद को केवल ब्रह्मदेशवासी लूटते हो, ऐसा नही है । उत्सव की बहुत बडी विशेषता यह है कि जाति, धर्म अथवा रग के बिना भेदभाव के सब उसमे शामिल होते हैं । चीनी, भारतीयो आदि की बस्तियो मे भी होली की वही छटा देखने मे आती है, जो बर्मियो की बस्तियो मे दीख पड़ती है ।

झाकिया और अभिनय इस पर्व के ऐसे अग है, जो सस्कृति, कला, नृत्य एव सगीत के प्रति ब्रह्मदेश के निवासियो के प्रेम को व्यक्त करते हैं। झाकियो मे बहुत बढिया सजावट होती है । उनमे बर्मा के दर्शनीय स्थलो अथवा लोकजीवन के प्रसगो को दिखाया जाता है । कही-कही पर प्रह-सनो द्वारा शासन की त्रुटिया भी बताई जाती है । कोई-कोई अभिनय शुद्ध मनोरजन के लिए होते है । बर्मी सगीत तथा नृत्य के ऐसे-ऐसे नमूने सामने आते है कि देखनेवाले मुग्ध हुए बिना नही रह सकते । इस अवसर पर झाकियो और अभिनयो की प्रतियोगिताए भी होती है । विजेताओ को पुरस्कार मे ट्राफिया, शील्द आदि दिये जाते है ।

होली के अतिम दिन का दृश्य तो इतना मनोहारी होता है कि उसका वर्णन शब्दो मे करना कठिन है । युवतियो की टोलिया जल के छोटे-छोटे घट लेकर देवालयो मे जाती है और वहांपर धूप, मोमबत्ती, नारियल, कदली-फल तथा पान आदि से देवार्चन करती है । इस त्योहार पर बौद्ध भिक्षुओ को भोजन-वस्त्र देने का भी रिवाज है ।

हम उस दिन रगून के सुविख्यात श्वे डगोन पगोडा मे गये, जहा सबसे अधिक भीड होती है । पगोडा के विस्तृत प्रागण मे जनसागर लहरा रहा था और श्रद्धा-भक्ति तथा आतरिक उल्लास की ऐसी निर्मल धारा बह रही थी कि हम उसे बहुत देर तक मुग्ध-भाव से देखते रहे । वस्तुत. सामूहिक आनन्द और उल्लास का वह अभूतपूर्व अवसर था । हमे इस बात की बडी प्रसन्नता थी कि वहाके इस अनूठे पर्व को हम अपनी आखो मे देख सके और उसमे सम्मिलित हो सके ।

: ६ :

लोकजीवन की झांकी

वर्मा मे हम लोग जितने दिन रहे, हमारा अधिकाश समय विभिन्न स्थानो मे घूमने, लोगो से मिलने-जुलने, सभाओ मे जाने तथा सस्थाओ आदि के देखने मे व्यतीत हुआ। कई नगरो मे गये, कुछ गाव देखे, अनेक प्राकृतिक स्थलो की सैर की और बहुत-से ऐतिहासिक स्थानो का अध्ययन किया। मोटर, रेल अथवा विमान से एक जगह से दूसरी जगह जाते हुए देश का काफी वडा भाग आखो के सामने से गुजरा। इसमे कोई सदेह नही कि वर्मा के नगरो की वनावट और वसावट, उसके वन और पर्वत, उसकी झीले और सागर, उसकी वाह्याकृति को वडा सुन्दर रूप प्रदान करते है, लेकिन वर्मा की असली झाकी उसके लोकजीवन में मिलती है। समूचे राष्ट्र की आत्मा उसीमे स्पन्दित होती है। वास्तव में वही उसका वास्तविक रूप है।

वर्मा के निवासियो का जीवन वडा उन्मुक्त है। वैयक्तिक, सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्रो मे उनपर कोई ऐसा वाहरी प्रतिवन्ध नहीं है, जो उनके व्यक्तित्व के विकास को कुण्ठित करे। अधिकाशत वर्मियो की आवश्यकताए कम हैं और उनकी कोई खास महत्त्वाकाक्षा भी नहीं है। फलत जीवन उनके लिए भार नही है। अपनी दैनिक इच्छाओ की पूर्ति के लिए कमाई करके वे सतुष्ट रहते है। व्यतीत अथवा भविष्य को लेकर हैरान होने का उनका स्वभाव नही है। वे वर्तमान मे जीते हैं, पर वर्तमान के लिए भी वे चिंता से प्राय नाता नही जोडते। जो मिला, उसमे अच्छा खा लिया, अच्छा पहन लिया। वचाने के लालच मे अपना पेट नही काटते।

रहन-सहन उनका वडा सादा होता है। कपडो के नाम पर स्त्री-पुरुष दोनो लुगी और ऐंजी पहनते हैं। ऐंजी फतूरी-जैसी होती है। स्त्रिया प्राय सफेद कपडे की ऐंजी वनवाती है, पुरुष रगीन की। दोनो की वना-

वट मे थोडा अन्तर होता है। लुगी तहमद-जैसी होती है, पर उसके दोनो किनारे सिले हुए होते है। मर्द-औरते, दोनो रगीन लुगी पहनते हैं, लेकिन स्त्रियो की लुगिया अधिकतर गहरे रग की और अधिक कीमत की होती हैं। अपने निवास-काल मे हमने इतने बर्मियो को देखा, लेकिन एक भी व्यक्ति हमे ऐसा दिखाई नही दिया, जिसके कपडे गदे अथवा भद्दे हो। घरों के अन्दर वे कैसे ही कपडे पहन लेते हो—वहा भी वे साफ-सुथरे रहते हैं—लेकिन बाहर जब वे निकलते हैं तो गरीब-अमीर दोनो को कपडो का विशेष ध्यान रहता है। कहने की आवश्यकता नही कि उनकी पोशाक मे कपड़े की तो किफायत होती ही है, उनके बदन मे चुस्ती भी रहती है।

मातृ-मूलक समाज की परिपाटी होने के कारण वहा स्त्रियो की प्रमुखता है। घर मे, बाहर, सब जगह नारी का प्रभुत्व दिखाई देता है। उनकी यह परम्परा प्राचीन काल से चली आती है। बर्मी राजाओ के जमाने मे अक्सर स्त्रियो को ऊचे पद दिये जाते थे, वे ग्रामो की मुखिया बनती थी और कही-कही तो रानी के रूप में शासन का दायित्व अपने ऊपर उठाती थी। बर्मा की लोककथाओ मे स्त्रियो की कुशाग्र बुद्धि, चतुराई तथा कर्मठता के उल्लेख आज भी मिलते हैं।

वहा की नारी की क्षमता को देखकर विस्मय होता है। वे घर सभालती हैं, बच्चो की देखभाल करती है, बाहर नौकरी करती है और अपना छोटा-बड़ा कारोबार चलाती हैं। दूकानो पर अक्सर स्त्रिया ही काम करती पाई जाती हैं। उनके आदमी और बच्चे उनकी मदद करते हैं, लेकिन प्रमुखता स्त्री की ही रहती है। वही ग्राहको से बात करती हैं, उन्हे सामान दिखाती हैं और हिसाब-किताब करती है।

इससे यह भ्रम हो सकता है कि वहा स्त्री से पुरुष का दर्जा नीचा होता होगा। ऐसी बात नहीं है। स्त्री अपने आदमी को पूरा आदर देती है, उसकी सारी सुविधाओ को देखती है और सामाजिक जीवन मे सदा उसे आगे रखती है। नौकरी मे पति का स्थानातरण होने पर स्वय अपना काम छोडकर उसके साथ जाती है, और नई जगह पर अपने लिए नया काम खोज लेती है। दैनिक व्यवहार मे यहा तक देखा जाता है कि पति-पत्नी जब बाहर जाते है तो पत्नी प्राय पति से पीछे रहने का प्रयत्न करती है।

सवाल उठता है कि जब स्त्रियो पर कोई बधन नही है तो वे पुरुष को क्यो अपनेसे वडा मानती हैं और घरेलू तथा सार्वजनिक जीवन मे क्यो उससे पीछे रहती हैं ? इसका कारण यह है कि प्राचीन काल से वहा इस प्रकार की परम्परा चली आ रही है, साथ ही वहाके नारी-समाज। मे विश्वास फैला हुआ है कि जव नये बुद्ध का जन्म होगा तो वह पुरुष के रूप मे ही इस भूमि पर अवतरित होगे। इसमे सचाई हो या न हो, लेकिन वहा की धर्म-परायण नारी मे इस प्रकार के विश्वास से ऐसे सस्कार वन गये हैं, जो पुरुष को स्वत ही ऊचे धरातल पर बिठा देते हैं।

विवाह की वहा वडी विचित्र पद्धति है। जात-पात का भेद-भाव न होने के कारण कोई किसीसे भी विवाह कर सकता है। कभी-कभी मा-वाप या सवधी भी शादिया तय करते है, लेकिन ज्यादातर लडके-लड-किया दोनो साथ-साथ कही चले जाते है और सात दिन या ऐसे ही कुछ समय तक वे छिपे रहते है। इससे दोनो के मा-वाप समझ लेते हैं कि वे विवाह कर रहे है। कही-कही पर लडके या लडकी के घर के चारो ओर से आठ-आठ घरो से अगर कोई पत्थर नही फेकता तो समझ लिया जाता है कि उस विवाह से किसीको आपत्ति नही है। नियत समय के पश्चात लडका-लडकी लौट आते हैं और माता-पिता के चरण छूकर उनका आशीर्वाद प्राप्त करते है।

विवाह की विधि होना आवश्यक नहीं है। लडके-लडकी के साथ रहने का ही अर्थ यह होता है कि उन्होने शादी कर ली है। विवाह वहाके समाज के लिए कोई धार्मिक अनुष्ठान नही है। विवाह के वाद लडका लडकी के यहा जाकर रहता है, लेकिन यदि वह अपने माता-पिता की इकलौती सतान हो तो लडकी उसके साथ आकर रहती है।

यदि किसी कारण से पति-पत्नी एक-दूसरे से सबध-विच्छेद करना चाहें तो कानून की ओर से कोई रुकावट नही है। पति-पत्नी दोनो निर्णय करते हैं कि किसी भी कारण से हो, वे साथ नही रह सकते तो वे घर या गाव के मुखिया के सामने इसकी घोषणा कर देते हैं और अलग हो जाते हैं, लेकिन यदि पति राजी न हो तो भी स्त्री पति की क्रूरता, बुरे आचरण आदि के आधार पर उसे तलाक दे सकती है। स्त्री साल-भर तक पति से

अलग रहती है और उससे पैसा नहीं लेती तो पति उसे छोड़ सकता है। दूसरी ओर, यदि आदमी तीन साल तक स्त्री से कोई संबंध नहीं रखता तो वह अपनेको मुक्त मान लेती है।

बर्मी समाज में बहु-विवाह की प्रथा आज भी प्रचलित है। एक-एक आदमी कई-कई स्त्रियां रखने के लिए स्वतंत्र है, और वे प्राय रखते भी हैं। इसमें पहली पत्नी की अनुमति जरूरी होती है। पर बहुत-से मामलों मे वह भी नहीं ली जाती। एक आदमी से छुटकारा मिलने पर स्त्री दूसरे से शादी करने के लिए आजाद होती है, और वह शादी कर भी लेती है। कुछ ऐसी मिसालें भी मिलती हैं कि पति के होते हुए भी दूसरे से मन मिल जाने पर स्त्री उसके साथ चली गई।

लेकिन इस सबसे यह न समझा जाय कि वैवाहिक बंधन वहां पर बहुत शिथिल है। ऐसा नहीं है। बर्मी नारी प्यार करना जानती है और जिसे वह एक बार अंगीकार कर लेती है, उसे निभाने की जी-जान से कोशिश करती है। वैवाहिक जीवन को वे भरसक सुखी बनाती हैं। बर्मा मे उच्च तथा मध्यम श्रेणी मे अधिकाश परिवार ऐसे मिलते है, जो भरे-पूरे हैं और शाति तथा सतोष का जीवन बिताते हैं। लडाई-झगड़े प्राय. निचली श्रेणी मे दिखाई देते हैं।

बर्मी जीवन की सबसे बडी विशेषता लोगो की उदारता है। धर्म का उनपर इतना प्रभाव है कि वे अपनी सामर्थ्य के अनुसार बौद्ध साधुओ को बिना दान-दक्षिणा दिये नही रह सकते। सवेरे के समय जब फुगियो के दल मधुकरी (भिक्षाटन) के लिए निकलते है तो वह दृश्य देखने योग्य होता है। बर्मी स्त्रिया उनके लिए अन्न-वस्त्र की व्यवस्था रखती है और बड़ी भावना तथा श्रद्धा के साथ उनका आतिथ्य एव आदर-सत्कार करती हैं। इसके अलावा पगोडाओ मे जाकर वे चढावा भी चढाती है। एक भी पगोडा ऐसा नही मिलेगा, जिसमे सामने ही शीशे की सदूकची न रखी हो और जो सिक्को तथा नोटो से भरी हुई न हो। गरीब-से-गरीब बर्मी भी उसमें कुछ-न-कुछ डाल ही आता है।

बर्मी स्वभाव से बड़े मौजी हैं। जीवन मे निश्चित,

उनके कई महत्त्वपूर्ण पर्व हैं। 'तिजान' अर्थात होली की विस्तृत चर्चा हम कर चुके हैं। दूसरा महत्त्वपूर्ण त्योहार 'दडिजो' अर्थात दीपावली है। यह आश्विन मास मे पडता है। इस अवसर पर घरो की सफाई की जाती है और तोरण, बदनवार, झडियो आदि से घरो को सजाया जाता है। स्थान-स्थान पर केले के तनो के द्वार बनाये जाते हैं। पटाखे और फुलझडिया छोडी जाती हैं। दीपको का प्रकाश तो होता ही है।

शेष दस मासो के दस पर्व हैं, जिनमे वैशाख का पर्व उनके लिए विशेष महत्त्व का होता है। उसे 'नौं ये तो प्वे' अर्थात पीपल पर जल चढाने का पर्व कहते हैं। भगवान बुद्ध इसी मास मे सिद्धार्थ के रूप मे पैदा हुए थे, इसी मास मे उन्होंने सन्यास धारण किया था, इसी मास मे उन्हे बोधि-वृक्ष के नीचे सबोधि की प्राप्ति हुई थी और इसी मास मे उनका महा-परिनिर्वाण हुआ था। इसी कारण इस त्योहार को बडी श्रद्धा और धूम-धाम से मनाया जाता है।

बच्चो के नामकरण, कनछेदन आदि की भी विधिया होती है, लेकिन सबसे अधिक भावना की अभिव्यक्ति उस समय होती है, जबकि घर का बालक अल्पकाल के लिए बौद्ध भिक्षु बनता है। उस अवसर पर बडा शान-दार मण्डप बनाकर लोगो को एकत्र किया जाता है। काफी खर्च होता है। उसे तथा अन्य भिक्षुओ को दान दिया जाता है।

उससे भी अधिक खर्च का अवसर तब आता है, जबकि घर मे किसीकी मृत्यु होती है। शव को वहा कुछ समय तक रखने की प्रथा है। नाते-रिश्तेदार, पडोसी सब इकट्ठे हो जाते हैं। फिर विमान बनाकर शवयात्रा होती है। शव को वहा जमीन मे गाडा जाता है, अग्निदाह नही किया जाता।

बर्मी जीवन मे कला का ऊचा स्थान है। धनी और निर्धन, सब अपने घरो को कलापूर्ण ढग से रखते हैं। इतना ही नही, उनके घरो मे अक्सर सगीत के मधुर स्वर सुनाई दिया करते हैं।

सक्षेप मे, बर्मी लोकजीवन की सबसे बडी विशेषता यह है कि वहाके नर-नारी अपनेको अधिकाधिक सुखी बनाना चाहते है, भौतिक वस्तुओ का सग्रह करके नही, बल्कि छोटी-से-छोटी चीजो मे रस पैदा करके।

: ७ :

एक बर्मी साधक से भेंट

हमारे प्रवास का मुख्य उद्देश्य साहित्यिक एव सास्कृतिक था। इसलिए जिन-जिन देशो मे हम गये, वहाकी सस्कृति और साहित्य की अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करने की हमारी इच्छा रही। इस जिज्ञासा के फलस्वरूप हमे वहुत-से ऐसे स्थानो को देखने का अवसर मिला, जहा सस्कृति की दृष्टि से वडी ही मूल्यवान सामग्री विद्यमान थी और ऐसे साहित्यकारो से भेट हुई, जिनका साहित्य की अभिवृद्धि मे विशेष योग-दान रहा है। रगून की ऐसी ही एक भेट ने हमारी वर्मा-यात्रा को चिर-स्मरणीय वना दिया। वर्मा की राजनीति तथा साहित्य मे वयोवृद्ध वर्मी साधक कोडो म्हाइंग का अपना स्थान रहा है[1]। हमारे मित्र श्री श्यामाचरण मिश्र की प्रेरणा से एक दिन अपराह्ण मे हम लोग उनसे मिलने गये। हमारी टोली मे विष्णुभाई और मेरे अतिरिक्त श्यामाचरण-जी तथा तरुण वर्मी साहित्यकार श्री पारगू थे। पारगू हिन्दी अच्छी जानते हैं और रगून-स्थित भारतीय राजदूतावास मे काम करते है। मुगल स्ट्रीट से सात-आठ मील की दूरी पर जव एक छोटे-से मकान पर हमारी मोटर रुकी तो वहाकी वस्ती और लोगो के रहन-सहन को देख-कर लगा कि वहा मामूली हैसियत के लोग रहते है। छद स्ट्रीट के पाच नम्बर के मकान के छोटे-से फाटक को खोलकर अन्दर गये। सहन मे दोनो ओर को थोड़ी-सी हरियाली थी। सामने एक वर्मी महिला खडी थी। पारगू ने उससे बर्मी मे बात करके हमे वताया कि कोडो म्हाइग घर में हैं। अन्दर वरामदे मे कुर्सी पर एक बुजुर्ग बैठे दिखाई दिये। हमने उन्हें नमस्कार किया। पारगू ने कहा, "यह कोडो म्हाइग नही है।" हम कमरे मे पहुचे। सामने सोफा तथा कुछ कुर्सिया पडी थी। उन्हींपर हम सव बैठ गये और कमरे की चीजे देखने लगे। मकान लकडी का था।

---

१. जुलाई १९६४ में कोडो म्हाइंग का देहान्त हो गया।

कमरे मे कई चित्र टगे थे, जिनमे तीन तो स्वय कोडो म्हाइग के थे। एक चित्र वर्मी नेता औं सौं का था, एक शान्ति के प्रतीक कपोत का, कुछ प्राकृतिक दृश्यो के, एक पगोडा का। दो अलमारियो मे पुस्तके थी और दो मे विभिन्न प्रकार के खिलौने तथा बास की सुनहरी वस्तुए। एक अलमारी मे एक सुन्दर गुडिया थी। अन्दर का कमरा यद्यपि पूरी तरह से दिखाई नही दे रहा था, तथापि एक अलमारी दरवाजे के सहारे ही रक्खी दीख रही थी, जिसमे किताबें भरी हुई थी।

थोडी देर तक बैठे-बैठे कमरे की चीजो पर निगाह डालते रहे, इतने मे बराबर के कमरे से कोडो आये। वृद्धावस्था ने उन्हें पूरी तरह आक्रात कर रक्खा था। आकृति मे वह गढवाली जैसे लगते थे। चेहरे पर सफेद मूछें, सिर पर बडे-बडे खिचडी बाल। आते ही उन्होंने हमारा अभिवादन किया। पारगू ने परिचय कराया। उन्होंने हाथ जोडकर नमस्कार किया, हाथ मिलाया और सोफे पर बैठ गये। उसी समय उनके जामाता श्री जेया आ गये। जेया खुद अच्छे लेखक हैं और कोडो के साथ ही रहते हैं। अग्रेजी के जानकार होने के कारण परिवाचक का काम उन्होने ही किया। वर्षों से कोडो के साथ रहने से उन्हें बहुत-सी बातें मालूम थी। इसलिए हमारे कई सवालो के जवाब उन्होने स्वय ही दिये। कोडो के उदास चेहरे को देखकर हमने उनके स्वास्थ्य के बारे मे पूछा तो मालूम हुआ कि उनकी तबियत ठीक नही है। जेया महोदय ने यह भी बताया कि उनकी एक आख की ज्योति जाती रही हैं और वह उसका आपरेशन कराने के लिए शीघ्र ही पूर्व जर्मनी जानेवाले हैं। मैंने कोडो से पूछा, "आजकल आप क्या लिख रहे हैं?"

उन्होंने उत्तर दिया, "आजकल मेरा स्वास्थ्य अच्छा नही है। इसलिए लिखना-पढना नही हो रहा है।"

"आपने लिखना कब आरम्भ किया?"

"आज से कोई ६० साल पहले। इस समय मेरी उमर ८८ साल की है। मेरा जन्म सन १८७२ मे हुआ था।"

"आपको लिखने की प्रेरणा कब और कैसे हुई?"

मेरे इस प्रश्न के उत्तर मे उन्होने बताया कि सन १८८५ मे अंग्रेजो

ने,ब्रमी के अन्तिम राजा तीबो को माडले के राजमहल मे गिरफ्तार कर लिया ,और यह घटना उनकी आखो के सामने घटी। उस समय उनकी अवस्था कोई १३ साल की थी। इस घटना का उनके दिल पर गहरा असर पडा और वह अग्रेजो को घृणा की दृष्टि से देखने लगे। तभी से उन्हे लिखने की प्रेरणा हुई।

आगे उन्होने बताया कि उनका वास्तविक नाम ऊ लुन था, लेकिन 'छि माग वैते' नामक उपन्यास को पढकर उन्होने अपना नाम 'मौ म्हाइग' रख लिया। उस उपन्यास मे एक कुजडे का जीवन न केवल हेय रूप मे चित्रित किया गया था, अपितु उसके द्वारा निम्न वर्ग की खिल्ली उडाई गई थी। उसकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उन्होने मिस्टर मौ म्हाइंग मारोबो' उपन्यास लिखा, जिसमे उच्च वर्ग की भ्रष्टता को पाठको के सामने रक्खा। लगभग २८ वर्ष की आयु मे उन्होने लिखना आरम्भ किया। शुरू मे गद्य-पद्य दोनो मे लिखा, लेकिन बाद मे जन-सामान्य तक पहुचने के लिए उन्हे गद्य अधिक शक्तिशाली माध्यम लगा।

मेरे यह पूछने पर कि उनके साहित्यिक जीवन तथा लेखन-कार्य का किस प्रकार विकास हुआ, जेया ने बताया कि प्रारम्भ मे उन्होने नाटक लिखे, जिनका प्रकाशन जबू चैत्ती (जम्बू श्री) प्रकाशनगृह से हुआ। सन् १६०५ मे कोडो 'न्यूज वीकली' के सपादक हुए, १६०७ मे राष्ट्रीय दैनिक पत्र 'तूर्या' (सूर्या) के। 'तूर्या' नाम कोडो ने ही रक्खा, क्योकि अगरेज वर्मी राजा तीबो को जिस जहाज मे वन्दी बनाकर ले गये थे, उसका नाम 'तूर्या' ही था।

उनका पहला नाटक था 'ठीला पोऊ', जो अपर बर्मा के एक आख्यान पर आधारित था। दूसरा था 'श्वे डगोन पगोडा एण्ड दी टाइग्रेस,' तीसरा 'सम्राट अशोक'। इनके अलावा २०-२२ नाटक और हैं। चार कविता-सग्रह है, जिनमे से केवल एक प्राप्य है। नाटको मे से अधिकाश अप्राप्य है।

कहानिया भी उन्होने सैकड़ो लिखी है। उनमे से अधिकतर राष्ट्रीय हैं। उनकी रचनाओ ने अनेक लेखको, कवियो तथा उपन्यासकारो को लोक-हितकारी साहित्य के सृजन की प्रेरणा दी है। उनकी एक कृति

'तखिनतीका' मे दासता की तीव्र निन्दा करते हुए राष्ट्र के जागरण तथा स्वातत्र्य के लिए प्रयत्नशील होने का आह्वान किया गया है, साथ ही राष्ट्र के कर्णधारो के दायित्वो एव कर्तव्यो का निर्देश करते हुए विदेशी सत्ता की भर्त्सना की गई है।

"क्या आप वर्मा से वाहर भी गये है ?"

"हा, सन १९५२ मे मैं पहली बार रूस गया। मैं सोवियत-वर्मी मैत्री-सघ का सस्थापक हू। रूस की सरकार ने मुझे आमन्त्रित किया था। वाद मे हगरी गया। वहा से लौटते हुए सन् १९५२ मे फिर मास्को गया।"

कोडो थके हुए दिखाई दे रहे थे। इसलिए मैंने जेया से कहा कि वह चले जाय और आराम करे। हम लोग आपस मे वातें कर लेंगे। लेकिन उनके जाने से पहले मैं उनका एक चित्र लेना चाहूगा। जेया ने उनसे पूछा। वह सहर्ष तैयार हो गये, पर उसके लिए सीधे वाहर उजाले मे नहीं आ गये। पहले अपने कमरे मे गये, कपडे वदले, फिर आये। उन्होंने दूसरी लुगी पहन ली थी और दूसरी ऐंजी, सिर पर पगडी। इस वीच मैंने वाहर सहन मे एक कुर्सी डलवाकर उनके वैठने की व्यवस्था करा ली थी।

चित्र खिचने के वाद कोडो फिर सोफे पर आ वैठे और चर्चा चल पडी।

"आजकल आप क्या चिन्तन कर रहे है ?" मैंने पूछा।

"मैं देश मे आतरिक शान्ति स्थापित करना चाहता हू। उसके लिए ८ व्यक्तियो की एक शान्ति-समिति है, जिसका मैं अध्यक्ष हूं। स्वास्थ्य ठीक न होने पर भी मुझसे जो वनता है, वह करता रहता हू।"

"नये लेखको को प्रेरणा देने के लिए आप क्या कर रहे हैं ?"

"मिलने पर उन्हें राष्ट्र-सेवा करने के लिए प्रोत्साहित करता हू।"

मेरे यह पूछने पर कि वह भारत गये या नही, जेया वोले, "जी हा, ये तीन-चार वार भारत हो आये हैं। आखिरी वार सन् १९५६ मे गये थे। श्रीलका मे विश्व-शाति परिषद् हुई थी। उसीमे शामिल होने गये थे। जाते समय मद्रास मे रुके और वह भवन देखा, जिसमे माडले के राजा को रखा गया था। उसे वुरी दशा मे देखकर इन्हे वडी वेदना हुई। काग्रेस

के बाद वह फिर भारत आये और बोधगया, काशी, श्रावस्ती, नालन्दा, पटना और दिल्ली गये। नेपाल भी।"

"लौटकर इन्होने भारत के बारे मे कुछ लिखा ?"

"जी हा, एक-दो लेख लिखे।"

मेरा अगला सवाल था, "भारत और बर्मा के बीच कोई साहित्य-शृंखला नही है। आप उस बारे मे क्या सोचते हैं ? वह कैसे कायम हो सकती है ?"

उन्होने कहा, "आपकी बात ठीक है कि भारत और बर्मा के बीच इस समय कोई साहित्यिक शृंखला नही है, लेकिन इन दोनो देशो के बीच जो प्रवृत्तिया चल रही हैं, वे कोई-न-कोई शृंखला पैदा कर देंगी ?"

"यदि इस कार्य को विधिवत रूप से सचालित करने के लिए भारत-बर्मा-साहित्य-परिषद् जैसी कोई सस्था स्थापित हो तो कैसा होगा ?"

"बहुत अच्छा होगा। पर मेरा स्वास्थ्य इस दिशा मे सक्रिय रूप से कुछ करने मे बाधक है। लेकिन इस ओर मेरा प्रयत्न तो बराबर रहा है। बर्मी लेखक-सघ का मैं प्रथम सरक्षक हूं। भारत और बर्मा के बीच साहित्यिक दृष्टि मे बहुत-कुछ सामान्य है, क्योकि हमारा बहुत-सा साहित्य भारतीय कथानको और विषयो पर आधारित है।"

आजकल वह क्या लिख रहे है ? इस सवाल के जवाब मे जेया ने कहा, "इन्होने काफी लिखा है, पर उसपर कोई कापी-राइट नही है। जो चाहे, छाप ले। प्रकाशको ने इनकी पुस्तको को छापा, लेकिन रायल्टी के रूप मे कुछ नही दिया। अब अधिकाश पुस्तके अप्राप्य हैं। पन्द्रह पुस्तको के पुनर्मुद्रण की व्यवस्था हो रही है। रूस और चीनवाले इनकी सारी सामग्री अनुवाद और प्रकाशन के लिए एकत्र कर रहे है।

विष्णुभाई ने कहा, "वे लोग ऐसा क्यो कर रहे है ? शायद कोडो की वाम-पक्षी विचार-धारा के कारण ?"

जेया इसका उत्तर टाल गये।

मैंने कहा, "इनकी कुछ पुस्तको के अनुवाद-प्रकाशन की व्यवस्था हिन्दी मे भी हो सकती है।"

जेया बोले, "अनुवाद का काम बडा कठिन है। इनकी रचनाएं इतनी

दुरूह हैं कि इनके साथ बरसो रहने पर भी मैं अक्सर चक्कर मे पड जाता हू। कालिदास के शाकुतलम् का अनुवाद मैंने वर्मी मे करना चाहा, पर सफलता नहीं मिली। मूल लेखक के भावो को यथार्थ रूप मे दूसरी भाषा मे उतारना बडा कठिन है।"

जेया यह सब कह रहे थे, लेकिन मेरी आखे सामने बैठे उस साधक को देख रही थी, जिसने किसी समय मे अपनी तेजस्विता से बर्मा की तरुणाई को नया उत्साह और नई उमग दी थी। अपनी बात कहते-कहते जेया कुछ रुके। फिर बोले, "शान्ति के लिए इन्होने अथक प्रयास किया है। सन् १९५५ मे रूसी सरकार की ओर से लोक-साहित्य के निर्माण के उपलक्ष्य मे इन्हें स्टालिन शान्ति-पुरस्कार प्रदान किया गया था। बाद मे अपने देश मे सत्ता के लिए पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता को समाप्त करने की प्रेरणा देते हुए कोडो ने बडे मार्मिक शब्दो मे कहा था, 'मैं वृद्ध हो चला हू। मृत्यु के सन्निकट हू। यदि मुझे शान्ति मे मरने देना चाहते हो तो गृह-युद्ध बन्द करो।'"

कोडो की अस्वस्थता को देखते हुए हमने उनसे विदा मागी। खडे होकर बडी आत्मीयता से हाथ जोडकर उन्होने हमें नमस्कार किया, हाथ मिलाये। हम उन्हें उनके कमरे तक पहुचाने गये। कमरा बडा आडम्बर-हीन था—दो-एक चित्र लगे थे, नीचे लकडी के फर्श पर उनका बिस्तर बिछा था।

उन्हे प्रणाम करके बाहर आये तो मेरा मन बार-बार पीछे दौड रहा था। ठीक है कि साहित्य मे नई पीढी उभरकर बडी तेजी से आगे बढ रही है, और कोडो उस दौड मे पिछड गये हैं, लेकिन इसमे सन्देह नही कि बर्मी साहित्य को ऊचे स्तर पर ले जाने मे उन्होने अपनी विशेष देन दी है।

: ८ :

बुद्ध-जयन्ती महोत्सव

कुछ साल पहले जब हमारे देश मे भगवान बुद्ध का महापरिनिर्वाण-महोत्सव राष्ट्रीय स्तर पर मनाया गया था तो चारो ओर तथागत का नाम गूज उठा था और 'बुद्ध शरण गच्छामि, धम्म शरण गच्छामि, सघ शरण गच्छामि' के स्वर कोने-कोने मे मुखरित हो उठे थे। उन दिनो ऐसा प्रतीत होता था, मानो इतिहास के भूले पृष्ठ आखो के सामने खुल गये हैं। समूचे राष्ट्र को उस पावन मदाकिनी मे अवगाहन करने के लिए अवसर मिला था, जिसे किसी जमाने मे बुद्ध भगवान ने प्रवाहित किया था। यह स्थिति उस देश मे हुई थी, जहा आज बौद्धो की सख्या बहुत ही सीमित है, और जहा लोगो मे बौद्ध आदर्शों के प्रति कोई विशेष आस्था नही दिखाई देती। लेकिन जरा उस देश की कल्पना कीजिये, जहा का अधिकाश समाज बौद्ध धर्मावलम्बी है और जहा का लोकजीवन प्रतिदिन तथागत के उपदेशो मे अनुप्राणित होता है।

हम पहले ही बता चुके है कि बर्मियो मे ९० प्रतिशत बौद्ध है और बौद्ध भिक्षुओ-भिक्षुणियो के सघ तथा बौद्ध देवालयो के प्रति सामान्य लोगो तक की असीम श्रद्धा है। राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के कारण यद्यपि आज बर्मा में भी राजनीति का बोलबाला है, तथापि धर्म का आज भी वहा पर सर्वोपरि स्थान है और वहा के शासनाधिकारी बहुत-से मामलो मे बौद्ध भिक्षुओ तथा उनके सघो के परामर्श से काम करते है। कोई भी राजनीतिज्ञ ऐसा कदम नही उठाता जो धर्म-गुरुओ को अरुचिकर अथवा अमान्य हो। सक्षेप मे कह सकते है कि वैधानिक रूप से बौद्ध धर्म के राज्य-धर्म स्वीकार न किये जाने पर भी बर्मा मे बौद्ध धर्म का प्रधान्य है।

वहा के लोकजीवन मे बौद्ध धर्म की जडे गहरी चली गई है। सामान्य-से-सामान्य आर्थिक स्थिति के लोग भी धार्मिक अनुष्ठानो के अवसरो के

अतिरिक्त, प्रतिदिन वौद्ध साधुओ के लिए कुछ-न-कुछ अवश्य करते रहते हैं। फुगियो को भोजन कराना तो वहा गृहस्थ का विशेष कर्तव्य माना जाता है। अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार लोग निकट के विहारो से फुगियो को आहार के लिए बुला लेते हैं और वडी श्रद्धा से उन्हे वढिया-से-वढिया भोजन कराते हैं। जवतक साधु भोजन नही कर लेते तवतक घर का कोई भी आदमी खाना नही खाता। भोजनोपरान्त अन्य विधियो के साथ किसी साधु का प्रवचन होता है, जिसे सव लोग वडे ध्यान से सुनते हैं। अन्त में साधुओ को कुछ भेट दी जाती है। यह सारी क्रिया किसी विशेष अवसर पर नही, वल्कि प्राय रोज ही होती है।

हमारे लिए वास्तव मे यह वडे सौभाग्य की वात थी कि ऐसे धर्म-परायण मानव-समाज के वीच वुद्ध-जयती के मगल-पर्व पर उपस्थित रहने का हमे सुयोग मिला। तथागत तथा उनके धर्म के प्रति भावना की वैयक्तिक एव सामूहिक अभिव्यक्ति का वह वडा सुन्दर अवसर था।

९ मई को वडे पैमाने पर जयन्ती मनाने का आयोजन किया गया। उन दिनो हम रगून मे थे। ८ मई की शाम को 'भारतीय स्वय-सेवक सघ' की ओर से एक समारोह हुआ, जिसमे कोई डेढ-दौसौ स्वय-सेवक और उतने ही नागरिक एव वौद्ध भिक्षु थे। छोटे-से मच पर पीत वस्त्रधारी साधु वैठे थे और सामने पक्तिवद्ध होकर स्वय-सेवक। वाई ओर की कुर्सियो पर नागरिक। साधुओ के प्रवचन के वाद वहा सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व तथा वर्तमान न्यायाधीशो के भाषण हुए। वे दोनो ही वौद्ध धर्मावलम्वी थे, और उनके भाषणो को उपस्थित लोगो ने वडे आदर से सुना। वर्तमान न्यायाधीश ने सारगर्भित ढग से अवतारो की कल्पना को मनुष्य के विकास के साथ समन्वित करके सरल-सुवोध शैली मे अपने विचार व्यक्त किये और भगवान वुद्ध के आदर्शों की उपयोगिता पर प्रकाश डाला।

अधिकाश वक्ता अग्रेजी मे वोले, इसलिए हमे समझने मे कोई कठिनाई नही हुई। वर्तमान न्यायाधीश की पत्नी हमारे पास वैठी थी। उस सारी कार्रवाही मे उनकी एकाग्रता और विनयशीलता देखकर हमे वडी प्रसन्नता हुई।

समारोह की समाप्ति पर कुछ विशेष व्यक्ति, जिनमे कतिपय विशिष्ट

साधु की सम्मिलित थे, समीपवर्ती भवन मे एकत्र हुए। वहा वर्तमान न्यायाधीश तथा अन्य व्यक्तियो से हमारा परिचय कराया गया, सबको शर्बत पिलाया गया। तत्पश्चात हम अलग हुए। एक बात मैंने विशेष रूप मे देखी और वह यह कि वहा का उच्च-से-उच्च अधिकारी भी अत्यन्त विनम्र है और साधुओं के साथ व्यवहार करते समय तो उसकी विनम्रता पराकाष्ठा को पहुच जाती है।

अगले दिन जयंती का विशेष समारोह श्वे डगोन पगोडा मे सवेरे ७ बजे से आरम्भ होनेवाला था। बड़े तडके उठकर तैयार हुए और भीड़ के बीच से जैसे-तैसे रास्ता निकालते हुए वहा पहुचे। सामान्य तथा विशिष्ट नागरिको एव फुगियो की बेशुमार भीड थी। वर्दीधारी पुलिस चारो ओर फैली थी। पूछने पर मालूम हुआ कि समारोह मे भाग लेने के लिए राष्ट्रपति आये हुए है।

विशेष द्वार से अन्दर पहुचे। श्वे डगोन पगोडा के पार्श्ववर्ती मैदान के विशाल सभा-कक्ष मे हजारो नर-नारी बैठे थे। कक्ष के मध्य मे मखमल के ऊंचे सिहासन पर, बौद्ध सघो के सबसे वृद्ध साधु, जो महारत्थागुरु (महाराज गुरु) कहलाते है, विराजमान थे। पृष्ठभूमि मे तीन विशाल चित्र लगे थे और सिहासन मे कुछ फासले पर चौकोण बनाते हुए चार ऊचे छत्र थे, जिनका रग पीला और गुलाबी था। सिहासन के सामने छ विशिष्ट साधु बैठे थे। दाए-बाए हजारो भगुवा वस्त्रधारी बौद्ध भिक्षुओं का समुदाय विराजमान था। सिहासन के सामने राष्ट्रपति तथा अन्य राज्याधिकारी थे। उनके पीछे नागरिक। सारा हाल खचाखच भरा था। बहुत-से लोग दीवारो के सहारे तथा दरवाजो मे खडे थे। यद्यपि बाहर लोगो का आना-जाना हो रहा था, तथापि अन्दर पूर्ण शान्ति थी। गृहस्थ नर-नारी हाथ जोडकर बैठे थे। जिस समय हम लोग वहा पहुचे, महाराज-गुरु का प्रवचन हो रहा था। लोग बडी तन्मयता से सुन रहे थे। प्रवचन बर्मी भाषा मे हो रहा था। हम उसे नहीं समझ सके। लेकिन हमें बताया गया कि उसमे भगवान बुद्ध के आदर्श समझाये गए थे। ज्योंही प्रवचन समाप्त हुआ, सहस्रों कण्ठ समवेत स्वर में एक साथ फूट उठे। उनकी भाषा हम नहीं समझ सके, लेकिन हमें मालूम हुआ कि उन्होंने जो कहा,

उसका अर्थ था—'साधुवाद'।

फिर तो हमने देखा कि सयोजक महोदय जब कार्यक्रम की घोषणा करते अथवा जब कोई वक्ता अपना भाषण समाप्त करता तो हर बार वही सामूहिक ध्वनि होती।

हाल के भीतर बडी गर्मी थी, इसलिए हाथ के पखे वितरित कर दिये गए थे, लेकिन क्या मजाल कि गर्मी की अकुलाहट के कारण कोई भी व्यक्ति व्याकुल होकर वहा के वायुमण्डल को बिगाड रहा हो। सबकी आखे महाराज गुरु की ओर लगी थी।

समारोह के अन्त मे राष्ट्रपति का भाषण हुआ। वह सिहासन के सामने अन्य नागरिको के बीच जहा फर्श पर बैठे थे, वही से बोले। भाषण बर्मी मे दिया गया। बडा ही सक्षिप्त। भाषण का अन्त उन्होंने जिन शब्दो मे किया, उनका आशय यह था, "मैंने जो कुछ कहा है, वह आप सबके लिए कल्याणकारी हो। आप सब उसका लाभ लें।" उनके इन अन्तिम शब्दो को सभी उपस्थित व्यक्तियो ने तीन बार दोहराया।

लगभग घटे-सवा घटे मे सारा कार्यक्रम पूरा हो गया। उसमे जितने प्रवचन और भाषण हुए वे सब प्रसगानुकूल थे, लेकिन समारोह की सबसे बडी विशेषता उसकी गभीरता मे थी। कोई तीन हजार भिक्षु वहा उपस्थित थे, नर-नारियो की सख्या भी हजारो की थी, किन्तु सब-के-सब इतने श्रद्धा विभोर थे, इतने भावना मे डूबे थे कि उनके चेहरो की भाव-भगिमा देखते ही बनती थी। उनके बैठने की पद्धति, हाथ जोडने का ढग, श्रद्धा से बार-बार सिर झुकाने की शैली, सबकुछ ऐसा था कि उसमे से उनकी भक्ति छलकती थी।

हमारे देश मे भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण-महोत्सव के अवसर पर छोटी-बडी अनेक सभाए विभिन्न स्थानो पर हुई, लेकिन जो सभाए मैंने देखी, उनमे मुझे वह गभीरता, वह पावनता और वह श्रद्धा नही दिखाई दी, जो रगून के इस जयती-समारोह मे दिखाई दी।

बौद्ध धर्म वहा की भूमि की उपज नही है। वह भारत से वहा गया। दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशो का भ्रमण करते हुए किसी युग मे जो भारतीय वहा गये, वे अन्य चीजो के साथ धर्म—हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म—को भी

ले गये। सबसे पहले धर्म को वहा के राजा और राज-परिवार ने अगीकार किया, लेकिन धीरे-धीरे वह वहा के निवासियो मे प्रवेश कर गया और लोक-जीवन का अभिन्न अग बन गया। आज वहा के निवासियो मे बहुत-से अन्धविश्वास है, कुरीतिया हैं, लेकिन इसमे कोई शक नही कि उन्होने भगवान बुद्ध के मूलभूत सिद्धान्तो को समझने और तदनुरूप अपने जीवन को ढालने का प्रयत्न किया है। उनके बच्चे भी उसी वायुमण्डल मे पोषित्त हो, इसलिए आरम्भ से ही उन्हे धार्मिक शिक्षा देने की उन्होने व्यवस्था की है। राजनीति के बढते प्रभाव के बावजूद वे लोग आज भी धर्म की बुनियाद को पक्का बनाये हुए है।

: ९ :

मांडले की ओर

रगून पहुचते ही मित्रो ने बताया था कि हमे माडले की यात्रा अवश्य करनी चाहिए, इसलिए नही कि रगून से पहले वही बर्मा की राजधानी थी, और उसकी गोद मे अनेक ऐतिहासिक स्मृतिया छिपी हुई हैं, बल्कि इसलिए कि बर्मी सस्कृति, कला, सगीत, नृत्य आदि का आज भी वह प्रमुख केन्द्र है। मित्रो का यह भी कहना था कि यद्यपि समय के साथ माडले के रूप मे काफी परिवर्तन हो गया है, तथापि बर्मा की प्राचीन परम्पराओ की झाकी अगर लेनी है तो वही के जीवन मे मिल सकती है।

किसी भी यात्री के लिए ये सब भारी प्रलोभन और आकर्षण हो सकते थे और हमारे लिए भी थे, लेकिन यदि ये न भी होते तो भी एक अन्य कारण से वहा की यात्रा करना हमारा परम कर्तव्य था। भारतीयो के लिए माडले एक महान तीर्थ है। उसीकी जेल मे भारतीय स्वतन्त्रता के मूल-मत्रदाता लोकमान्य तिलक कई वर्ष तक निर्वासित रहे थे और वहीपर अपने बन्दी जीवन के दिनो मे उन्होने 'गीता-रहस्य' जैसे महान ग्रथ की रचना की थी। उन्हीके पास की कोठरी में भारत के अमर सेनानी सुभाष-चन्द्र बोस रहे थे, जिनके ऊचे व्यक्तित्व तथा अद्वितीय पराक्रम की कहानिया उधर के देशो मे आज भी बडे गौरव के साथ सुनाई जाती है। ऐसे पावन स्थल की यात्रा के सौभाग्य को हम कैसे छोड सकते थे!

रगून के हमारे साहित्यिक एव सार्वजनिक सभाओ आदि के कार्यक्रमो की जो सूची थी, उसे देखने पर हमे आशका हुई कि एक बार उनका सिल-सिला शुरू होने पर फिर हमारा निकलना सभव नही होगा। इसलिए रगून मे घूम लेने के पश्चात सभाओ का क्रम आरम्भ होने से पहले, हमने माडले हो आने का निश्चय किया। सम्मेलन के अधिवेशन की तिथिया २४-२५ अप्रैल रक्खी गई थी। इसलिए ऐसा कार्यक्रम बनाया गया कि हम २३ तारीख की शाम तक रगून लौट आवें।

१८ अप्रैल को दिन के सवा तीन बजे की रेल से रवाना हुए । रगून के रेलवे स्टेशन की विशाल तथा कलापूर्ण इमारत की चर्चा हम पहले ही कर चुके हैं। उसके प्लेटफार्म निहायत साफ-सुथरे है। रेल के चलने से पहले दो या तीन बार घोषणा होती है कि अब गाडी के चलने मे इतनी देर है । अन्त मे गाडी के छूटने की। गाडी मे तीन श्रेणिया होती हैं—प्रथम, द्वितीय और तृतीय। डिब्बो मे भीड रहती है, लेकिन जितनी सीटें होती हैं, उतनी ही टिकटें दी जाती है । इससे सारे मुसाफिरो को बैठने की जगह मिल जाती है, और चढने-उतरने के लिए सघर्ष नही करना पड़ता ।

जो डिब्बे जापान द्वारा मुआवजे के रूप मे दिये गए हैं, वे बहुत ही आरामदेह हैं । सभी श्रेणिया सुविधाजनक है । तीसरे दर्जे मे बैठने के लिए लकडी की बेंचनुमा सीटें हैं, पर पहले और दूसरे दर्जे में सीटो पर बढिया गद्दे अथवा गद्दिया है। सोने की व्यवस्था केवल पहले दर्जे में ही है। कुछमे हवाई जहाज की-सी कुर्सिया होती हैं, कुछमे लेटने के लिए पूरी बर्थ । सारी रेल मे गलियारा रहता है, जिससे मुसाफिर चलती गाडी मे एक छोर से दूसरे छोर तक आ-जा सकते हैं ।

जापान द्वारा प्रदत्त गाडियो के अलावा बर्मा की जो अपनी गाड़िया हैं, उनमें से अधिकाश को देखकर बाबा आदम के जमाने की याद आती है। सवारी गाडिया माल-गाडियो की तरह लगती है, जिनमे यात्रियो के बैठने की विशेष सुविधाजनक व्यवस्था नही है। पर पुराने डिब्बो के समाप्त होने पर उनकी जगह नई चाल के अच्छे डिब्बे ले रहे हैं ।

रात-भर का सफर होने के कारण हमारे लिए पहले दर्जे मे सोने की जगहें सुरक्षित करा ली गई थी । सोने के इन डिब्बो मे दो-दो बर्थ की अलग-अलग व्यवस्था थी, कुछमे परिवार की दृष्टि से चार-चार की । हमे दो बर्थवाला कमरा मिला, एक बर्थ नीचे, दूसरी ऊपर । गाडी के रवाना होने के थोडी देर बाद परिचारक आया और हमे तकिया, ओढने की चादर, तौलिया और साबुन की बट्टी दे गया । तौलिया और साबुन की बट्टी के लिए टिकट खरीदते समय कुछ अतिरिक्त पैसे ले लिये जाते हैं और परची दे दी जाती है । परची को लेकर परिचारक उन चीजो को दे देता है । जो न लेना चाहे, उनपर किसी प्रकार की बाध्यता नही

होती । तकिया और चादर सवेरा होने पर वापस ले ली जाती है ।

सामान जमा कर उत्सुकतावश विष्णुभाई और मैं गाडी मे घूमने निकले । पहले और दूसरे दर्जो के यात्रियो को देखते हुए तीसरे दर्जे मे पहुचे । मुसाफिरो के स्तर को देखकर वडा अच्छा लगा । स्त्री-पुरुष और वच्चो की पोशाक—लुगी और ऐंजी—से शायद ही कोई यह अनुमान कर सकता था कि वर्मा गरीव देश है । महिलाओ और लडकियो के मुह पर लगे तनाखे और वेणियो मे सजे फूलो से आभास होता था कि आर्थिक दृष्टि से उनके पास अल्प साधन होते हुए भी वे लोग जीवन के कितने धनी हैं । वे जीना जानते हैं—जैसे-तैसे नही, सुघडता के साथ ।

गाडी मे भोजन तथा जलपान के लिए एक अलग डिव्वा था । हमने वहा आकर कॉफी पी । उस डिव्वे मे काफी भीड थी । उसे देखकर लगा कि खाने-पीने पर वर्मावासी खूव खर्च करते है । नाश्ते अथवा भोजन मे किफायत की उनकी वृत्ति नही है ।

कॉफी पीकर फिर अपने कमरे मे आ गये और शीशे की लम्वी-चौडी खिडकी पर से पर्दा हटाकर वाहर के दृश्य देखने लगे । इतने मे वडे मधुर सगीत के स्वर हमारे कानो मे पडे । सोने का समय होने तक सगीत का वह क्रम वरावर चलता रहा । गीतो की भाषा को हम नही समझ सकते थे, लेकिन स्वर के उतार-चढाव और माधुर्य से वडा आनद मिला । यात्रियो के मनोरजन के साथ-साथ यात्रा को सुखद पृष्ठ-भूमि प्रदान करने के लिए यह प्रयोग वास्तव मे वहुत ही दूरदर्शितापूर्ण है ।

डिव्वा इतना आरामदेह था कि सहज ही कुछ लिखने-पढने की इच्छा होती थी, लेकिन गाडी हिलती इतनी थी कि लिखना एक प्रकार से असम्भव था । पढने मे भी आखो पर जोर पडता था । जवतक दिन का प्रकाश रहा, वाहर के दृश्यो को देखते रहे । वहा की भूमि वहुत-कुछ हमारे देश की भूमि से मिलती-जुलती है । वैसे ही खेत, वैसे ही मैदान, वैसी ही हरियाली अथवा सूखापन । लेकिन गावो के घर वडे ही सुरुचिपूर्ण दिखाई दिये । लकडी के ऊचे मचान पर वास की चटाइयो की दीवार से वहा के लोग घरो का निर्माण करते हैं । सवसे अधिक ध्यान देने की वात यह है कि सामूहिक जीवन होते हुए भी प्रत्येक घर का स्वतत्र अस्तित्व

एव व्यक्तित्व रहता है, अर्थात दो घरो के बीच मे थोडा-सा फासला अवश्य रक्खा जाता है। उसमे खर्च जरूर कुछ अधिक आता होगा, लेकिन उससे एक लाभ भी है और वह यह कि हर घर और उसमे रहनेवाले लोग हर घडी पडोस की आखो के लिए खुले नही रहते।

गावो की बनावट और बसावट सुरुचिपूर्ण होते हुए भी उन्हे देखकर यह छिपा नही रहता कि उनमे सम्पन्नता नही है। ग्रामवासियो का सीधा-सादा रहन-सहन उनके भरे-पूरेपन की छाप नही डालता, उनके अभाव का बोध कराता है।

सारे रास्ते गावो और शहरो मे, कही-कही निर्जन में भी, पगोडाओ तथा फुगियो की भरमार दिखाई दी। इससे प्रतीत होता था कि वहा के क्या शहरी और क्या ग्रामीण, सारे जीवन मे धर्म का प्रमुख स्थान है। किसी-किसी गाव के रेल से सटे पगोडा और उसकी मूर्त्तियो को देखकर लगता था कि लोग जैसे-तैसे उन्हे खडा करके सतोष नही मान लेते। उन्हे सुन्दर एव कलापूर्ण बनाने का भी प्रयास करते हैं।

वहा के स्टेशन, विशेषकर गावो के, बडे ही सामान्य हैं। मास, अडे तथा खाने-पीने की अन्य सामग्री सारे स्टेशनो पर बिकती है। छोटी-छोटी टोकरियो मे खाने की चीजे लिये स्त्रिया तथा लडकिया डिब्बो पर चक्कर लगाती है। बर्मी भाषा मे वे अपनी चीजो की घोषणा भी करती जाती हैं, लेकिन उनके स्वर मे वह कर्कशता नही रहती कि आपको कान बन्द कर लेने पडे।

एक चीज बडी विचित्र लगी। खाने की चीजो के साथ मटकियो मे स्टेशनो पर पानी भी बिकता है। मटकी सिर पर लिये लडकी अथवा वृद्धा डिब्बे के सहारे आ खडी होती है और यात्री मटकी का ढक्कन खोल-कर या कपडा हटाकर अपनी आवश्यकतानुसार स्वय उसमे से पानी ले लेते हैं और उसके दाम दे देते हैं। नलो के अभाव मे यात्रियो को शुद्ध जल मिल जाय, इस विचार से शायद यह व्यवस्था चालू है। इससे गाव-वालो को कुछ पैसा भी मिल जाता होगा।

हमारे बराबर चार सीटो के कमरे मे कोई सभ्रान्त परिवार सफर कर रहा था। वैसे तो कीमती पोशाक मे सभी लोग वहा सभ्रात ही दिखाई

देते है, लेकिन इस परिवार की सभ्रान्तता की ओर विशेष रूप से ध्यान इसलिए गया कि कई स्टेशनो पर अनेक स्त्री-पुरुष उन लोगो से मिलने आये। वे उनके लिए अनेक प्रकार की भेंटे भी लाये, जिनमे खाद्य पदार्थ तथा फलादि अधिक थे। कही-कही पुष्पो के उपहार भी उन्हें दिये गए।

मानव-स्वभाव सर्वत्र प्राय एक-सा ही होता है। अपने देश मे सफर करते हुए हम देखते हैं कि ज्योंही रेल की गडगडाहट सुनाई देती है कि आसपास के घरो के लोग अपना काम छोडकर दरवाजों पर आकर झाकने लगते है और लडके-लडकिया तो दौडकर पटरी के पास आ खडे होते हैं। यही बात हमने बर्मा मे भी देखी। गाडी की आवाज सुनते ही लोग बाहर आ जाते थे और रेल को तथा यात्रियो को कौतूहलभरी आखो से देखते थे।

दिन का अवसान होने पर जब बाहर की दुनिया अन्धकार मे डूब गई तो सारे यात्री अपने डिब्बे की परिधि मे सिमट गये। सगीत का माधुर्य अब अधिक प्रिय हो उठा। हम लोग शाम को भोजन नही करते। साथ मे फल थे, उन्हे खाकर कुछ देर तक आपस मे बातें कर अपने-अपने बिस्तर पर लेट गये। मैं सोचने लगा, बर्मा के इतिहास मे कितने उतार-चढाव आये है, उत्थान और पतन के कैसे-कैसे दृश्य वहा के निवासियो ने देखे हैं, विदेशी शासको और गृह-कलह के कारण उन्हे कितनी क्षति उठानी पडी है, लेकिन उस सबके बावजूद वहा के लोक-जीवन का प्रवाह अखण्ड गति से बहता रहा है, उसकी वेगवती धारा अवरुद्ध नही हुई।

और भी बहुत-से विचार मन मे उठते रहे। तिमिर के वक्ष को चीर-कर गाडी अलिप्त भाव से जैसे-जैसे आगे बढती गई, विचारो का ताना-बाना भी चलता रहा। पता नही, कब नीद आ गई।

आख खुली तो सवेरे के चार बजे थे। ६। बजे गाडी माडले पहुची। रगून से बधुवर डा० ओमप्रकाश ने अपने बहनोई श्री शिवराज वर्मा को सूचना दे दी थी, जो माडले मे वकालत करते हैं और रगून मे जिनसे हमारी भेंट हो चुकी थी। वह स्टेशन पर मौजूद थे। बर्मा के हमारे तत्कालीन राजदूत श्री लालजी मेहरोत्रा के रगून से फोन कर देने पर माडले की हमारी कासलेट के कौसलर श्री पडित भी उपस्थित थे। उनके साथ वर्माजी के निवासस्थान पर पहुचे, जहा हमारे ठहरने की व्यवस्था की गई थी।

: १० :

तीर्थ-यात्रा

माडले मे हम दो दिन रहे और उन दो दिनो मे खूब घूमे । शहर और उसके प्रमुख स्थान तो देखने ही थे, वाहर की कई जगहों में भी गये। लवाई-चौडाई की दृष्टि से माडले वडा नही है । उसका क्षेत्रफल कुल २५ वर्गमील है। आवादी लगभग दो लाख है । द्वितीय महायुद्ध मे नगर का एक-तिहाई भाग नष्ट हो गया था । उसका पुनर्निर्माण इस ढंग से हुआ कि समूची नगरी ने आधुनिकता का वाना धारण कर लिया । आज उसका रूप दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशो के किसी भी अन्य नगर की भाति है, लेकिन उसकी सवसे वडी विशेषता यह है कि उसके नये शरीर मे प्राचीन आत्मा निवास करती है । वर्तमान युग के प्रभाव और पश्चिमी सभ्यता के तीव्र प्रवाह के वावजूद वहा के निवासी अपनी पुरानी सभ्यता और सस्कृति के प्रति आस्था रखते है । उनका रहन-सहन अपेक्षाकृत सादा और सरल है और उनमें ऊंचे दर्जे की विनम्रता आज भी दिखाई देती है ।

माडले के गौरवशाली अतीत का श्रेय मुख्यत अलांगफया वंश के राजा मिडोन (सन् १८५२-७८) को है । माडले से पहले वर्मा की राजधानी अमरापुरा थी, लेकिन मिडोन ने माडले को वह सौभाग्य प्रदान किया । उसने सव प्रकार से नगर की समृद्धि को वढ़ाया । वर्मी जन-श्रुति है कि एक वार भगवान वुद्ध ने अपने पट्ट-शिष्य आनन्द के साथ भ्रमण करते हुए भविष्यवाणी की थी कि "उनके धर्म के प्रसार के चौवीससौवे वर्ष में एक नगर का उदय होगा, जो वौद्धधर्म का महान केन्द्र माना जायगा। संयोग की वात है कि उसी वर्ष मे अर्थात १८५७ में राजा मिडोन ने मांडले की नींव डाली और तीन साल मे पूरा करके उसे राजधानी वना दिया । निकटवर्ती माडले हिल के विषय में आज भी एक किवदन्ती प्रचलित है— "जो दीर्घजीवी होना चाहता है, उसे मांडले हिल की शरण लेनी चाहिए ।"

सबसे पहले नगर के उत्तर में दो मील पर महामुनि पगोडा देखने

गये । वह वहा का सबसे बडा बौद्ध देवालय है । उसमे स्वर्ण-पत्र से आवृत्त भगवान बुद्ध की प्राचीन मूर्त्ति है, जिसे राजा बोदाफया का उत्तराधिकारी अराकान से सन १७८४ मे लाया था । बोदाफया ने, जिसकी राजधानी अमरापुरा थी, शहर से पगोडा के पूर्वी द्वार तक पक्की सडक बनवाई, जो आज भी मौजूद है । प्रारभिक पगोडा सन १८८४ की भयकर अग्नि मे ध्वस्त हो गया । वर्तमान पगोडा का निर्माण हाल ही मे हुआ है ।

उसके विशाल प्रागण मे धातु की अनेक मूर्त्तिया है, जिनमे दो मूर्त्तिया मनुष्यो की, तीन सिहो की और एक तीन सिरवाले हाथी की विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करती है । मुख्य स्तूप मे चारो ओर विभिन्न मुद्राओ मे बुद्ध की चार बडी-बडी मूर्त्तिया है । अन्य पगोडाओ की भाति इस पगोडा मे भी लम्बा-चौडा बाजार है, जिसमे और चीजो के साथ-साथ काठ के सुन्दर सिहासन और उनपर प्रतिष्ठित करने के लिए बुद्ध की मूर्त्तिया बिकती है । पगोडा को देखकर बाजार का चक्कर लगाया । बाजार यूरोप के किसी भी शहर के बाजार की भाति है, अर्थात सीधी-समानान्तर पक्तियो मे उसकी दूकानें है, और फलो से लेकर खिलौने-कपडे तक दैनिक आवश्यकता की सारी चीजें एक ही स्थान पर मिल जाती हैं ।

इस बीच हमारे कौंसलर श्री पडितजी ने अधिकारियो को फोन करके सेन्ट्रल जेल मे तिलक-स्मारक को देखने की व्यवस्था करा दी । वह शहर से कुछ दूर पर राजमहल के प्रागण मे अवस्थित बदीगृह के भीतर है और वहा जाने के लिए विशेष अनुमति लेनी पडती है । हम लोग जब महल के द्वार पर पहुचे तो पहरेदार ने हमारी कार को रोका, पर हमारे यह बताने पर कि हमारा समय पहले से ही निर्धारित है, हमे अन्दर जाने दिया ।

जेल के अधिकारियो को सूचना थी, इसलिए जेल मे भीतर जाने मे हमे विशेष कठिनाई नही हुई । सबसे पहले हमे सुपरिटेण्डेण्ट श्री बुन्ना चौतिन ऊ औं तान के पास ले जाया गया । वह बडी आत्मीयता से मिले और कुछ देर तक बातचीत करके हमे अन्दर स्मारक दिखाने ले

गये । जैसे-जैसे आगे बढते गये, भारतीय स्वाधीनता-सग्राम की अनेक स्मृतिया मन मे उभरती गई । आजादी के लिए हमारे देशवासियो ने कितने-कितने त्याग किये, कितनी-कितनी साधनाए की । हमारे नेताओ तथा सामान्य जनो को जेल की भयकर यातनाएं भोगनी पडी, पर तपकर जैसे सोना कचन बनता है, वैसे ही मुसीबतो पर कसे जाने पर भारतवासियो के हौसले मे अधिकाधिक वृद्धि ही हुई । . विचारो की बाढ़-सी आ गई । तभी सुपरिंटेण्डेण्ट महोदय ने एक इमारत की ओर सकेत करके बताया कि यही वह स्थान है, जहा लोकमान्य तिलक रहे थे । हमने उस भूमि को सिर झुकाया । आज वहा पहले की कोई भी चीज शेष नही रही है । कुछ भारतीयो ने मिलकर वहा स्मारक के रूप मे एक हॉल बनवा दिया है, जिसके बाहर सगमरमर के एक पट्ट पर लिखा है -

'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है', इस क्रांतिकारी मंत्र के दाता . प्रात : स्मरणीय लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की अमर स्मृति में, जो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व करते हुए इस कारागृह में सितम्बर, १९०८ से जून १९१४ तक बन्दी रहे ।

यह स्मारक

उनके स्वदेश वासियों ने यहां स्थापित किया ।

मांडले, अप्रैल ६, १९५९ चैत्र १६, १८८३ साका ।

माडले मे भारतीयो की सख्या काफी है और उनमे से कुछ तो पीढ़ियों से रह रहे है । लेकिन वहा स्मारक बनाने का विचार बहुत बाद में आया, जब सन १९५५ के अगस्त मास मे भारत सरकार के मंत्री श्री एस०के० पाटिल वहा गये और उन्होने उस स्थान की यात्रा करके भारतीयो का ध्यान उस ओर आकृष्ट किया । आज जो भवन वहा दिखाई देता है, उसके निर्माण के पीछे उस देश के हमारे तत्कालीन राजदूत श्री लालजी मेहरोत्रा की प्रेरणा विशेष रूप से रही है और उसके लिए साधन जुटाने का श्रेय भारतीयो को है ।

हॉल काफी बड़ा है । एक ओर को छोटा-सा मच है । वहां दीवार पर लोकमान्य का एक छोटा-सा चित्र टगा है । उसे देखकर लगा कि

वहांपर तिलक की एक मूर्त्ति होनी चाहिए। इसकी चर्चा हमने भारतीय बन्धुओं से तथा अपने कौंसलर से की और बाद मे रगून लौटने पर यह सुझाव श्री लालजीभाई के सामने रक्खा। उन्होंने बताया कि सबसे बडी कठिनाई मूर्त्ति के तैयार कराने की है। पर उस दिशा मे कुछ लोगो का प्रयत्न चालू है।

हॉल मे थोडी देर रुककर हम उसके पिछवाडे गये। उधर ही वह कोठरी थी, जिसमे नेताजी सुभाषचन्द्र बोस कुछ दिन रहे थे। एक सूखे गड्ढे की ओर इशारा करके सुपरिंटेण्डेण्ट ने बताया, "नेताजी को तैरने का बडा शौक था। उन्हीके लिए यहांपर यह तालाब बनवाया गया था।"

उन अवशेषो को देखते हुए मन मे फिर विचारो का ज्वार उठ आया। २ नवम्बर, १९१० का वह शुभ दिन था, जबकि तिलक महाराज ने उस एकांत स्थान पर बंदीवास मे 'गीता-रहस्य' का श्रीगणेश किया था। कितनी कठिनाइयां थी उनके मार्ग मे! उन्हे सहायक ग्रन्थो की आवश्यकता थी। बडी मुश्किल से एक बार मे चार पुस्तके अन्दर लाने की अनुमति मिली। इस प्रकार लगभग ४०० पुस्तको की सहायता लेकर लोकमान्य ने जिल्दबंधी कापियो पर, स्याही के प्रयोग पर प्रतिबन्ध होने के कारण, पेंसिल से अपनी महान कृति को ३० मार्च, १९११ को पूरा किया।

८ जून, १९१४ को जब तिलक वहां से मुक्त हुए तो उनकी पाण्डुलिपि को सरकार ने अपने पास रख लिया। उसके मिलने की क्या आशा की जा सकती थी! तिलक महाराज निराश हो गये। लेकिन सौभाग्य से वह वापस मिल गई और सन १९१४ के गणेशोत्सव से उसकी छपाई आरंभ होकर सन् १९१५ के जून मास मे पूरी हो गई।

हम भारतीयो के लिए वह भूमि वन्दनीय है, जिसने हमारे एक अमर ग्रंथ की रचना की प्रेरणा दी और कठोर प्रतिबंधो के बीच उस यज्ञ को पूरा करने का उत्साह और धैर्य प्रदान किया।

जेल के भीतर होने के कारण अनुमति प्राप्त करने मे झझट होता है; इसलिए कम ही लोग वहां आते हैं और एक महान व्यक्ति का वह

स्मारक अपनी छोटी-सी परिधि में सीमित रह जाता है। ऐसे पुण्य-स्थल की यात्रा पर रोकथाम का होना हमें अखरा और हमने अपनी भावना को सुपरिंटेण्डेण्ट के सामने व्यक्त भी किया। हमने कहा कि पीछे से एक ऐसा रास्ता बना देना चाहिए, जिससे लोग बेरोक-टोक वहां आ सकें। उन्होंने बताया कि शीघ्र ही जेल को वहां से हटाया जा रहा है। जेल के हट जाने पर यह स्थान अपने-आप बन्धन-मुक्त हो जायगा।

: ११ :

मांडले के आकर्षण

लोकमान्य तिलक के स्मारक के दर्शन करने के बाद इरावदी का विशाल पुल—आवा ब्रिज—देखने गये। ब्रह्मदेश मे इरावदी का वही महत्व है, जो भारत मे गगा का है। यह नदी तिब्बत के पास से निकलती हे और मध्य बर्मा मे बहती हुई, कोई हजार-बारहसौ मील की यात्रा करके, रगून के पास समुद्र मे गिरती है। वैसे छिदविन, सिताग तथा सालविन भी उस देश की बडी-बडी नदिया हैं, लेकिन इरावदी का जो महत्त्व और माहात्म्य है, वह किसीका नही। उसमे लगभग नौसौ मील तक जहाज चलते हैं। इस प्रकार यातायात का वह एक अच्छा साधन है। पर इससे भी बढकर लोकजीवन के साथ उसका निकट का सबध होने का कारण यह है कि वह ब्रह्मदेश के सबसे अधिक उपजाऊ भाग से होकर गुजरती है।

इरावदी का आवा ब्रिज बर्मा को देखने योग्य चीजो मे से है। माडले से वह कोई १४ मील है। उसकी लम्बाई एक मील है। बीच मे रेल की पटरिया है और इधर-उधर मोटर आदि के आने-जाने के लिए १३–१३ फुट चौडी सडकें हैं। सन् १९३४ मे यह पुल पहले-पहल बना था। उसमे १६ खभे थे, लेकिन द्वितीय महायुद्ध मे जापानियो के विरुद्ध मोर्चा लेते हुए बर्मा मे रहनेवाले अगरेजो ने उसके दो खभे तोड डाले और पुल बेकार हो गया। अनन्तर उसका पुनर्निर्माण हुआ और २७ अक्तूबर, १९५४ को बर्मी के तत्कालीन राष्ट्रपति डा० बा ऊ ने उसका उद्‍घाटन किया। तबसे वह पुन चालू हो गया।

पुल की विशेषता उसकी विशालता तथा उसके निर्माण के तकनीकी कौशल के कारण तो है ही, लेकिन उससे भी अधिक वहा की भौगोलिक स्थिति तथा वातावरण के कारण है। उसके नीचे इरावदी की निर्मल धारा बहती है। नदी का पाट वहापर बहुत चौडा है। पुल की पृष्ठभूमि

मे सगाई नगर है और उसके पार्श्व मे पहाडी पर छोटे-वडे अनगिनत पगोडा हं। पुल पर खडे होकर चारो ओर के दृश्य वडे ही भव्य मालूम होते हैं।

सगाई नगर अव एक सामान्य नगर रह गया है, लेकिन किसी जमाने मे वह शान राज्य के एक सरदार की राजधानी थी। सरदार का नाती राजधानी को वहा से हटाकर आवा ले गया। अलागफया के पुत्र नादाजी के शासन-काल मे सगाई का भाग्य फिर चमका और वह चार वर्ष (१७६०-१७६४) तक फिर राजधानी रही। नादाजी की मृत्यु के वाद उसका सितारा अस्त हो गया। जव जापानियो का हमला हुआ तो लाखो वर्मी भागकर सगाई की पहाडी पर सुरक्षा के लिये गए। वहा आज भी सूर्य के प्रकाश मे चमकते हुए वीसियो पगोडा दिखाई देते हैं, सैकडो इमली के वडे-वड़े वृक्ष खडे हैं, हरियाली से वहा की भूमि का कण-कण सुशोभित है, लेकिन उस नगर का पुराना वैभव एक वार गया तो फिर लौटकर नही आया। पूर्व, दक्षिण और पश्चिम मे आज भी इरावदी उस नगर को अपनी वाहो मे लपेटे हुए है, पर ऐसा प्रतीत होता है, वहा की श्री कही चली गई है।

हमने नगर का एक चक्कर लगाया, वाजार मे जाकर एक होटल मे जलपान किया और फिर उसके पुराने इतिहास का स्मरण करते हुए अमरापुरा की ओर रवाना हो गये।

इरावदी के पुल को एक वार फिर पार करके अमरापुरा पहुंचे। अमरापुरा अलागफया वश के राजा वोदाफया (१७८२-१८१९) की राजधानी थी, लेकिन वोदाफया का नाती वाजीदाव (१८१९-१८३७) राजधानी को वहा से हटाकर सन १८२३ मे आवा ले गया। नियति से यह उलट-फेर नही देखा गया। वाजीदाव के वाद उसके भाई थारावडी ने अमरापुरा को फिर वही सौभाग्य प्रदान किया, किन्तु उसका भाग्य कुछ ऐसा खोटा था कि थोडे ही दिनो मे उसकी गद्दी छिन गई। आज उस नगर मे कोई भी ऐसा चिन्ह नहीं है, जो उसके पुराने वैभव की याद दिला सके। हा, उसकी भूमि पर दो समाधिया आज भी विद्यमान हैं—एक है वोदाफया की, दूसरी वाजीदाव की। दोनो पर अंगरेजी मे यह शिलालेख उत्कीर्ण है :

बोदयाफया

अमरापुरा नगर की स्थापना	१७८२
जन्म	१७४५
राज्यारोहण	१७८१
अमरापुरा मे मृत्यु	१८१६

बाजीदाव

जन्म	१७८४
राज्यारोहण	१८१६
गद्दी से उतारा गया	१८३७
मृत्यु	१८४८

दोनो ही समाधियो पर बुद्ध की मूर्त्तिया है।

उनके अतिरिक्त काठ का एक पौन मील लम्बा पुल है, जो वहा के तत्कालीन महापौर के नाम पर ऊ विन ब्रिज कहलाता है। उसके निर्माण के लिए ऊ विन ने आवा महल को, जो परित्यक्तावस्था मे पडा था, खुदवाकर सामान प्राप्त किया था। दोसौ वर्ष वाद आज भी वह पुल ज्यो-का-त्यो मौजूद है। इससे जहा उसके निर्माता की कुशलता का आभास होता है, वहा वर्मा की टीक लकडी की मजबूती का भी पता चलता है।

अमरापुरा मे एक पगोडा भी है, जिसे राजा पगान ने सन १८४७ मे वनवाया था। उसमे केवल वर्मी शिल्पियो ने काम किया था। ऊची कुर्सी देकर वनाये गए इस पगोडा पर जाने के लिए वडी-वडी सीढिया हैं। अन्दर विशाल वेदी पर वुद्ध की पाषाण प्रतिमा है, जो इतनी वडी है कि उसका शीश छत से स्पर्श करता है। उसके पीछे वुद्ध के शिष्यो की ८८ मूर्त्तिया है। १२ अन्य प्रतिमाए उसे चारो ओर से घेरे हुए हैं। इस पगोडा मे मूर्त्तियो की विशालता और वहुलता के अलावा चित्रकारी वडी सुन्दर है।

बाजीदाव का वनवाया पगोडा अपनी स्थापत्य-कला के कारण विख्यात है। उसमे अनेक जातक-कथाए चित्रित हैं। एक अभिलेख मे उसके निर्माण का इतिहास दिया हुआ है।

लेकिन अमरापुरा की जिस चीज ने हमारा ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया, वह यह थी कि उस बस्ती मे घर-घर करघे लगे हुए है और वह सूती तथा रेशमी कपडो की बुनाई का बहुत बडा केन्द्र है। बढिया-से-बढिया बर्मी लुगिया वहा तैयार होती हैं। हम उत्सुकतावश एक घर मे चले गये और यह देखकर बडा अच्छा लगा कि छोटे-से लेकर बडे तक घर के सारे सदस्य उस काम मे जुटे थे और बडी ही कलापूर्ण चीजे उन करघों पर तैयार हो रही थी।

बुनकरो के लिए वहापर एक प्रशिक्षण सस्था है, जिसकी स्थापना सन १९१४ मे हुई थी। जापानी विशेषज्ञो की सहायता से वहा कारीगर तैयार होते हैं और उनसे वस्त्र-उद्योग को निरन्तर प्रोत्साहन मिल रहा है।

अमरापुरा की निकटवर्ती फया बस्ती भी देखने लायक है। वहा मूर्त्तियो का निर्माण होता है। धातु की छोटी-बड़ी प्रतिमाए वहां के शिक्षित-अशिक्षित कारीगर इतने सुन्दर ढग से ढालते हैं कि दर्शक देखते ही रह जाते हैं। हम लोगो ने कई घरो मे जाकर पत्थर तथा सगमरमर से बनती हुई मूर्त्तिया देखी। घर के स्त्री-बच्चे सबका अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार उसमे योग रहता है। छैनी और हथौडे की मदद से छोटी-से-छोटी और बडी-से-बडी मूर्त्तिया वहा तैयार होती है। इन मूर्त्तियो का उपयोग बर्मा मे तो होता ही है, कभी-कभी वे विदेशो को भी जाती हैं।

माडले का सबसे बडा आकर्षण माडले-हिल है, जिसकी छत्रछाया मे सारा नगर बसा हुआ है। नगर से वह कोई दो मील पर है। वहातक पक्की सडक है। दूर से ही पहाडी और उसके मदिर दिखाई देते हैं। पहाडी पर चढने से पहले हम उसकी तलहटी मे बने विशाल महालोका-माराजे पगोडा को देखने गये, जिसका निर्माण राजा मिडोन ने सन १८५७ मे कराया था। उस पगोडा की सबसे बडी विशेषता यह है कि उसके प्रागण मे संगमरमर के ७२९ पट्ट लगे है, जिनपर समूचे त्रिपिटक उत्कीर्ण हैं। १११ पर विनय, ४१० पर सुत्त और २०८ पर अभिधम्म। उन्हें देखकर अनुमान होता है कि उनके निर्माता के हृदय मे धर्म-प्रसार के लिए कितनी गहरी सद्भावना रही होगी। बौद्ध धर्मावलम्बियो के लिए तो वह अद्वि-

वीय तीर्थ है। इतनी मूल्यवान सामग्री अन्य किसी देवालय मे नही मिलती।

पहाटी के दक्षिण-पूर्वी भाग मे एक देवालय है, जिसमे वर्तमान शताव्दी की पहली दशाब्दी मे पेशावर से आये अवशेष प्रतिष्ठित किये गये थे। दक्षिण मे राजा मिडोन का वनवाया पगोडा है, जिसकी बुद्ध-प्रतिमा मगाई से लाये सगमरमर के एक ही खण्ड मे मे वनाई गई है। कहा जाता है कि सगमरमर का वह खण्ड इतना वडा था कि दस हजार आदमियो को उसे वहा लाने मे तेरह दिन लगे। उस देवालय मे हर तरफ वीस-वीस के हिसाव से वुद्ध के शिष्यो की अस्सी प्रतिमाए हैं। राजा मिडोन की इच्छा थी कि पगान के आनन्द पगोडा के नमूने पर उसका निर्माण कराये, लेकिन राजमहल मे उपद्रव उठ खडे होने के कारण उनकी इच्छा पूर्ण न हो सकी।

पूर्व की ओर भी एक पगोडा है, जिसका निर्माण राजकुमार तथा राजवंश के कुछ अन्य सदस्यो की समाधियो पर किया गया है। सन १८६६ मे जव राजा मिडोन की हत्या करने के लिए महल मे उपद्रव हुआ था, उस समय राजवश के ये लोग मारे गये थे।

इन सवको देखते हुए हम लोगो ने माडले-हिल पर चढना आरम किया। प्रमुख द्वार के सामने उछाल-मुद्रा मे सिंहो की दो विशाल प्रतिमाए हैं। इतनी वडी और इतनी सजीव मूर्त्तियो के निर्माण मे पता नही कितना समय लगा होगा। इस प्रकार की प्रतिमाए वर्मा मे प्राय सभी पगोडाओ के प्रवेश-द्वारो पर मिलती हैं। फया वस्ती मे वुद्ध की प्रतिमाओ के साथ इनका भी निर्माण होता है। सिहो को देखते हुए सीढियों से ऊपर चढने लगे। शिखर तक पहुचने के लिए दक्षिण-पूर्व, दक्षिण तथा पूर्व, इन तीनो दिशाओ मे तीन मार्ग ह। वर्षा-धूप आदि से यात्रियो की सुरक्षा के लिए इन मार्गों के ऊपर पटाव दे दिया गया है। नतीजा यह कि किसी भी समय वडी आसानी से ऊपर जाया जा सकता है। पहाडी की ऊचाई ६५४ फुट है। लेकिन वीच-वीच मे विश्राम के लिए स्थान हैं, जहा रुककर चारो ओर के दृश्य देखे जा सकते हैं। सवसे ऊपर एक विशाल पगोडा है, जिसमे भगवान वुद्ध की वहुत वडे आकार की मूर्त्ति

है। खड्गासन मुद्रा मे होने के कारण नीचे पैर से लेकर ऊपर सिर तक वडी अच्छी तरह से उसके दर्शन किये जा सकते हैं। प्रतिमा वास्तव मे वडी भव्य है। उसके मुख-मण्डल पर शान्ति तथा वीतरागता का जो भाव झलकता है, वह अन्य मूत्तियो मे कम ही दिखाई देता है। मूर्ति अधिक पुरानी नही है।

उस पगोडा मे आगे और भी कुछ स्थल है, जिन्हे देखते-देखते दर्शक पहाडी के शिखर पर पहुच जाता है। ऊपर से चारो ओर की दृश्यावली वडी सुन्दर लगती है। एक ओर प्राचीन महल के वीरान खण्डहर तथा उसकी प्राचीर दिखाई देती है, दूसरी ओर शस्य-श्यामला शान-गिरि-शृ खला के मोहक दृश्य। तपोवन की-सी शान्ति मन को इतना एकाग्र कर देती है कि वहा से हटने को जी नही चाहता।

इस पहाडी को इतना विख्यात वनाने का श्रेय राजा मिडोन को है, जिसने वहा पर पगोडाओ तथा विहारो का निर्माण कराकर उसे सार्वजनिक श्रद्धा का केन्द्र वना दिया। मिडोन का पार्थिव शरीर कभी का नष्ट हो गया, लेकिन उसकी आत्मा अभी जीवित हे और पहाडी पर तथा उसकी तलहटी मे घूमते हुए उसके दर्शन सहज ही किये जा सकते है।

पहाडी के वडे पगोडा का निर्माण ऊ खाण्टी नामक भिक्षु की प्रेरणा से हुआ था। उसके वनाने मे वहा की धर्म-परायण जनता ने भी खुले हाथ सहायता दी थी।

इस पहाडी ने जहा अपने मिडोन राजा के वैभव को देखकर सुख अनुभव किया, वहा उस दुर्दिन की वेदना भी अनुभव की, जवकि उसीके वक्ष पर तोपे खडी करके जापानियो ने नगर पर वमवारी की और नगर तथा उसके राजमहल को धराशायी कर दिया। उससे पहले वह उस हृदय-विदारक घडी को भी देख चुकी थी, जवकि अन्तिम वर्मी राजा तीवो ने अपर वर्मा का भाग्य ब्रिटिश जनरल को सोंपा था। वर्मा के इतिहास मे इस पहाडी की स्मृति वडी गहरी अकित है।

तिलक-स्मारक के दर्शन के लिए जाते समय राजमहल हम पहले ही देख चुके थे। २७ फुट ऊची और १० फुट चौडी दीवारो को देखकर पता चलता है कि वह महल चौकोर था। महल के द्वार और उनके ऊपर निर्मित

लकडी के शिखर आज भी सुरक्षित हैं। उनके अलावा बची है २२५ फुट चौडी और ११ फुट गहरी खाई, जो चारो ओर से महल को घेरकर किसी जमाने मे उसे सुरक्षित बनाती थी। आज उसकी वह जिम्मेदारी नहीं रही, लेकिन उसके पानी मे कुमुदिनी की बहार आज भी देखी जा सकती है। उसकी इमारतो मे कारागृह का उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। उसके अलावा एक कक्ष मे प्राचीन महल का लकडी का एक माडल तथा अन्य वस्तुए रक्खी हैं। एक ओर को राजा मिडोन, राजमाता, रानी तथा राजवश के एक-दो अन्य व्यक्तियो की समाधियाँ हैं। एक शिलापट्ट उस स्थल का निर्देश करता है, जहा राजा तीबो ने ब्रिटिश जनरल को समर्पण किया था। उस सरोवर के खण्डहर भी विद्यमान हैं, जिसमे राजवश के कुमार और कुमारिकाए जल-क्रीडा किया करती थी। प्रासाद के चौक मे आधुनिक बर्मा का स्वतन्त्रता-स्मारक खडा है।

माडले विश्वविद्यालय, अभी विकास कर रहा है। कुछ समय पूर्व तक वह रगून विश्वविद्यालय से सम्बद्ध था, लेकिन सन १९५८ मे उसे स्वतन्त्र विश्वविद्यालय का दर्जा मिल गया। उसमे चार विभाग हैं—कला, विज्ञान, मेडीकल और कृषि। लगभग दो हजार छात्र-छात्राए उसमे शिक्षा पाते हैं।

माडले मे और उसके आसपास काफी घूम लेने के पश्चात निश्चय हुआ कि हमे ४२ मील की यात्रा करके वहा के विख्यात पहाडी मुकाम मेमियो को, जहा कुछ समय पहले तक ब्रह्मदेश की ग्रीष्मकालीन राजधानी रहती थी, अवश्य देखना चाहिए। लोगो का कहना था कि उसे देखे बिना माडले का चित्र पूर्ण नही होता। अत हमने एक दिन का समय और निकाला।

: १२ :

सुरम्य मेमियो नगरी में

सोचा था कि माडले मे तडके ही चल पडेगे तो ठडे-ठडे मे मेमियो का रास्ता तय हो जायगा और वहा घूमने, आसपास की जगहें देखने तथा लौटने मे सुविधा रहेगी, लेकिन जल्दी करते-करते भी ८ बजे से पहले निकलना न हो सका। कार मे विष्णुभाई और मेरे अलावा भाई सत्य-नारायण गोयनका के भाई श्री सोहनलालजी, जो माडले मे कपडे के व्यापारी हैं तथा उनके कुटुम्ब का एक बालक था। माडले से मेमियो तक पक्की सड़क है। नगर मे निकलकर कार आगे बढी तो चारो ओर मैदानी दृश्य दिखाई देने लगे। समतल मार्ग होने के कारण गाडी तेजी से बढती गई। गर्मी उस समय अधिक नही थी, और आकाश मे घूमते हुए मेघ-खण्ड इस बात की आशका पैदा कर रहे थे कि दिन मे वर्षा होगी।

कुछ मील निकलने पर सडक के इधर-उधर झाडिया आने लगी। हम समझ गये कि अब चढाई शुरू होनेवाली है। सोलहवा मील समाप्त होने के बाद तीसरा फर्लांग जैसे ही निकला कि चित्रपट की भाति नया दृश्य सामने आ गया। अब चारो ओर पर्वत थे, जिनपर नाना प्रकार के हरे-भरे वृक्ष और वल्लरिया थी और टेढी-मेढी सड़क ऊचाई पर चढ रही थी। कार का शोर बढ गया और वह अपनी पूरी ताकत से आगे बढने लगी।

हमारे अलावा और भी बहुत-से यात्री कारो, जीपो तथा बसो मे आ-जा रहे थे। हम बता चुके है कि बर्मी लोग बडे प्रकृति-प्रेमी होते है और फुरसत के समय को वे सामान्यतया घरो मे नही, बल्कि अपने स्त्री-बच्चो आदि के साथ सुन्दर स्थानो पर सैर-सपाटे में व्यतीत करते हैं।

चढाई चढते-चढते एक छोटी-सी बस्ती आई। सोहनलालजी ने बताया कि यह यात्रा का मध्य-स्थल है। वहांपर एक मामूली-सा बाजार था, जिसमे कुछ रेस्ट्रा भी थे। हमने एक रेस्ट्रा मे जाकर चाय पी।

यात्रियो की खासी भीड थी। विश्राम के लिए थोडी देर तक अधिकाश यात्री वहा रुक जाते हैं।

जलपान के बाद जैसे ही आगे बढे कि वह स्थल आ गया, जिसे 'व्यु पाइण्ट' कहते हैं। यात्री यहा पर अनिवार्य रूप से ठहरकर चारो ओर की दृश्यावली को देखते हैं। मौसम साफ हो तो माडले नगरी देखी जा सकती है और हरियाली तथा पर्वतो के सुन्दर दृश्यो का आनद लिया जा सकता है। लेकिन दुर्भाग्य से उस दिन हल्की धुध होने के कारण हमे निकट के दृश्यो को ही देखकर सतोष कर लेना पडा।

आगे के आधे मार्ग ने हमे चढाई और उतराई दोनो का अनुभव कराया। मेमियो पर्वतो के शीश पर नही, गोद मे बसा है। इसलिए वहा पहुचने से पहले लगभग चार हजार फुट ऊपर पहुचकर फिर कोई पाच-सौ फुट उतरना पडता है। मेमियो समुद्रतल मे ३४८१ फुट पर है।

४२ मील का वह रास्ता दो घटे से कुछ अधिक मे पार हुआ और जब मेमियो के बाजार मे हमारी कार रुकी तो वहा की बस्ती की सुघडता और प्राकृतिक दृश्यो की अनुपमता को देखकर हृदय पुलकित हो उठा। मोहनलालजी अथवा उनके किसी सबधी की वहा कपडे की दुकान है। उसीमे हम रुके। शाम को हमे लौट जाना था, इसलिए स्वल्पाहार कर जल्दी ही घूमने निकल पडे।

मेमियो का इतिहास बहुत पुराना नही है। सन १८८६ मे वहापर पचम बगाल इन्फ्रेंट्री रेजीमेन्ट का केन्द्र था। उसीके एक कर्नल मेय के नाम पर उसका यह नाम पडा। उसकी अवस्थिति तथा जलवायु के कारण उसे विशेष महत्व मिला। अगरेजो का यह स्वभाव रहा है कि वे जहा-जहा गये, वहा-वहा उन्होंने ऐसे शीतल स्थान खोजकर विकसित किये, जहा वे गर्मी से बच सके। मेमियो का विकास भी उनके इसी स्वभाव के फल-स्वरूप हुआ। बर्मा मे अगरेजी राज्य के जमाने मे मेमियो गर्मी के महीनो मे राजधानी बन जाती थी। यद्यपि अब बर्मी सरकार उस परिपाटी का अनुकरण नही करती, तथापि मेमियो के सौंदर्य मे कोई अन्तर नही पडा। हमारे किसी भी अच्छे-से-अच्छे पहाडी मुकाम से वहा कम रौनक नही है और वहा की सफाई के स्तर को प्राप्त करने मे तो हमे वर्षो लग जायगे।

इस समय वहा बर्मी सेना की उत्तरी कमान का हैडक्वार्टर है। रगून से वहा के लिए सप्ताह मे दो वार हवाई जहाज जाता है।

छोटी-छोटी पर्वत-मालाओ के बीच मेमियो १७ वर्गमील के घेरे मे वसा हुआ है। उसकी सवसे ऊची शिखर 'वन ट्री हिल' ४०२१ फुट ऊची है। वहा की शोभा मे यूक्लिप्टस, देवदार, चीड आदि के गगनचुम्बी हरे-भरे वृक्ष चार चाद लगाते हैं। पहाडो के ढलानो तथा मैदानो मे कॉफी स्ट्राबेरी और अनन्नास के खेत वहा की समृद्धि मे अपना योगदान देते हैं। गोभी, गाजर आदि साग-भाजियो तथा फलो की वहा भरमार है और वहा के पुष्प तो समूचे वर्मा के पगोडाओ मे चढाने के लिए हवाई जहाज द्वारा ले जाये जाते हैं।

मेमियो की आबादी पचास हजार के लगभग है। उसी हिसाव से रगून तथा माडले की चाल का वहा वाजार है, जिसमे सव तरह की चीजें एक ही जगह पर मिल जाती हैं। म्यूनिसिपल बाजार के बीच मे घटाघर की मीनार है। नगर की स्थापत्य-योजना वडी सुन्दर है।

शहर मे चक्कर लगाकर हम सवसे पहले ७ मील पर अनीसकान प्रपात देखने गये, जो मिलटरी का वनाया हुआ है, लेकिन वहा की भौगोलिक स्थिति, हरियाली, जलाशय तथा झरने के स्वरूप को देखकर पता नही चलता कि वह मानव-निर्मित है। सवकुछ प्राकृतिक लगता है। वर्मा के तत्कालीन प्रधानमत्री ऊ नू व अन्य मत्री वहा आनेवाले थे, इसलिए चारो ओर सैनिको का साम्राज्य था, फिर भी काफी सैलानी आये हुए थे और प्रपात मे स्नान कर रहे थे, तैर रहे थे। कही-कहीं पर्यटकों की टोलिया वृक्षो की छाया मे बैठी खा-पी रही थी। १५ मील पर वेटवन नाम का एक और प्रपात है। ये दोनो ही स्थल मेमियो के विशेष आकर्षण हैं।

लौटकर वी०टी० ब्रदर्स स्विमिग पूल गये। वह जलाशय है तो छोटा-सा, लेकिन तैरने, डुवकी लगाने और उसके किनारो पर जाडो मे धूप का आनद लेने की वहा वडी अच्छी सुविधा है। समय-समय पर सतरण-प्रतियोगिताए भी होती रहती हैं। पानी वहुत ही स्वच्छ था।

वहा से नगर के नव-निर्मित उद्यान को देखने गये। इस उद्यान

के निर्माण की कहानी सुनकर हृदय रोमांचित हो उठा । उसे सैनिकों ने नागरिकों के हित के लिए अपने श्रम से बनाया है । उसमें मजदूरी के रूप में अथवा दूसरी तरह से पैसा नहीं के बराबर लगा है । काफी बड़ा है । उसमें बच्चों के खेलने की बड़ी अच्छी व्यवस्था है, जलपान-गृह है, स्त्री-पुरुषों के स्नान के अलग-अलग स्थान है । पूरी तरह से तैयार होने पर यह उद्यान वहां का एक महत्वपूर्ण केन्द्र होगा । सैनिकों के रचनात्मक उपयोग का यह ढंग निस्संदेह अनुकरणीय है ।

उसके बाद हम बोटानीकल गार्डेन गये । साढ़े तीनसौ एकड़ भूमि में पर्वतों के बीच अवस्थित उस बाग में नाना प्रकार के रंग-बिरंगे फूलों तथा भांति-भांति के पौधों और वृक्षों का बढ़िया संग्रह है । अनुसंधान का कार्य भी वहांपर होता रहता है । बाग का सबसे बड़ा आकर्षण वहां की विशाल झील है । हमें बताया गया कि उस झील को बंदियों ने खोद-कर तैयार किया था । उसमें पूरी तरह से पानी भर जाने पर उसकी शोभा देखते ही बनती है । बर्मा के राष्ट्रपति का ग्रीष्मकालीन भवन यहींपर है । लौटने में पहली बार हमने स्ट्राबेरी के खेत देखे । सड़क के निकट स्ट्राबेरी बिकती देखकर हम खेतों में चले गये । उन खेतों के स्वामी छोटे-से बर्मी परिवार के स्त्री-पुरुषों तथा बच्चों ने हमें खेत में जाते देखकर भी रोका नहीं । संभवतः वे समझ गये थे कि हम उनके खेतों को नुकसान पहुंचाने नहीं, बल्कि कौतूहलवश जा रहे हैं । स्ट्राबेरी का पौधा बड़ा छोटा होता है और एक-एक पौधे पर कई-कई स्ट्राबेरियां लगती हैं । खेतों में छोटी-छोटी क्यारियां बनी थीं और उनमें पौधों पर हरे और लाल-लाल फल लगे थे । पक जाने पर हरे फलों का रंग लाल हो जाता है ।

खेतों को देखने के बाद हम बर्मी परिवार के बीच चले गये और मोहनलालजी के माध्यम से उन लोगों से वहां के जीवन के विषय में बातें करते रहे । बेचने के लिए उन लोगों ने कुछ स्ट्राबेरी तोड़ रखी थीं, वे खरीदीं । बर्मी-परिवार बड़ा प्रसन्न था कि इतनी दूर-देश के लोग उनके घर आये । हमारे कहने पर उन्होंने चित्र भी खिंचवा लिये ।

वहां से चलकर शहर आये । जो समय हमारे पास बचा था, वह बाजार में घूमने तथा वहां के लोक-जीवन को देखने में बिताया । शान-

पर्वतो के स्त्री-पुरुषो की पोशाक और धूप से बचने के लिए सिर पर लगाये गए बडे-बड़े टोप किसी भी पर्यटक को विचित्र ही लगेंगे। वहा के शान झोले विख्यात है और बाजार मे विभिन्न किस्मो और मूल्यो के मिल जाते हैं।

जाते समय मौसम ने जो आशका उत्पन्न की थी, वह निर्मूल निकली। सारे दिन आकाश साफ रहा ओर हम सब चीजे बड़ी अच्छी तरह से देख सके। मेमियो सचमुच बडा सुन्दर नगर है। वहा का जलवायु तन्दुरुस्ती के लिए बहुत अनुकूल माना जाता है। यही वजह है कि माडले तथा दूसरे स्थानो के लोग कुछ दिन वहा रहने के लिए चले जाते है। पिकनिक के लिए तो वह बहुत ही उत्तम स्थान है।

४ बजे के लगभग वहा से चलकर ५। बजे माडले पहुचे। हमारे कान्सलेट के कौसलर श्री पडित ने आग्रह किया था कि हम उनसे बिना मिले न जाय, इसलिए सीधे उनके यहा गये। वह वहा के भारतीयो की स्थिति के बारे मे बाते करते रहे और भारत के विषय मे बहुत-सी बाते हमसे पूछते रहे।

अभी एक कार्यक्रम और बाकी था। वह था हिन्दी पढनेवाली बहनो से मिलना। अत श्री पडित से जल्दी ही छुट्टी लेकर वर्माजी के यहा आये। डा० ओमप्रकाश की छोटी बहन सुभद्रा, जो उसी परिवार मे ब्याही हैं, हिन्दी के प्रचार के लिए बडी लगन से काम कर रही हैं। वह राष्ट्र भाषा प्रचार समिति आदि की परीक्षाओ के लिए छात्राओ को तैयार करती है। उन्होने अपनी प्रवृत्तियो का परिचय कराया। हिन्दी का एक वर्ग भी दिखाया। उनके पति श्री ऋषिराज बडे विनोदी है। बातचीत मे हिन्दी के बडे-बडे शब्दो का प्रयोग कर-करके उन्होने हमारा बडा मनो-रजन किया। क्लिष्ट शब्दो का उच्चारण करके मुस्कराते हुए जब वह पूछते थे कि क्यो, मै गलत तो नही बोला, तो हम लोगो को हँसी आये बिना नही रहती थी।

माडले मे भारतीयो की काग्रेस है तथा एक साहित्यिक सस्था भी है। वे लोग सभाए करना चाहते थे, लेकिन हमारे पास समय ही कहा था! हमे उसी रात को ८।। बजे की गाडी मे शान राज्य की राजधानी

दीजी के लिए रवाना हो जाना था।

थोडे-से समय मे वर्मा-परिवार[1] के सभी सदस्यो तथा भाई सोहन-लालजी आदि के साथ बडी आत्मीयता पैदा हो गई। विदा लेते समय उन सबका और हमारा जी भर आया। मना करते-करते भी वे लोग स्टेशन पर पहुचाने आये। गाडी के रवाना होने के बाद बहुत देर तक हमारा मन वहा की स्मृतियो मे उलझा रहा।

[1] अब यह परिवार रगून आ गया है।

: १३ :

शान राज्य में

रात को ११ बजे थाजी स्टेशन पर गाडी बदलनी थी। सोचा कि बाद मे सोने को मिले या न मिले, इससे एकाध घटा शुरू मे नीद ले लेनी चाहिए, लेकिन हवाई जहाज की-सी सीटें होने तथा किसी महाशय के कसकर शराब पी लेने और बदहवासी मे बार-बार जोर से बड़बडा उठने के कारण एक पल को भी आख न लगी। जैसे-तैसे वह रास्ता कटा और एक घटा देर से, अर्थात ठीक आधी रात पर थाजी पहुचे। माडले-रगून लाइन का वह एक बडा स्टेशन है और वहा खूब चहल-पहल रहती है।

गाडी रुकने पर हमने अपना सामान उतार लिया और दूसरे प्लैट-फार्म पर ले जाने के लिए बोझी की प्रतीक्षा करने लगे। इतने मे दो बर्मी युवतिया हमारे पास आईं और बर्मी भाषा मे हमसे कुछ कहने लगी। हम उनकी बात तो समझ नही पाये, पर उनके हाव-भाव मे जान गये कि वे सामान उठाकर दूसरे प्लेटफार्म पर पहुचा देना चाहती हैं। क्षण-भर के लिए हम अवाक् रह गये। स्त्रियो को मजदूरी करते प्राय देखा जाता है, लेकिन प्लैटफार्मों पर जवान लडकियो को सामान ढोते देखने का यह पहला ही मौका था। हम द्विविधा मे पडे, पर उनसे सामान न उठवाते तो करते क्या! वहा अधिकाश बोझी बर्मी लडकिया ही थी। लाचार होकर हमने उन्हें अपनी गाड़ी बताई और सामान ले चलने का सकेत किया। मुस्तैदी से उन्होने हमारे सूटकेस तथा दूसरा सामान उठा लिया और फुर्ती से आगे बढ चली।

पुल पार करके हम दूसरे प्लैटफार्म पर पहुचे। हमारी गाडी वहा खडी थी, लेकिन पहले दर्जे के डिब्बे बन्द थे। उनके खुलवाने मे उन लड़कियो ने मदद की और जब रेलवे अधिकारी ने उन्हें खोल दिया तो एक में उन तरुणियो ने हमारा सामान अन्दर रख दिया और पैसे लेकर दूसरी मजदूरी पर दौड गईं।

पार्वत्य-प्रवास के लिए हमे जो यह गाडी मिली, वह ऐसी थी कि कुछ न पूछिये। तीन वर्थ के डिब्बे मे रात को भी सात आदमियो के बैठने की व्यवस्था थी। शुरू मे हम दो रहे, पर बाद मे एक बर्मी कप्तान, उसकी पत्नी, भतीजी तथा दो भारतीय आ गये। उस भीड-भाड मे सोने की सुविधा कहा सभव थी! बर्मी-परिवार तो एक-दूसरे के सहारे टिककर सो गया, पर हम रातभर तारे गिनते रहे। सवेरे ३-४५ पर गाडी रवाना हुई। उसके बाद थोडी देर के लिए आख लग गई।

दिन का प्रकाश फूटने पर मैं शौचालय मे गया तो देखता क्या हू, उसमे पानी ही नही है। अगले स्टेशन पर मैं गार्ड के पास गया और उससे पानी की व्यवस्था करने को कहा तो वह बोला, "आपको थाजी पर कहना चाहिए था। यहा मैं कुछ नही कर सकता।" अगले स्टेशन पर मैंने उसे फिर पकडा। मैंने कहा, "आपको कोई-न-कोई इतजाम करना ही होगा। हमारे लिए यह सभव नही कि हम निवृत्त न हो।" जब उसने बहुत लाचारी दिखाई तो मैंने सुझाया कि फिलहाल वह कही से एक बाल्टी पानी मगवाकर रखवा दें। बाद मे पानी भरने का कोई स्टेशन आवे तो टकी भरवा दें।

गार्ड ने कहा, "आगे ऐसा कोई स्टेशन ही नही है।"

फिर भी मैंने अपना आग्रह नही छोडा। गार्ड भला था। हमारी कठिनाई अनुभव कर रहा था। उसने मुझे साथ लेकर सारे स्टेशन पर चक्कर लगाया, चाय की दूकान पर खोज की, पर कही भी बाल्टी न मिली। अब क्या हो? मेरी परेशानी और बढ गई। तब उस भले आदमी ने क्या किया कि ड्राइवर को बुलवाया और इजन को चलवाकर गाडी को पीछे ले गया, फिर इजन के कोयले मे पानी डालनेवाले नल के नीचे हमारे डिब्बे को खडा कराकर टकी मे पानी भरवा दिया। मैंने धन्य-वाद दिया तो वह बोला, "नही, कोई बात नही है। हमारी गलती थी। पर अगर आपने गाडी के रवाना होने से पहले नल देख लिया होता तो आपको दिक्कत न हुई होती।"

जिस समय हम लोगो की बातचीत हो रही थी, एक सज्जन पास खडे थे। उन्होने बडे गभीर होकर कहा, "आपने इस मुल्क को हिन्दुस्तान

समझ रक्खा है। यहा के लोग किसी काम के नही है। वे बडे सुस्त और काहिल है।"

इतना कहते-कहते उन्होने अपनी बात का अत बड़ी बुरी गाली से किया। मैंने उनके मुह की ओर देखते हुए कहा, "आप कौन है ? किस देश के रहनेवाले है ?"

बिना किसी सकोच या झिझक के वह बोले, "जी नही, मैं बर्मी नही हू। शान[1] हू। जीहा, शान।"

इसके बाद उन्होने फिर बडी भद्दी गाली दी। शान राज्य भी आखिर बर्मा मे ही है। उसके इस प्रकार अपशब्द बोलने पर मुझे हँसी आने को हुई, पर मैंने उसे रोक लिया।

एक बडी परेशानी दूर हो गई, इससे मन सतुष्ट हो गया था। अब उस सबध मे तर्क करना बेकार था।

पहाडी प्रदेशो का मार्ग वैसे ही मनोरम होता है, पर इस हिस्से की शोभा निराली थी। सघन वेणुकुजो से आरम्भ करके जैसे-जैसे ऊपर चढते गये, प्रकृति का रूप निखरता गया। साढे चार हजार फुट की ऊचाई पर पहुचे तो देखा, चीड के हरे-भरे वृक्षो ने पर्वतो को नया बाना पहना दिया है। लेकिन थोडा और आगे बढे कि देवदार के वन आ गये और फिर वहा की दृश्यावली इतनी मनोरम बन गई कि हमे पता ही नही चला कि घटे-पर-घटे किस तरह निकल गये।

यह मार्ग बडी चतुराई से बनाया गया है। रेल की पटरिया इस तरह डाली गई है कि एक चढाई चढ लेने पर वे समाप्त हो जाती हैं। फिर गाडी पीछे लौटती है और नई चढाई चढने के लिए मानो नया हौसला लेकर नई पटरियो पर चढती है। आगे-पीछे दो इजन रहते है। गाड़ी इतनी धीमी चलती है कि कई स्थानो पर तो उसके साथ पैदल चला जा सकता है। ऊचाई पर पहुचकर नीचे देखने पर कई-कई पटरिया एक साथ दिखाई देती है।

५०।। बजे कलो पहुचे, जो शान राज्य का एक प्रमुख पहाड़ी मुकाम

---

१ उत्तरी बर्मा के शान राज्य का निवासी।

है। अपनी जलवायु तथा प्राकृतिक सौंदर्य के लिए वह विख्यात है। यहापर अनेक भारतीय दिखाई दिये। हमारे डिब्बे के दोनो भारतीय यहीपर उतर पड़े, लेकिन पास के डिब्बे के एक भारतीय सज्जन हमारे पास आये और बोले, "आप लोग फिक्र न करें। रेल मे उतरने पर टौंजी जाने के लिए हम सारी व्यवस्था करा देगे।"

कलो से चलकर छोटे-छोटे स्टेशनो पर रुकते हुए १ बजे हेहो पहुचे। कलो की ऊचाई लगभग साढे चार हजार फुट थी, हेहो की ३८४७ फुट। काफी बडा स्थान था। यहापर हवाई अड्डा है। आगे बढने पर ऐसा लगा, मानो मैदान में चल रहे हो। यहा के दृश्य देखकर पूना के दृश्य याद आ गये। पर्वतो की ऊचाई, उपत्यकाए आदि सब पीछे छूट गये थे और अब हम समतल रास्ते पर चल रहे थे। श्वे यॉ स्टेशन, जो इस लाइन का अन्तिम स्टेशन था और जहा हमें उतरना था, अब केवल ११ मील रह गया था। पर आखिरी ८-९ मील मे पुन दृश्य बदल गये। पहाडो, वनो और घाटियो का सिलसिला फिर शुरू हो गया।

१-४० पर श्वे यॉ पहुचे। छोटा-सा स्टेशन है, पर शान राज्य की राजधानी का स्टेशन होने के कारण वहा की छोटी-सी बस्ती मे डाक-तार आदि की सब सुविधाए थी। हमे मालूम नही था कि टौंजी जाने के लिए वहा इनी-गिनी ही मोटरें हैं। हमने आराम से सामान उतारा और स्टेशनमास्टर के आफिस मे जाकर कोशिश की कि अगले दिन वापसी के लिए रेल मे जगह सुरक्षित करालें, लेकिन जगह सुरक्षित नही हुई। उन्होने कहा, "डाकखाने मे जाकर हवाई जहाज के दफ्तर को फोन करो। हो सकता है कि हवाई जहाज की टिकट मिल जाय।"

हम डाकखाने गये। फोन किया, पर कुछ भी न हुआ। इस सबमें इतनी देर हो गई कि बाहर आये तबतक सारी सवारिया घिर चुकी थीं। हमारी पूरी व्यवस्था का आश्वासन देनेवाले भारतीय सज्जन हमारे रोकते-रोकते चकमा देकर निकल गये।

अब ? हम हैरान होकर कभी इस गाडीवाले के पास जाते तो कभी उसके, पर जगह हो तभी तो मिले। हमारे रेल के साथी कप्तान ने हमे सवारी दिलवाने का भरसक प्रयत्न किया, पर वह सफल न हो सके।

अन्त मे हमने गार्ड को अपनी लाचारी बताई। उस सदाशयी व्यक्ति ने हमारे लिए जो किया, वह हमेशा याद रहेगा। उसने मिलटरी के एक ट्रक ड्राइवर से, जो सयोग से भारतीय थे, आग्रह करके हमे टौंजी पहुचाने के लिए राजी कर दिया। वैसे वह ट्रक वहा जा ही रहा था, लेकिन यदि गार्ड ने दबाव न डाला होता तो सरदारजी हमे हर्गिज न ले जाते।

दिन-भर के थके थे। गार्ड हमारी थकान देखकर हमे रेस्ट्रा मे ले गये। कॉफी मगाई। जब हम पैसे देने लगे तो उन्होने हमे रोक दिया। खुद पैसे देते हुए बोले, "आप इस देश मे हमारे मेहमान हैं।" फिर कुछ रुक-कर उन्होने कहा, "मैं भारत मे चार साल रह चुका हूं और आधा हिन्दु-स्तानी हू। मेरे पिता हिन्दुस्तानी यहूदी थे।" उन्होने यह सब इतनी आत्मीयता से कहा कि हमारा दिल भर आया।

ड्राइवर ने हमे ट्रक मे अपने पास बिठा लिया और पीछे कुछ और मुसाफिर भर लिये। ३। बजे वहा से चले। टौजी कुल १२ मील था, जिसमे ६ मील ५ फर्लांग की खडी चढाई थी। सडक अच्छी थी, पर उसमे मोड बहुत थे। लगभग आधा घटे मे टौंजी पहुच गये। ड्राइवर ने इतनी मेहरबानी और की कि हमे ठीक उस जगह पर पहुचा दिया, जहा ठहरने के लिए हमारे पास एक चिट्ठी थी। मेन रोड पर रतनचन्द गोपी-चन्द फर्म के स्वामी श्री गोपालजी दुकान पर मिल गये और चिट्ठी के आधार पर उन्होने पास ही मे सत्यनारायण के मन्दिर मे ठहरने की व्यवस्था कर दी।

हाथ-मुह धोकर आगे का कार्यक्रम बनाया। ट्रैविल एजेसी गये, पर रगून लौटने के लिए हवाई जहाज के टिकट का कुछ न हुआ। फिर वहा की काग्रेस के प्रधान श्री एन० सी० राय से मिले। वडे भले आदमी थे। उनसे बात हुई कि हम अगले दिन जाना चाहते हैं तो उन्होने कहा, "यह कैसे हो सकता है? आप यहा का सबसे वडा आकर्षण इनले (पानी की वस्ती) नही देखेगे?"

हमने अपनी विवशता बताते हुए कहा, "हमारे लिए अधिक रुकना सभव नही है। सम्मेलन का अधिवेशन २४ तारीख से है। हमे हर हालत मे २३ को पहुच जाना है।"

"सो तो ठीक है," वह बोले, "पर आप विना 'पार्नी की वस्ती' को देखे जाय, यह हम गवारा नही कर सकते । आप एक दिन रुक जाय और वहा हो आवे । हम आपको हवाई जहाज की टिकट दिलवाने की पूरी कोशिश करेंगे ।"

हमने कहा, "हम हवाई जहाज के दफ्तर मे हो आये हैं । टिकट मिलती कहा है ?"

वह बोले, "आप चिन्ता न करे । न होगा तो हम आपको सरकारी सीटो मे से दो सीटे दिलवाने का प्रयत्न करेंगे ।" उनके इस आश्वासन के पीछे इतना आत्मविश्वास था कि हम निश्चिन्त हो गये ।

प्रकृति की गोद मे वसी टौंजी नगरी का राजधानी होने के कारण जितना महत्व है, उससे अधिक आकर्षण उसकी प्राकृतिक रमणीकता के कारण है । शहर काफी वडा है और वाजार भी वहुत ही समृद्ध है । मेन रोड के दोनो ओर वडी-वडी दूकानें है । वाजार मे घूमते हुए वहुत-से स्त्री-पुरुषो को देखा, जो काले कपडे पहने हुए थे । वडे ही स्वस्थ और सुन्दर । पूछने पर मालूम हुआ कि वे टौंस-प्रदेश के निवासी है और वडे ही सम्पन्न है । उनकी वेशभूषा और आभूषणो से साफ पता चलाता था कि उनकी माली हालत अच्छी है ।

सयोग से वहापर एक नये वौद्ध विहार का उद्‌घाटन हो रहा था, जिसके कारण बहुत वडा मेला लगा था । उसमे शामिल होने के लिए दूर-पास के हजारो स्त्री-पुरुष इकट्ठे हुए थे । हम जीप द्वारा टौजी की सवसे ऊची चोटी पर गये, जहा एक पगोडा था । उसके पार्श्व मे बुद्ध की एक विशाल खडगासनस्थ प्रतिमा अनन्त आकाश के नीचे, बिलकुल खुले मे, यात्रियो को अपना सदेश दे रही थी । वडी मनोज्ञ प्रतिमा थी । चारो ओर के उन्मुक्त वातावरण ने उसकी दिव्यता को और भी वढा दिया था । उस ऊचाई से नगर का दृश्य बहुत ही मनोरम लगता था ।

वहा से चलकर अशोक-स्तभ देखा, जिसका निर्माण भारतीय स्वतत्रता के समय हुआ था । तत्पश्चात मेले मे आये । वहापर वास्तविक शान राज्य को देखने का अवसर मिला । ऐसा प्रतीत होता था, स्वास्थ्य और सौन्दर्य का प्रकृति ने खुले हाथो वहा के निवासियो को दान दिया है ।

शान राज्य का क्षेत्रफल लगभग ५६ हजार वर्गमील है। अगरेजी शासन के जमाने मे शानवासियो ने अपनी पुरानी सामतशाही पद्धति को कायम रक्खा था, लेकिन सन् १९५९ से उन्होने शासन की लोकतत्री पद्धति को अपना लिया। उसकी राजधानी टौंजी ४३०० फुट की ऊचाई पर है और उसकी आबादी कोई २० हजार है, जिसमे करीब ५ हजार भारतीय हैं। अधिकाश भारतीय व्यापार करते है। नगर का विकास हो रहा है। रूसी सरकार की सहायता से एक बडे अस्पताल का भवन बन रहा है। कालेज वहा एक भी नही है। हाईस्कूल पास करने के बाद छात्र-छात्राए कालेज की पढाई करने के लिए माडले जाते है।

छोटी-सी बस्ती है। शाम के कुछ घटो मे उसे अच्छी तरह देख डाला। सफाई खूब थी। अन्य स्थानो की अपेक्षा उस नगरी का अपना सौंदर्य था।

अगले दिन पानी की बस्ती देखने गये, जो टौंजी से १९ मील पर है। सबेरे ९।। बजे जीप से रवाना हुए। श्वे यौ स्टेशन तक तो पुराना रास्ता था। आगे ८ मील और चलकर ११ बजते-बजते वहा पहुच गये। यह बस्ती यौं श्वे कहलाती है। दस हजार की आबादी है, जिसमे सौ-डेढसौ भारतीय दूकानदार है। यहा से एक छोटी-सी अगनबोट लेकर हम पानी की बस्ती की ओर चले। शुरू मे उसका चालक नाले मे घसीटकर अगनबोट को ले गया, फिर अधिक पानी आजाने पर इजन चालू कर दिया। ३-४ मील तक पानी का गलियारा रहा, जिसके एक ओर लकडी के मचानो पर मकान बने थे। फिर इतनी विशाल झील आई, जिसकी हमने स्वप्न मे भी कल्पना न की थी। १२ मील लम्बी और कोई ४ मील चौडी वह झील विश्व के आश्चर्यो मे से एक है। उसे चारो ओर से शान गिरि-मालाए घेरे हुए है। उसे बर्मावासी इनले झील कहते है, पर भारतीयो ने उसका नाम 'पानी की बस्ती' रख दिया है। उसका पानी इतना निर्मल है कि नीचे की तली की सब चीजें साफ दिखाई देती हैं।

रास्ते मे हमे घास के बहुत-से पुज मिले, जिनमे से हरेक के बीच मे एक-एक ऊचा बास गडा हुआ था। पूछने पर मालूम हुआ कि वे मछली पकड़ने के अड्डे हैं। उनका नीलाम होता है। जिसकी बोली सबसे ज्यादा

होती है, उसीको वह मिल जाता है। पतली-पतली नावें लिये मछुवे इधर-उधर घूमकर मछली पकड रहे थे। बस्तियों के निवासी मछली पकडने के अलावा अन्न की खेती करते हैं, सागभाजी उगाते हैं, फल पैदा करते है, करघे पर सूती और रेशमी कपडे बुनते है, लुगी, झोले आदि बनाते हैं। कुछ लोग दूकान करते हैं, कुछ नाव चलाते हैं। यातायात का सारा काम वहा नावो द्वारा होता है।

श्रीनगर मे हमने डल झील देखी थी। शिकारे मे घूमकर उस झील की विशालता का भी अदाज किया था। हाउस-बोटो मे छोटे-छोटे घर भी देखे थे, लेकिन इतनी बडी झील और मचानो पर स्थायी रूप से बसी इतनी बस्तियो को देखने का यह पहला ही अवसर था। फिर बस्तिया एक जगह बसी हुई नही थी। थोडी-थोडी दूर पर फैली थीं। उनमे बारी-बारी से हर पाचवे दिन हाट लगती है जिसमे लोग अपने-अपने यहा की चीजें लेकर बेचने आते है।

नमहू बस्ती के फो डोऊ फया यानी बौद्ध मदिर के पास हमारी नाव रुकी। उतरकर सबसे पहले मदिर मे गये। उसका बाहरी रूप इतना कलापूर्ण और इतना आकर्षक है कि देखते-देखते तृप्ति नही होती। उसके बाह्य सौंदर्य को सराहते हुए हम अदर गये। गर्भ-गृह मे अन्य पगोडाओ की भाति बुद्ध की मूर्त्ति नही है। कुछ अवशेष रक्खे हैं। इस मन्दिर के प्रति सारी बस्तियो के लोगो की बडी श्रद्धा है। जनश्रुति है कि जिस समय जापानी लोग यहा आये थे और इस मदिर पर अधिकार करना चाहते थे, तो एक भी बर्मी सिपाही न होते हुए उन्हें बर्मियो की फौज खडी दिखाई दी थी और वे डरकर मारे भाग गये थे। इस प्रकार आज भी उन लोगो का विश्वास है कि उस फया (मदिर) के कारण उनकी रक्षा हो गई। वे इन्द्र के समान किसी जल-देवता की कल्पना उस देवालय मे करते हैं। सभवत इसका कारण यह है कि जल का उनके जीवन के साथ घनिष्ठ सबध है।

फया को देखकर बाहर आये। टौंजी से हमारे साथ खाना बनाकर रख दिया गया था। सबने मदिर के अहाते मे चाय की दूकान पर बैठकर भोजन किया। चाय पी। मदिर के बाहर चार-पांच दूकानें थी, जिनपर

वहा की बस्तियों के बने झोले आदि देखे। पूछा तो उनका दाम इतना अधिक था कि खरीदने की हिम्मत नही हुई।

२।बजे तक वहा रहे। फिर नाव से द्दामा नामक बाजार मे गये। वह पच्चीस-तीस दूकानो का बाजार था। एक दूकान पर उतर पडे। नाववाले को पैट्रोल लेना था। जब वह पैट्रोल ले रहा था, एक बर्मी लड़की ने कुछ मीठी गोलिया लाकर हमारे सामने रख दी। फिर पीने का पानी ले आई। उसके इस मधुर व्यवहार के लिए हमने उसका आभार माना।

सूरज ढलता जा रहा था और हमे शाम तक टौंजी पहुचना था। अत चले तो देखते क्या है कि बहुत-से मल्लाह पैर से नाव खे रहे है। ससार मे सब जगह नावे हाथ से चलाई जाती है, लेकिन इस झील के नाविक उन्हें पैर से चलाते है। एक टाग मे नाव के सिरे पर खडे होकर दूसरी टाग मे डाड को जकडकर नाव को इधर-उधर ले जाते है।

रास्ते मे गेस्ट हाउस पर रुकने का लोभ सवरण नहीं हुआ। देर हो रही थी, फिर भी नाव को वहा रोका। जब गेस्ट हाउस के अदर गये तो बिना स्नान किये जी नहीं माना। कूद-कूदकर खूब नहाये, तैरे। हमारा नाविक बडा रसिक था। सिर पर फैल्ट हैट लगाकर और मुह मे सिगार दबाकर वह बर्मी तरुण अगरेज-जैसा लगता था। जिस समय हम स्नान कर रहे थे, वह अपनी तान छेड रहा था। लकडी के गेस्ट हाउस के बरामदे मे खड़े होकर जब हम १५०० फुट की ऊचाई पर उस सागर-जैसी झील को विस्मित होकर देख रहे थे, हमारे एक साथी ने कहा, "जानते है, यह जगह बड़े महत्व की है। यहा दुनिया-भर के खास-खास लोग आये हैं। बुल्गानीन, ख्रुश्चेव, चाऊ एन लाई, मार्शल टीटो आदि-आदि जाने कितने लोगो ने इस झील को देखा है और दग रह गये है!

हमने कहा, 'वास्तव मे यह जगह ही ऐसी है।"

मन तो हटने को कर नही रहा था, फिर भी चलना पडा। नाव मे आकर बैठे और जरा-सा आगे बढे कि बादल घिर आये और बूदे पड़ने लगीं। हवा के चलने से पानी पर असख्य लहरे उठने लगी। सारी झील मानो उद्वेलित हो उठी। वह दृश्य भी देखने योग्य था।

झील पार करके पानी के गलियारे मे आये और उसे लाघकर नाले मे

पहुचे, जहा पानी की कमी के कारण मल्लाह को उतरकर नाव को खीचना पडा।

नाव से उतरे उस समय पौने चार बजे थे। जहा हमारी जीप खडी थी, उस घर पर आये तो मकान-मालकिन हमे अपने घर की ऊपरी मजिल पर ले गई और सबको शर्वत पिलाया।

उससे छुट्टी पाकर बाजार मे घूमते हुए ५।। बजे टौजी पहुचे। एक दिन का समय अधिक लगा, पर यदि उस बस्ती को नही देखा होता तो एक अनोखे अनुभव से वचित रह गये होते।

टौजी पहुचते ही वर्षा शुरू हो गई। इसलिए कहीं नही जा सके। हमारे मेजबान गोपालदासजी हवाई जहाज की टिकटो का पता लगाने गये तो श्री राय स्वय ही आ गये। उन्होने बताया कि सरकारी दो सीटें हमारे लिए मिल गई हैं। श्री राय साहित्य के प्रति बडा प्रेम रखते हैं। देर तक साहित्य तथा भारतीयो की स्थिति के बारे मे चर्चा करते रहे।

अगले दिन सबेरे मदिर के कुमाऊ-वासी पुजारी जलपान के समय अपनी परेशानी सुनाते रहे। वह २०-२५ बरस से वहा रह रहे हैं। कहने लगे, "क्या सुख है यहा रहने मे? घर के लोग कुमाऊ में रहते हैं, पर उन्हें पैसा नही भेज सकते। स्त्री को २०) महीने भेजे जा सकते हैं, पर मेरी स्त्री तो गुजर गई। मा और दो भाई घर पर हैं, लेकिन उन्हें एक पैसे का भी आसरा नही है।" बडे सद्भावी व्यक्ति लगे। उनकी कठिनाई को दूर करने मे हम लोग भला क्या सहायक हो सकते थे, पर शायद अपनी कहकर उनका मन हल्का हो गया।

नाश्ता करके बाजार मे घूमते रहे। कुछ सामान खरीदा, मित्रो से विदा ली और ११ बजे गोपालदासजी ने अपनी जीप से हमें हेहो हवाई अड्डे के लिए विदा किया।

: १४ :

एक रोमांचकारी अनुभव

हवाई अड्डे तक का २६ मील का रास्ता अपने प्राकृतिक सौंदर्य के लिए सदा याद रहेगा। सघन वृक्षो के बीच चढाई-उतराई और नाना प्रकार की दृश्यावली का आनन्द लेते हुए १२ बजे के लगभग हेहो शहर पहुंचे। हवाई अड्डा वहा से तीन मील पर था। शहर मे थोडी देर घूम-घामकर हवाई अड्डे पहुचते ही सबसे पहला काम यह किया कि टिकट खरीदे। फिर सामान तुलवाया। तत्पश्चात निकटवर्ती रेस्ट्रा मे खाना खाने गये। गोपालदासजी ने खाना बनवाकर हमारे साथ रख दिया था। जैसे ही रेस्ट्रा मे घुसे कि उसकी मालकिन ने, जो वर्मी पोशाक मे थी, हिन्दी मे कहा, "आओ, बाबू। क्या लोगे? चाय?" मैंने कहा, "कॉफी है?" बोली, "जीहा, है। आइये, बैठिये।" अन्दर मेज पर बैठते हुए मैंने कहा, "तुम तो बडी अच्छी हिन्दी बोल लेती हो।" अधेड़ उम्र की उस स्त्री के चेहरे पर मुस्कराहट आ गई। बोली, "बाबू, हम हिन्दुस्तानी हैं।" मैंने पूछा, "यहा कब आई?" बोली," पता नही। कहते हैं, दस बरस की उमर में यहा आ गई थी, पर अब तो मुझे यह भी नही मालूम कि हम कहा के रहनेवाले है।"

इस सब बातचीत के दौरान मे उसने चिलमची और साबुन लाकर हमारे हाथ धुलाये, हाथ पोछने को रूमाल दिया, फिर कॉफी बनाकर दी। खाना हमारे साथ था ही। उसे परोसने के लिए उसने रकाबियो दे दी। उसके व्यवहार मे बडी विनम्रता और भद्रता थी। अच्छी तरह से खाना खाया।

हेहो का हवाई अड्डा छोटा-सा है। जरा-सी इमारत मे सारा कारोबार चलता है, पर जहाज के उतरने का मैदान काफी लम्बा-चौडा है। भोजन के उपरात हम लोग इधर-उधर चक्कर लगाते रहे। हमारे अलावा कुछ और भारतीय उस विमान से जा रहे थे। उनमे से एक ने हमें टिकट लेते

देखा था । विस्मय प्रकट करते हुए बोला, "आप बडे सौभाग्यशाली है, जो हाल-के-हाल टिकट मिल गये ! हमने तो तीन सप्ताह पहले कोशिश की थी, तब मिला । उन्हे क्या पता था कि कितना जोर लगने पर हमे वह सुविधा मिली थी ।

हमारे जहाज के आने से पहले मिलटरी का एक छोटा-सा जहाज आया । उसमे से कुछ फौजी अफसर उतरे । कुछ देर रुककर वह जहाज चला गया । हम अपने विमान की प्रतीक्षा कर रहे थे कि अकस्मात सूचना मिली, किसी हवाई अड्डे पर गलती से जहाज के नक्शे से ७६ गज आगे निकल जाने से दुर्घटना हो गई है, जिसमे पाच व्यक्तियो के चोट आई है । अत उन घायलो को जगह देने के लिए पाच मुसाफिरो को छोड देना पडेगा । यह सुनकर बडी चिन्ता हुई । हमने हवाई अड्डे के अधिकारी के पास जाकर कहा, "आज हमारा रगून पहुचना बहुत जरूरी है । कल से वहा अखिल वर्मा हिन्दी साहित्य सम्मेलन का महाधिवेशन है, जिसके लिए हम भारत मे खासतौर पर बुलाया गया है । ट्रेन से हम समय पर पहुच नही सकते । अगर इस हवाई जहाज मे जाना न हुआ तो हमारा वर्मा आना बेकार हो जायगा ।" सयोग मे वह वर्मी अधिकारी अगरेजी अच्छी तरह से जानता था, इसलिए हम उसे अपनी बात भली प्रकार समझा सके । उसने सारी बात सुनकर कहा, "मै वादा तो नही करता, पर आप विश्वास रखे कि मुझसे जो हो सकेगा, जरूर करूगा ।"

भारतीय यात्रियो मे एक सज्जन किसी बैंक के जनरल मैनेजर थे । उन्होने अधिकारी के साथ हुई हमारी बातचीत सुनी । अधिकारी के दूसरी तरफ जाने पर बडी बेबसी की सास लेते हुए बोले, "अच्छी बात है, आप लोग चले जाइये । हमे यह मालूम होता कि जहाज मे जगह नही मिलेगी तो इतनी दूर बेकार क्यो आते ! रेल से मजे-मजे मे चले जाते । बताइये, टिकट देने पर भी इन लोगो का यह हाल है ।"

चिंता के उन क्षणो को जब हम किसी तरह बिताने का प्रयास कर रहे थे तभी सूचना मिली कि जहाज छोटा है, ज्यादा बोझा नही ले जा सकता, इसलिए अगर हम सब जा भी सके तो हमे अपना सामान छोडना पडेगा, जो बाद मे पहुचेगा । इस नई चिंता ने हमे ज्यादा हैरान नही किया, क्योंकि

हमारा ज्यादातर सामान रगून मे था । पूरा-का-पूरा सामान भी वहा छूट जाता तो भी रगून के मित्रो के कारण हमे कोई असुविधा होनेवाली नहीं थी ।

अनिश्चय की वे घडिया याद आती है तो आज भी मन सिहर उठता है। रह-रहकर सोचते थे, यदि समय पर रगून नही पहुच पाये तो सम्मेलन के संचालको की क्या दशा होगी ! प्रधान अतिथियो की आकस्मिक अनुपस्थिति से उन्हे कितनी निराशा होगी ! हम लोगो के बारे मे उनकी क्या धारणा वनेगी ! लोग कहेगे, ये लोग तो सैरसपाटे के लिए आये थे । यात्रियो मे कुछ गोरी चमडी के थे । उनके चेहरो पर तनिक भी परेशानी नही थी । उन्हे सारी स्थिति मालूम थी, पर शायद वे आश्वस्त थे कि और कोई जाय या न जाय, उनका स्थान तो सुरक्षित है ।

२ बजे के लगभग विमान की आवाज सुनाई दी । कुछ ही मिनट मे जहाज वहा आ उतरा । यू० वी० ए० (यूनियन ऑव वर्मा एयरवेज) के उस डकोटा का आकार सचमुच वहुत ही छोटा था । देखते ही आशका हुई कि अधिकारी के आश्वासन के वावजूद शायद ही हमे जगह मिले ।

विमान का दरवाजा खुला । मुसाफिर उतरे । उनमे दुर्घटनाग्रस्त लोग भी थे । लेकिन हमारी खुशी का ठिकाना न रहा, जव हमे मालूम हुआ कि पिछले हवाई अड्डे पर कुछ यात्रियो के न आने से विमान मे इतनी गुजाइश है कि हम सवको जगह मिल जायगी । जान-मे-जान आई । सयोग से सामान भी उसमे पूरा आ गया । सच है, असली मुसीवत आदमी को उतना हैरान नही करती, जितनी कि उसकी आशंका या कल्पना करती है । हम लोगो ने वेवजह अपने मन को इतना परेशान किया ।

आधा घटे वाद विमान ने प्रस्थान किया । हमने सतोष की सास ली । छोटा-सा होने के कारण विमान अधिक ऊचाई पर नही जा सकता था, इसलिए शान राज्य की अपूर्व प्राकृतिक दृश्यावली को वडी अच्छी तरह से देखा जा सकता था । हरे-भरे वनो, गिरि-शृखलाओ और उनकी उपत्यकाओ मे जहा-तहा वहनेवाली नदियो और दूध-से प्रपातो को देखकर व्यतीत की आकुलता मे हमारा मन जरा-सी देर मे मुक्त हो गया । शान

राज्य अपने मानवीय सौंदर्य तथा नैसर्गिक सुषमा के लिए सारे ब्रह्मदेश मे विख्यात है। मानवीय सौंदर्य हम टौंजी मे देख चुके थे और प्राकृतिक सौंदर्य की झाकी भी हमे कुछ हद तक वहा मिल चुकी थी, पर अब प्रकृति का विराट रूप अपनी सम्पूर्ण दिव्यता और भव्यता के साथ हमारी आखो के सामने फैला था। जहा प्रकृति उदार होती है, वहा मानव प्राय गरीबी और गुरबत का शिकार होता है, लेकिन शान राज्य इसका अपवाद है। वहा प्रकृति और मानव का कितना अच्छा मेल हुआ है!

विमान काफी देर तक शान राज्य के ऊपर उडता रहा। मौसम के साफ होने पर भी जब-तब वह हिलकोरे लेता रहा। सोचा, एयर पाकेट होगे। लेकिन जैसे ही हम टाग्यू गिरि-माला पर पहुचे, अचानक बडे जोर से बादल घिरे आये। सूर्य घने मेघो मे ढक गया, चारो ओर अधेरा छा गया। इससे और विमान के नीचे-ऊपर होने से हमे यह समझते देर न लगी कि मौसम बिगड गया है। नीचे के सारे दृश्य अधकार मे खो गये। देखते-देखते बादलो का प्रकोप और बढा और वह वर्षा के रूप मे फूट पडा। हमारा विमान उसके चक्कर मे आ गया। वाइकाउण्ट या जेट या और कोई बडा जहाज होता तो प्रकृति के उस प्रकोप को चुनौती देकर बादलो मे ऊपर चला जाता, लेकिन सीमित शक्तिवाले उस छोटे-से डकोटा की भला कितनी बिसात हो सकती थी! बेबसी से वर्षा के थपेडो की मार खाने लगा। मुसीबत का इतने से ही अन्त न हुआ। बडे-बडे ओले गिरने लगे। विमान के ऊपर तडतड की आवाज सुनकर और आखो के सामने होती ओलो की अनवरत बौछार को देखकर सारे यात्री आतकित हो उठे। सागर की कुपित लहरो पर नौका की जो अवस्था होती है, वैसी ही अवस्था हमारे यान की थी। बिजली इतने जोर से चमकती और कडकती थी, मानो हमारे जहाज पर ही गिर पडेगी। साथ ही अक्सर ऐसा लगता था कि निराधार होकर जहाज नीचे जा रहा है और अब कोई उसे रोक नही सकेगा। पर अपनी पूरी ताकत से वह सभल जाता, ऊपर उठता इसमे कोई सदेह नही कि उसके चालक बडी हिम्मत और कुशलता से उस विपरीत परिस्थिति का सामना कर रहे थे। पर यान की शक्ति तो मर्यादित थी।

हम सबने समझ लिया, आज खैर नहीं है। सकेत मिलने पर हमने पेटी बाध ली थी और सब-के-सब अपनी-अपनी सीटो पर सिमटे बैठे थे। मैं विमान की खिडकी के सहारे की आगे की सीट पर था और विष्णुभाई पीछे की सीट पर थे। मौसम के बिगडते ही विमान का परिचारक वर्मी नौजवान मेरे बराबर की खाली सीट पर आ बैठा। मैंने उससे पूछा, ' क्यो, मौसम कैसा है?" उसने सुस्थिर भाव से कहा, "नॉट सो बैड (कोई खास बुरा नही है।)" पर उसके चेहरे से साफ मालूम होता था कि वह कुछ परेशान है। मैंने फिर पूछा, "क्या यहा अक्सर ऐसा ही मौसम रहता है?" उसने उत्तर दिया, "नही, इस इलाके मे कभी-कभी मौसम बिगड जाता है, पर इन दिनो अक्सर ठीक रहा करता है।"

विष्णुभाई इस बातचीत को सुन रहे थे। मैंने उनकी ओर मुडकर पूछा, "क्यो, विष्णुभाई, कैसा लग रहा है?" मुस्कराते हुए उन्होने कहा, "ठीक ही लग रहा है।"

विमान मे इस समय जैसी निस्तब्धता छाई हुई थी, वह इस बात की द्योतक थी कि सभी यात्री अवसर की गभीरता और परिस्थिति की विषमता को अनुभव कर रहे है। यान के अकस्मात बार-बार नीचे जाने और फिर किसी कदर जोर लगाकर पूरी क्षमता से ऊपर उठने से जो बेचैनी होती थी, उससे कोई भी बरी न था।

निमिष-भर को विचार आया, विमान के टिकट मिलने मे कठिनाई आना, आखिरी समय पर हेहो पर छूट जाने की सभावना प्रस्तुत होना, क्या इनके पीछे कोई ईश्वरीय सकेत था? यदि कुछ हो गया तो? रगून मे और घर पर सब राह देखते रहेगे। पर .पर

विचार जिस तेजी से आया, उसी तेजी से चला गया। मौत की कल्पना उस प्रसंग मे अस्वाभाविक थी, यह तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन निस्सार थी, क्योकि यदि वह आती ही तो उससे बचने का उपाय क्या था!

जीवन मे मानव की बराबर परीक्षा होती रहती है। शायद प्रकृति ने उस अवसर को हमारी परीक्षा के लिए चुना और आधा घटे की कडी कसौटी उसने कर डाली।

और फिर ? फिर अपना जौहर दिखाकर उसने बिजली, वर्षा, ओले, सबको समेट लिया। इतना ही नहीं, मेघों को भी विदा कर दिया। अब आकाश निर्मल था और उसके बीच सूरज अपनी पूरी तेजी से चमक रहा था। हमने नीचे देखा तो पता चला कि पहाड़ों का सिलसिला समाप्त हो गया है और अब हम मैदान पर उड़ रहे हैं।

फिर तो मौसम बराबर साफ रहा। ४-१७ पर रंगून के हवाई हड्डे पर उतरे तो ऐसा लगा, मानो खोये प्राण लौट आये। बैंक के मैनेजर का और यात्रियों की तरह बुरा हाल हो गया था। उतरने पर उसने इधर-उधर जाकर जहाज को देखा, फिर हमारे पास आकर कहने लगा, "भगवान की बड़ी कृपा हुई, जो बच गये, नहीं तो कसर क्या रही थी! देखिये, ओलों की चोट से जहाज के पीछे के हिस्से का क्या हाल हो गया है।"

: १५ :

हिन्दी साहित्य सम्मेलन का वार्षिकोत्सव

रगून के हमारे मित्र व्यग्रता से हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। हम उनसे कहकर चले थे कि २३ तारीख को रेल से लौट आयगे। लेकिन जब वह गाडी आ गई और हम नही पहुचे तो उन्हे चिन्ता हुई। चौबीस घटे मे बस एक ही गाड़ी थी। अगले दिन उस गाडी से पहुचने का मतलब होता था पहले दिन की सम्मेलन की कार्रवाही के समाप्त होने के बाद आना। हमने टौंजी से तार दिलवा दिया था, पर वह समय पर नही पहुचा। जो हो, हमारे रगून पहुचने पर मित्रो की परेशानी दूर हुई और जब हमने बताया कि हम किस संकट से बचकर आये हैं तो पहले तो वे बहुत चिंतित हुए, बाद मे बडे प्रसन्न हुए। हमने हँसकर कहा, "अगर हमें कुछ हो गया होता तो उसकी जिम्मेदारी आप पर आती, क्योकि आपने हमे बुलाया था।"

वे बोले, "कुछ हो कैसे जाता! आखिर हमारी प्रार्थना मे भी तो कुछ ताकत है।"

पाठक जानते है कि संसार के अनेक देशो मे हिन्दी तथा उसके साहित्य के अध्ययन और प्रचार के लिए बडे व्यवस्थित रूप से कार्य हो रहा है। रूस ने तो न केवल हिन्दी को, अपितु अन्य भारतीय भाषाओ को भी प्रोत्साहन दिया है और हिन्दी के साथ-साथ कई भारतीय भाषाओ में पुस्तको की छपाई की व्यवस्था की है। कहने की आवश्यकता नही कि उस देश मे भारतीयो की सख्या बहुत ही थोडी है।

लेकिन दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशो मे तो भारतीय लाखो की सख्या मे स्थायी रूप मे बसते हैं। अकेले ब्रह्मदेश मे उनकी आबादी छ. लाख के लगभग है। बहुत-से भारतीय तो वहा पीढियो से रह रहे हैं और कुछ ने वहा अपना कारोबार ही नही बढ़ाया, बल्कि विपुल सम्पत्ति भी अर्जित कर ली है। कई एक भारतीय वही के नागरिक हो गये हैं। इतना होने पर भी हिन्दी को प्रोत्साहन देने का कार्य इन देशों मे बहुत देर से आरम्भ

हुआ । हिन्दू सस्कृति और हिन्दी के अनन्य प्रेमी प० हरिवदन शर्मा ने इस दिशा मे विशेष उद्योग किया । उन्होने 'ब्रह्मदेशीय ब्राह्मण महासभा' की स्थापना की और उसकी शाखाए विभिन्न भागो मे खुल जाने पर अपना ध्यान हिन्दी के सम्वर्द्धन मे लगाया । सन् १६२० से पहले ही वहा तमिल, तेलगू, उर्दू आदि भारतीय भाषाए अपनी जडें जमा चुकी थी । उनकी शिक्षा के लिए स्थान-स्थान पर स्कूल खुल गये थे और उन्हे सरकारी मान्यता मिल गई थी । लेकिन हिन्दी को सर्वथा उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था और उसे दरवानो की भाषा समझा जाता था । निजी तौर पर 'आर्य समाज' द्वारा सचालित पाठशालाओ मे हिन्दी की पढाई की व्यवस्था थी । सन् १६१६ मे माडले के डी० ए० वी० स्कूल मे और सन् १६१८ मे रगून के श्री बैजनाथसिह स्कूल मे हिन्दी की शिक्षा दी जाने लगी थी, फिर भी यह प्रयास सागर मे बूद के समान था ।

इस अवस्था से व्यथित होकर शर्माजी ने हिन्दी को उसका उचित दर्जा दिलाने के लिए दृढ निश्चय किया और विधिवत कार्य करने के लिए सन् १६२३ मे 'अखिल बर्मा हिन्दी साहित्य सम्मेलन ' की नीव डाली । प्रारम्भिक दिनो मे यह सम्मेलन 'ब्राह्मण-महासभा' का अग बना रहा, लेकिन बाद मे उसे स्वतत्र रूप से विकसित होने के लिए पृथक कर दिया गया । सम्मेलन को एक शक्तिशाली सस्था का रूप देने के लिए समस्त हिन्दी-भाषी सस्थाओ ने पूरी-पूरी सहायता की । इतना ही नही, भारतीय नेताओ और कौंसिल के सदस्यो ने भी हिन्दी प्रचार के लिए किये गए प्रयत्नो का समर्थन किया । परिणाम यह हुआ कि सन् १६२५-२६ तक अनेक पाठशालाओ मे हिन्दी को स्थान मिल गया और शिक्षा-विभाग ने उनको मान्यता देकर हिन्दी स्कूलो के निरीक्षण का कार्य एक डिप्टी इस्पेक्टर को सौंप दिया । सम्मेलन के उद्योग से पहले सातवीं और फिर मैट्रिक तक हिन्दी को एक वर्नाक्यूलर भाषा का स्थान मिल गया ।

हिन्दी के प्रचार का यह आरम्भिक काल था । उसका स्तर बहुत ही नीचा था । इसकी कल्पना मिडिल स्कूल के एक सरकारी प्रश्नपत्र से की जा सकती है । सन् १६२५ मे सातवी (मिडिल) के हिन्दी पत्र मे इस पद्य का अनुवाद सरल हिन्दी मे कराया गया था

"हुआ सवेरा लोग जगे सब,
पंडितजी आते होगे अब ।"

धीरे-धीरे हिन्दी का कार्य सगठित रूप से होने लगा । उसके स्कूलो की संख्या ३६० हो गई, उसके लिए पाठ्य-पुस्तक-निर्द्धारण-समिति बनी और उसकी ट्रेनिंग के लिए स्कूलो की व्यवस्था हुई । प्रयाग के हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओ के केन्द्र भी स्थापित किये गए ।

सन् १९३९-४० के लगभग सम्मेलन का स्वतत्र सगठन और अस्तित्व हो गया । लेकिन द्वितीय महायुद्ध के छिड जाने पर उसकी प्रगति रुक गई । युद्धोपरात सन् १९५० मे उसे पुन बल मिला । शर्माजी ने बिखरी शक्तियो को सगठित करके सम्मेलन मे नये प्राण फूके । हिन्दी के इस महान अनुरागी के बारे मे ठीक ही कहा गया है, "बर्मा के हिन्दी-उपवन के आप वह माली हैं, जिन्होने इसके पुष्प-वृक्षो का बीजारोपण किया, उन्हें श्रम-कणो से सीचा और उनके सौरभ से सम्पूर्ण दक्षिण-पूर्वी एशिया को सुरभित देखने की आकाक्षा रक्खी ।"

सन् १९५० से सम्मेलन की प्रवृत्तिया व्यापक हो गई । समस्त हिन्दी पाठशालाओ के हिन्दी शिक्षा के स्तर को एक करना, पाठ्य-पुस्तको का चुनाव करना, भारत से उन्हे मगाना, आकाशवाणी से हिन्दी के नाटको, सास्कृतिक कार्यक्रमो आदि की व्यवस्था कराना, साहित्य-गोष्ठियो के आयोजन और सम्मेलन के महाधिवेशन करना, आदि-आदि कार्य सम्मेलन अब बडी तत्परता से कर रहा है । जिन भारतीय पाठशालाओ मे हिन्दी की पढाई का प्रबध नही है, वहा बच्चो को हिन्दी पढाने का काम बडी लगन से किया जाता है ।

सम्मेलन रात्रि-पाठशाला के रूप मे एक हिन्दी विद्यापीठ भी चला रहा है, जिसमे हिन्दी साहित्य सम्मेलन की प्रथमा, मध्यमा तथा उत्तमा की पढाई एव परीक्षाओ की व्यवस्था है । रगून के अलावा जियावडी का केन्द्र भी महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है । वर्धा की राष्ट्र भाषा प्रचार समिति की परीक्षाओ का भी विधिवत रूप से संचालन हो रहा है । दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की परीक्षाओ मे भी बहुत-से लोग बैठते हैं ।

सम्मेलन का एक बडा ही महत्वपूर्ण कार्य मच की स्थापना करना

है। सीमित साधन होते हुए भी उस मच पर कई नाटक इतने उत्तम ढग से खेले गये हैं कि दर्शको ने उनकी सराहना की है। मच की सज्जा, पात्रो की पोशाक और पर्दे आदि की व्यवस्था नवीनतम शैली के आधार पर की जाती है।

सम्मेलन के कार्य मे वैसे तो बहुत-से हिन्दी-प्रेमियो का सक्रिय सहयोग है, लेकिन वर्तमान सचालको में डा० ओमप्रकाश तथा श्री सत्यनारायण गोयनका को उसके स्तभ कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। डा० ओमप्रकाश का तो समूचा परिवार ही इस काम मे लगा है। उनकी पत्नी रगून मे और बहन माडले मे हिन्दी पढाने का काम बडे सेवा-भाव, लगन और निष्ठा से करती हैं। उनके अनुज श्री धर्मवीर हिन्दी नाटको मे सुन्दर अभिनय करते हैं। श्री सत्यनारायण गोयनका सम्पन्न उद्योगपति हैं, पर वह मूलत साहित्यिक हैं, कवि हैं। उनकी 'इरावदी' तथा अन्य कविताए सुननेवालो को भाव-विभोर कर देती हैं। नाटको मे तो उनकी असामान्य रुचि है। वह स्वय उच्चकोटि के अभिनेता हैं। बधुवर श्यामाचरण मिश्र, सम्मेलन के अध्यक्ष श्री जोशीजी तथा मत्री श्री श्यामलाल 'भारती', श्री चन्द्रमौलि शुक्ल प्रभृति के नाम भी उल्लेखयोग्य है। हमारे तत्कालीन राजदूत श्री लालजी मेहरोत्रा की सेवाए भी अभिनन्दनीय हैं। हिन्दी की सभी प्रवृत्तियो को उनका सतत सहयोग मिलता रहा है।

सम्मेलन का अब आठवा वार्षिकोत्सव हो रहा था। उसका आयोजन गाधी मेमोरियल हॉल मे किया गया था। बडे सुरुचिपूर्ण ढग से हॉल को सजाया गया था। सध्या को ४ बजे से अधिवेशन आरभ हुआ। सर्वप्रथम दक्षिण की एक बहन ने हिन्दी मे बडे मधुर कण्ठ से गणेश-वन्दना की। अनन्तर विष्णुभाई ने उद्‌घाटन किया। अपने भाषण मे उन्होंने बताया कि विचारो का बडा महत्व है और जिन-जिन देशो मे क्रातिया हुई है, उनके पीछे विचारको के साहित्य का प्रमुख हाथ रहा है। उन्होंने इस बात पर विशेष जोर दिया कि बर्मा मे रहनेवाले भारतीयो को ब्रह्मदेश की भूमि और उसपर बसनेवाले जन के साथ निकट-सम्पर्क स्थापित करना चाहिए। उन्होंने इस बात पर खेद भी प्रकट किया कि बर्मा और भारत के बीच साहित्यिक आदान-प्रदान नही के बराबर है। अत ने उन्होंने

अपील की कि इस दिशा मे शीघ्र ही कुछ प्रयास होना चाहिए ।

विष्णुभाई के पश्चात स्वागताध्यक्ष श्री सत्यनारायण गोयनका का भाषण हुआ । उन्होने उपस्थित व्यक्तियो का स्वागत किया, सम्मेलन के कार्य की भावी योजनाए बताई और कठिनाइयो की ओर सकेत किया । उन्होने कहा, "सम्मेलन अधिक उत्कटता से भविष्य मे काम करने को कटिबद्ध है और मुझे आशा है कि उसे अपनी योजनाओ को कार्यान्वित करने मे अवश्य सफलता मिलेगी ।"

तत्पश्चात हमारे राजदूत श्री लालजी मेहरोत्रा बोले । अपने ओजस्वी भाषण मे उन्होने एक बडे ही महत्वपूर्ण विषय की ओर सम्मेलन के अधिकारियो का ध्यान आकर्षित किया । उन्होने कहा कि हिन्दी मे बर्मा का विस्तृत इतिहास तैयार होना चाहिए । साहित्य की उपादेयता को स्वीकार करते हुए उन्होने कहा कि किसी भी देश के अभ्युदय मे साहित्य का विशेष स्थान रहता है, लेकिन साथ ही उन्होने यह चेतावनी भी दी कि अपनी भाषा और साहित्य का अन्य देशो मे प्रचार करने मे इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि यह कार्य जोर-जबरदस्ती से नही, उन देशो के निवासियो के प्रेम और सद्भावना के साथ होना चाहिए, उनके स्वाभिमान को किसी प्रकार की चोट नही लगनी चाहिए ।

श्री चन्द्रमौलि शुक्ल ने अपनी वार्षिक रिपोर्ट मे और डा० ओमप्रकाश ने अपने अध्यक्षीय भाषण मे सम्मेलन के कार्य का विशद विवरण प्रस्तुत किया । डा० ओमप्रकाश ने बताया कि सम्मेलन ने अबतक किन-किन परिस्थितियो मे काम किया है । उन्होने यह भी बताया कि कार्य के विस्तार के लिए क्या-क्या योजनाए आगे कार्यान्वित करनी है ।

रात को 'सबकुछ उधार का' नाटक खेला गया । दर्शको मे बर्मी सरकार के मत्री श्री रशीद तथा अनेक बर्मी अधिकारी एव नागरिक उपस्थित थे । नाटक सफल रहा ।

अगले दिन के अधिवेशन मे कुछ प्रस्ताव लिये गए । दिवगत अधिकारियो से सबधित शोक-प्रस्ताव के अतिरिक्त एक प्रस्ताव मे बर्मी-साहित्य के हिन्दी मे और हिन्दी-साहित्य के बर्मी मे अनुवाद की बात कही गई । दूसरे मे बर्मा के आकाशवाणी के केन्द्र मे हिन्दी का एक

विभाग रखने का अनुरोध किया गया।

इसके उपरान्त विभिन्न परीक्षा मे उतीर्ण छात्र-छात्राओ को इन पक्तियो के लेखक ने प्रमाण-पत्र वितरित किये। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति तथा दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा, तीनो की परीक्षाओ के छात्र-छात्राए थे। अपने दीक्षात भाषण मे मैंने शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए बताया कि पुस्तकीय ज्ञान के साथ-साथ जीवन के विश्वविद्यालय की पढाई भी आवश्यक है। जीवन का वास्तविक निर्माण उसी पढाई से होता है। शिक्षा का मुख्य प्रयोजन ऐसे सस्कार उत्पन्न करना है, जो मनुष्य मनुष्य के बीच की दूरी को मिटाकर एक-दूसरे के निकट लावे।

दीक्षात-भाषण के उपरान्त श्री शीतलप्रसाद व्यास का रामायण पर प्रवचन हुआ। रात को विष्णुभाई का मोनोलोग 'नही, नही, नही' श्री सत्यनारायणजी ने प्रस्तुत किया। अभिनय इतना प्रभावशाली था कि एक पात्र के द्वारा होने पर भी दर्शक एक क्षण के लिए भी नही ऊबे, मत्रमुग्ध होकर अन्ततक बैठे रहे।

अधिवेशन समाप्त हुआ। दोनो दिन उपस्थिति अच्छी रही। सम्मेलन के अधिकारियो तथा भारतीय नागरिको का उत्साह देखकर लगा, हिन्दी के लिए वहा बडी सभावनाए है।

: १६ :

दक्षिणी वर्मा में

ब्रह्मदेश के दक्षिणी भाग मे मोल्मीन नाम का बडा ही महत्वपूर्ण नगर है। उस देश की विशाल नदी सालविन के तट पर पर्वतो के बीच बसे होने के कारण एक ओर वह प्राकृतिक सौदर्य से परिपूर्ण है तो दूसरी ओर प्रमुख बन्दरगाह होने के कारण चावल और टीक के व्यापार का विशेष केन्द्र है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिकोत्सव के समाप्त होने पर हमने विमान द्वारा वहा जाने का कार्यक्रम बनाया। हमारे पास जितना समय था, उसमे इतना ही सभव था कि हम सवेरे जाय और शाम को लौट आवे।

पूछताछ करने पर पता चला कि वहा आने-जानेवालो की भीड रहती है। इसलिए जहाज के टिकट शायद ही मिल सके। यू०बी०ए० के आफिस को फोन किया तो मालूम [1] आ कि कई दिन तक जहाज मे सीट नही मिलेगी। पेशगी बुकिंग हो चुका है। हमने सोचा, फोन से काम नही बनेगा। जाकर बात करनी चाहिए। विष्णुभाई और मैं, दोनो गये। सबधित व्यक्ति से बात की तो उन्होने चार्ट देखकर कह दिया कि कोई जगह नही है। हमने ऊपर के अधिकारी के पास जाकर कहा कि हम भारत से आये है और हमारे पास समय की बडी कमी है। अगर अगले दिन मोल्मीन नही जा सके तो फिर जाना नही होगा। उन्होने हमारी बात बडी गभीरता से सुनी और हमारे आग्रह को देखकर आश्वासन दिया कि वह हमे दो टिकट दिलवा देगे। हम सबेरे समय पर हवाई अड्डे पहुच जाय। जब हमने वापसी के लिए भी टिकट की व्यवस्था करा देने की बात कही तो वह बोले, "यह बडा मुश्किल काम है। मैं वादा नही कर सकता। कोशिश करूगा। तार दे दूगा, पर जगह न हुई तो वे लोग क्या करेंगे? पहले से ही सारी सीटें भर जाती है।"

हमारा मन द्विविधा मे पडा। फिर सोचा, जो होगा, देखा जायगा।

चलना चाहिए । अत हमने जाने का टिकट मागा तो उन्होंने बुकिंग करनेवाली महिला को बुलाकर कह दिया । महिला ने हमें एक चिट दे दी और कहा कि टिकट हवाई अड्डे पर आफिस से मिल जायगे ।

अगले दिन समय पर, बल्कि कुछ पहले ही, हवाई अड्डे पहुच गये । चिट दिखाने पर जाने के लिए टिकट और लौटने के लिए वाउचर मिल गया, पर शाम को आनेवाले जहाज मे बुकिंग नही हुआ ।

टिकट लेकर हम विमान मे सवार हो गये । जब सब मुसाफिर आ गये तो परिचारिका ने उनकी गिनती की । दो ज्यादा निकले । उसने अपनी सूची के अनुसार नाम बोलकर हाज़िरी ली । विष्णुभाई का और मेरा नाम सूची मे नही था । परिचारिका बोली, "आप दोनो को उतरना पडेगा ।" मैंने कहा, "क्यो उतरना पडेगा ? हमने टिकट लिया है और विमान मे प्रवेश के लिए हमे १८ और १९ नम्बर के बोर्डिंग पास दिये गए हैं । उन्हें देकर ही तो हम अदर आये है ।" इतने मे वह आदमी आ गया, जिसने हमे टिकट दिये थे । बोला, "आप लोगो के टिकट कहा हैं ?" हमने कहा, "आपने ही तो टिकट लेकर बोर्डिंग पास दिये थे ।" सयोग से उसी समय वह आदमी आ पहुचा, जिसने विमान मे चढने से पहले हमसे बोर्डिंग पास लिये थे । हमारे यह बताने पर कि उस आदमी ने हमसे पास लिये थे, वे लोग आपस मे सलाह करने लगे । अत मे उन्होंने एक आदमी आफिस को दौडाया । सारे मुसाफिर हैरान हो रहे थे । हम लोगो की झुंझलाहट का तो कहना ही क्या था ! थोडी देर मे आदमी बुकिंग आफिस से लौटा तो उसके हाथ मे मुसाफिरो की पूरी सूची थी, जिसमे हम दोनो के नाम भी थे । असल मे हुआ यह था कि बुकिंग आफिसवालो ने हमे टिकट तो दे दिये थे, लेकिन विमान की परिचारिका की सूची मे हमारे नाम शामिल कराने का उन्हें ध्यान नही रहा था । परिचारिका तथा दूसरे कर्मचारियो को जब यह मालूम हुआ कि भूल उनके आफिस की थी तो खेद प्रकट करने लगे । इस सारे झझट मे विमान के चलने मे कोई २५ मिनट की देर हो गई, हमे मानसिक उत्तेजना हुई सो अलग ।

विमान के उडने के बाद पन्द्रह मिनट तक नीचे भूमि दिखाई देती रही, तत्पश्चात ब्रह्मदेश की महान नदी इरावदी के बडे ही सुन्दर रूप

मे दर्शन हुए। शान्त भाव से वह मर्तबान की खाडी मे अपनेको विलय कर रही थी। कलकत्ते से रगून आते समय गगा का समर्पण देखा था। यहा इरावदी और सागर के मिलन को देखकर उसकी स्मृति सजीव हो गई। नदियो के उद्‌गम जितने छोटे और अनाकर्षक होते हैं, उनके समर्पण-स्थल उतने ही विशाल और दर्शनीय होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है, वे अपने जीवन को पूरी सार्थकता से जीकर बहुत ही निश्चिंत तथा उन्मुक्त भाव से अपनेको सिंधु के हाथो अर्पित करती हैं। उनकी फैली हुई अनत भुजाएं, उनकी शात मुद्रा, गभीर गति आदि को देखकर सहज ही श्रद्धा से सिर झुक जाता है।

कोई भी सागर हो, विमान से उसकी जलराशि प्राय एक-सी ही दिखाई देती है। बीच-बीच मे छोटे-छोटे द्वीप आ जाते हैं। मर्तबान की खाडी भी उसका अपवाद न थी। दूसरे सागरो की तरह उसका भी जल नीला था और छोटी-छोटी लहरे उसपर अठखेलिया कर रही थी। कुछ जलपोत कही-कही दीख पडते थे। उडते-उडते अचानक खाडी का किनारा आ गया और फिर देखते-देखते विमान सपाटे-से नीचे उतर गया। घडी मे उस समय पौने दस बजे थे, अर्थात पौन घटे मे हम वहा पहुच गये।

मोलमीन का छोटा-सा हवाई अड्डा पहाडो की तलहटी मे है। हेहो जैसा समझिये। पर्वतो की हरियाली उसके रूप को बडा ही लुभावना बना देती है।

रगून मे जिस अधिकारी ने हमारी टिकट की व्यवस्था कराई थी, उसने कहा था कि मोलमीन पर उतरते ही शाम को वापसी की सीट पक्की करा लीजिये। विमान से उतरते ही हमने वहां के अधिकारी की खोज की। अचानक हिन्दी जाननेवाला एक युवक मिल गया। उससे हमने शाम के जहाज से लौटने की बात कही तो वह बोला, "टिकट का इतजाम यहा से नहीं, शहर से होगा।" हमने कहा, "हमने तो यही के लिए कहा गया था।" नौजवान मुस्करा उठा। बोला, "परवा नही, जाने सकेगा।" उससे बात होने लगी। पता चला कि वह जेरबादी था यानी उसके बापू मुसलमान और मा बर्मी थी। पिता लाहौर के थे, लेकिन

अव तो वह सालो से ब्रह्मदेश मे रह रहा था । वडा हँसमुख था । उसके आश्वासन पर कि शाम के जहाज मे हमे टिकटे जरूर मिल जायगी और हम लोग आराम से जा सकेंगे, हम बेफिक्री से इधर-उधर घूमने लगे । हवाई अड्डे को देखा, विमान के और पर्वतो के चित्र लिये, रेस्ट्रा मे जाकर जलपान किया । इतने मे हवाई अड्डे की वस सामान और यात्रियो को लेकर सडक पर आ गई । हम भी उसमे जा बैठे । हमारे बैठते ही दो वर्मी नौजवान आये और अगरेजी मे वोले, "आपके पासपोर्ट वगैरा कहा हैं ?" किसी भी देश मे प्रवेश करते समय पासपोर्ट आदि देखे जाते हैं । अदर पहुच जाने पर देश के किसी भी भाग मे घूमिए, पासपोर्ट या दूसरे कागजो की आमतौर पर जरूरत नही पडती । लेकिन फिर भी कोई आकस्मिक परिस्थिति पैदा हो जाय, इसलिए पासपोर्ट तथा दूसरे कागजो को साथ रखना चाहिए, यह मैंने यूरोप की यात्रा मे अनुभव कर लिया था । इसलिए वर्मा मे घूमते हुए हम अपनी इन चीजो को साथ रखते थे । उन युवको के माग करने पर विष्णुभाई ने अपने झोले मे से पासपोर्ट आदि निकालकर उनके हाथ मे दे दिये । उन्होने पासपोर्ट खोलकर हमारी तस्वीर का हमारी शक्ल से मिलान किया, वीसा देखा, लेकिन ज्योही उन्हें पता चला कि हम लेखक और पत्रकार हैं, उन्होंने फौरन हमारे पासपोर्ट लौटा दिये । वोले, "माफ कीजिये, हमने आपकी वातचीत में विघ्न डाला ।" हम समझ गये कि वे खुफिया महकमे के लोग थे । सभवत मुझे हवाई अड्डे और जहाज के चित्र लेते देखकर उन्हें कुछ सन्देह हुआ होगा ।

हवाई अड्डे से शहर पाचेक मील था । रास्ता वडा रमणीक था, लेकिन एक जगह पुल की मरम्मत होने तथा सडक के ठीक किये जाने से हमारी वस को कच्चे रास्ते पर चलना पडा, जिससे धूल के बादल चारो ओर छा गये । एयर टर्मीनल पर जाकर हमने सवसे पहले टिकट का ठीक कराया । सचमुच कोई कठिनाई नही हुई । वाद मे श्री वनवारीलाल वागला को फोन किया, जिनके लिए रगून से हमे एक पत्र दिया गया था । बनवारीलालजी कही गये हुए थे । अत टर्मीनल के वडे बावू ने, जो वहुत ही नेक आदमी था, हमारे लिए एक तागा करके हमे वनवारी-

लालजी के कारखाने भिजवा दिया । जगह बहुत दूर नही थी । वहा पहुचने पर मुनीम मिले, जिन्होने हमे वहा ठहराने मे आनाकानी की और तागेवाले को समझाकर हमे वनवारीलालजी के घर की ओर रवाना कर दिया । साथ मे अपना आदमी भेज दिया । रास्ते मे वनवारीलालजी मिल गये । उन्होने अपने यहा ठहरने की व्यवस्था की । फिर हम लोग उनकी कार से शहर मे घूमने निकले । एक आदमी उन्होने साथ कर दिया ।

सबसे पहले हमारा साथी पहाड़ी पर बने पगोडा को दिखाने ले गया, जिसका नाम था 'चाई शान लान', अर्थात्—'शान लोग वहा से चले गये ।' उसने बताया कि इस पगोडा के निर्माण और नामकरण के पीछे एक कहानी है । एक बार शान स्टेट और वर्मी स्टेट के लोगो के बीच झगडा हो गया कि दोनो मे से कौन वहा रहे । कोई भी वहा से हटना नही चाहता था । अन्त मे तय हुआ कि सालविन नदी के दोनो ओर वे अपना-अपना पगोडा एक ही दिन वनाना शुरू करे । जिसका पगोडा पहले तैयार हो जायगा, वही रहेगा । दोनो ने काम शुरू किया । शानवालो ने पक्का पगोडा वनाना आरभ किया, लेकिन वर्मी लोगो ने चाल चली । उन्होने वासो का पगोडा वनाकर उसपर कागज चढा दिया । उनका पगोडा पहले तैयार हो गया । वे जीत गये । शानो को हट जाना पडा । वर्तमान पगोडा ३२१ फुट की ऊचाई पर है । वर्मियो द्वारा निर्मित पगोडा सालविन के पश्चिमी तट पर है, और 'मर्तवान फया' कहलाता है । समुद्र वहा से कोई ४० मील है, जहा सालविन उसमे गिरती है । ऊचाई पर से नगर का दृश्य बडा सुहावना लगता है । वस्तुत मोलमीन एक द्वीप है । एक ओर से सालविन और दूसरी ओर से विलूजुन नदी मिलकर उसे चारो ओर से घेर लेती हैं । सालविन की विशेषता यह है कि वह नदी नही, सागर-जैसी लगती है । विलूजुन वर्मा की अन्य नदियो के विपरीत, दक्षिण से उत्तर को वहती है ।

समूची नगरी सात मील के घेरे मे है । वस्ती का बहुत-सा भाग सालविन के किनारे पर वसा है । एक लाख की आवादी है, जिसमे १०-१५ हजार भारतीय है । उनमें अधिकाश व्यापारी और नौकरपेशा है ।

वहुत-से भारतीय तो पीढियो से वहा रह रहे है । शहर मे मुख्य रूप मे चावल और लकडी का धधा होता है । चावल वही पैदा होता है और लकडी सालविन मे वहकर ऊपर से आती है । वडे-वडे कारखानो मे हाथी काम करते हैं । लकडी के लम्वे-चौडे तख्तो को वडी मुस्तैदी से वे ढोते हैं । वनवारीलालजी के कारखाने मे हमने हाथियो को काम करते देखा । भारी-से-भारी लकडी को सूड मे दवाकर वे ज़रा-सी देर में यहा-से-वहा पहुचा देते है ।

नदी के किनारे हिन्दुओ का एक मदिर है । उसे देखने गये, पर उसमे न कला थी, न कारीगरी । फिर उस स्थान पर गये, जहा से सारे शहर को पानी मिलता है । हमे यह जानकर वडा आश्चर्य हुआ कि चारो ओर से पानी से घिरे होने पर भी वहा पानी की वडी तगी है । 'पानी मे मीन पियासी' की कहावत चरितार्थ होती है ।

वाटरवर्क्स देखने के वाद हमने महामुनि फया (पगोडा) देखा । वडा ही भव्य मदिर है । विशाल होने के साथ-साथ वहुत ही कलापूर्ण है । उसमे वुद्ध तथा उनके शिष्यो की पचास-साठ मनोज्ञ मूर्त्तिया हैं ।

वनवारीलालजी के यहा भोजन करके फिर घूमने निकले । व्रह्म-देश के फलो मे मैंगोस्टीन का प्रमुख स्थान है । वह गोल गेद-जैसा होता है । उसके अदर छोटी-छोटी सफेद फार्कें रहती हैं । गूदा वहुत थोडा निकलता है, लेकिन खाने मे वह वहुत स्वादिष्ट होता है । मोलमीन से कुछ दूर जाकर हम लोगो ने एक वगीचे मे मैंगोस्टीन के पेड देखे, जिन-पर फल लदे थे । आमदनी का वह अच्छा साधन है ।

वगीचा देखकर शहर मे घूमे । है तो छोटा-सा नगर, पर वडा सुन्दर है । तवाई जेटी देखी, जहा पिनाग से आकर जहाज रुकते हैं । कई छोटे-वडे जहाज उस समय भी वहा खडे थे । मोलमीन की वनावट और वसा-वट किसी भी पहाडी नगर की भाति है । एक मील तक शहर नदी के किनारे-किनारे चला गया है । नदी मे नावे और जलपोत चलते हैं । वहुत-सा काम नावो द्वारा होता है ।

वाजार काफी वडा है । दूकानो पर सव प्रकार का सामान मिल जाता है । लकडी की कलापूर्ण वस्तुए तैयार होती हैं, लेकिन महगी मिलती हैं ।

लौटकर बनवारीलालजी से चर्चा होती रही । उन्होने बताया कि किस प्रकार वहा के जगलो को साफ करके घर बनाये गए और बस्ती बसाई गई । उनका घर काफी वडा था, पर लकडी का था । मैंने कहा, "ऐसे कमजोर घरो मे कोई भी सहज ही अदर आ सकता है ।" वह बोले, "जीहा, आ तो सकता है, पर आता नही है । यहा के लोग आमतौर पर ईमानदार हे । आप देहातो मे जाओगे तो देखोगे कि लोग लकडी और बास के घर बनाते है और ताला नही लगाते । यहा चोरिया बहुत कम होती है ।"

शहर देख लेने के बाद एयर टर्मीनल के दफ्तर को फोन किया तो मालूम हुआ कि दो बजे जो विमान आनेवाला था, वह तीन बजे के लग-भग आयगा । आराम से हवाई अड्डे पहुचे । बनवारीलालजी तथा उनके एक कर्मचारी छोडने आये । मौसम बहुत साफ और सुहावना था । फलो की दूकान से मैंगोस्टीन लेकर खाते रहे और विमान की प्रतीक्षा करते रहे । जहाज ३-१५ पर आया और ३-४५ पर रवाना हुआ । दिन-भर के थके थे और रास्ता देखा हुआ था । विमान के उड़ने पर झपकी आ गई । आख खुली तो रगून पर जहाज उतर रहा था ।

: १७ :

मध्य बर्मा की भारतीय बस्ती

मम्मेलन के वार्षिकोत्सव पर वर्मा के कई भागो के हिन्दी-सेवी कार्य-कर्ता रगून मे इकट्ठे हुए थे। उनमे मध्य वर्मा के टाग जिले मे अवस्थित जियावडी नामक स्थान के भी कुछ व्यक्ति थे। उन्होंने आग्रह किया था कि हम उनके यहा अवश्य आवें। जियावडी के वारे मे हम पहले ही सुन चुके थे कि वह भारतीयो की वस्ती है। अत यह देखने की हमारे मन मे उत्सुकता थी कि पराये देश मे किस प्रकार भारतीय नगर का निर्माण हुआ, वहा के निवासी किस तरह रहते हैं और उनके जीवन मे अपने देश से क्या-क्या भिन्नताए एव विशेषताए हैं। वाद मे वे लोग फिर रगून मे आकर मिले और अपने आग्रह को दोहराया। हमने उनका निमत्रण स्वीकार कर लिया और निश्चित तिथि को शाम के ३ वजे की ट्रेन से रवाना हुए। जियावडी रगून से उत्तर दिशा मे १४५ मील की दूरी पर है। छोटा स्टेशन होने के कारण सव गाडिया वहा नही रुकती। जिस गाडी से हम चले, वह मेल थी, जो जियावडी पर नही रुकती थी। हमने एक स्टेशन पहले अर्थात प्यू जक्शन का टिकट लिया। वही जियावडी के कुछ लोगो के मिलने का निश्चय हुआ था।

रास्ते मे कोई खास आकर्पण नही दिखाई दिया। लेकिन सयोग से हमारी वरावर की सीट पर एक भारतीय सज्जन वैठे थे। परिचय होने के उपरान्त वह हमे वताने लगे कि उस देश मे हिन्दुस्तानियो की दशा कैसी है। बोले, "अपने घर से इतनी दूर आते है, वसते हैं, कमाई करते है, लेकिन यहा की जमीन के साथ उनका नाता नही जुडता। यही कारण है कि लाखो हिन्दुस्तानियो मे कुछको छोडकर वाकी सालो से रहते हुए भी यहा के निवासियो के साथ घुलमिल नही पाये। जाति-पाति के सस्कारो ने और भी गजव ढाया है। ज्यादातर भारतीय यहा के लोगो को एक तरह से अछूत-जैसा मानकर खान-पान मे उनसे परहेज करते हैं।" यह

सब वह एक सास मे कह गये। फिर उन्होने ऐसे किस्से सुनाये कि उन्हे सुनकर हमारे रोगटे खडे हो गये।

उन्होने कहा, "यहा के एक शहर मे एक पैसेवाले हिन्दू रहते थे। उन्होने एक वर्मी लडकी से शादी की। उससे कई वच्चे पैदा हुए। तीस साल उसके साथ बिताये, लेकिन उस स्त्री के हाथ का बनाया खाना उन्होने कभी नही खाया, न बच्चो को कभी प्यार किया। उसे अछूत मानते रहे। जव उनकी मृत्यु हुई तो उनके एक लडकी विवाह के योग्य थी। कुछ हिन्दुओ ने सोचा, कुछ भी हो, आखिर वह है तो हिन्दू की औलाद, अच्छा हो कि हिन्दू-घर मे रहे। यह सोचकर वे उस स्त्री के पास गये और लडकी के विवाह का प्रस्ताव रक्खा। स्त्री ने पूछा, "आप कौन जात हैं ?"

उन्होने कहा, "हिन्दू।"

स्त्री का पारा चढ गया। बोली, "मैं आपके घर मे हर्गिज-हर्गिज अपनी लडकी को नही दूगी। मैं तीस वरस तक एक हिन्दू से लाछित होती रही। उसने मेरी देह का इस्तेमाल किया, पर मेरे हाथ का छुआ खाना नही खाया। मेरे वच्चो को प्यार नही किया। जव-जव वह अपनी जात-विरादरी के लोगो के बीच बैठता था, कहता था, मैं हिन्दू हूं। वर्मी औरत मे व्याह करके भी मैंने अपने धर्म पर आच नही आने दी। मैं अपनी लडकी को किसीको भी दे दूगी, पर हिन्दू को नही दूगी।"

इस घटना को सुनकर हमे वडा दुख हुआ और वर्मी शासन के भूत-पूर्व मत्री तखिन ताखिन का स्मरण हो आया। उनके पिता गोरखपुर जिले के रहनेवाले थे। वह वर्मा गये और वहा उन्होने एक वर्मी लडकी से विवाह किया। उससे तखिन ताखिन का जन्म हुआ। पिता के मरने के वाद लडके ने सोचा कि अपने पिता की जन्म-भूमि देखनी चाहिए। वह भारत आया, पिता की जन्म-भूमि मे मदिर वनवाया, लेकिन जव उसने हिन्दू लडकी से विवाह की इच्छा प्रकट की तो कोई भी अपनी लडकी देने को तैयार नही हुआ। इसकी उसके मन पर इतनी तीव्र प्रतिक्रिया हुई कि वह हिन्दुओ का कट्टर दुश्मन वन गया।

ये सब घटनाए अत्यन्त अमानवीय हैं, और वताती हैं कि धर्म को

हमने कितना ओछा रूप दे रक्खा है। हर आदमी के लिए जरूरी है कि वह जहा हो, वहा की भूमि के प्रति आत्मीयता का भाव रक्खे। धर्म से न कोई छोटा होता है, न वडा। धर्म तो सवको वरावर का वनाता है। जो धर्म एक को दूसरे से अलग करता है, वह धर्म नही है। असल वात यह है कि लोग छाया के पीछे पडे हैं, सार को उन्होने छोड दिया है।

उन भाई ने जाने कितने और कहा-कहा के किस्से सुनाये। हमे जानकारी मिली। साथ ही रास्ता आसानी से कट गया। ८।। वजे प्यू पहुचे। जियावडी के कुछ खास लोग दो जीपें लेकर वहा उपस्थित थे। उन्होने प्लैटफार्म पर हमारा स्वागत किया और वडे स्नेह और आदर से हमे अपने नगर मे ले गये। तीन-चार मील का वह रास्ता कुछ समय पहले तक वडा भयकर था। अक्सर डाकू वहा आ जाते थे और यात्रियो को पकडकर ले जाते थे। अब वैसा खतरा नही रहा, लेकिन फिर भी सारा रास्ता वडा सुनसान मालूम हुआ। गहन अधकार ने उसे और भी भयावना वना दिया था। प्यू से कुछ दूर निकलने पर कई वन्दूकधारी लोग मिले। पूछने पर मालूम हुआ कि डाकुओ का डर दूर हो जाने पर भी पहरेदार उस रास्ते पर गश्त लगाते रहते हैं। पन्द्रह मिनट मे जियावडी पहुच गये। ठहरने के स्थान पर जाकर हाथ-मुह धोया, फिर कुछ खा-पीकर सो गये।

अगले दिन सवेरे से ही लोग इकट्ठे होने लगे। वात करने पर मालूम हुआ कि पहले इस स्थान को 'जयवती' अथवा 'राजागाव' कहकर पुकारा जाता था। 'राजागाव' नाम पडने का कारण यह था कि इसे एक भारतीय राजा (जागीरदार) ने वसाया था। वर्मा पर अगरेजो का अधिकार होने के वाद उन्होने भारत मे घोषणा की कि "यदि वहा का कोई राजा वर्मा की कुछ जगली जमीन पट्टे के रूप मे लेकर आवाद करना चाहे तो उसे ले सकता है।" लेकिन किसी भी भारतीय राजा-महाराजा ने उस ओर ध्यान न दिया। बिहार की डुमराव रियासत के दीवान जयप्रकाशलाल ने रियासत के महाराज से कह-सुनकर कुछ जगल अपनेको दिलवा देने के लिए तैयार कर लिया। लिखा-पढी हो गई। वाद मे महाराज से झगडा हो जाने के कारण जियावडी की मिल्कियत को लेकर मुकदमेवाजी हुई। मामला प्रिवी कौंसिल मे पहुचा। दीवान की ओर

से स्व० मोतीलाल नेहरू और महाराज की ओर से देशबन्धु चित्तरजनदास वकील थे। फैसला हुआ। दीवान को न केवल जियावड़ी की ग्रान्ट से हाथ धोना पडा, अपितु भारत मे भी लाखो की सम्पत्ति उनके हाथ से निकल गई।

शुरू मे जियावडी का पट्टा होने पर सन् १८९७ मे जयप्रकाशलाल पहली बार बर्मा आये थे। बाद मे उन्होने आरा जिले के लल्लूराम पाण्डेय (अवकाश-प्राप्त पुलिस इस्पेक्टर-जनरल) को जियावडी को आबाद करने के लिए भेजा, पर यह काम आसान न था। जगली जानवरो से भरे घने जगल को काटकर भूमि को रहने और कृषि के योग्य बनाने मे कम खतरा न था। फिर भी, बिहार से समय-समय पर हजारो किसान वहा गये और अपने प्राणो की चिन्ता न करके उन्होने जंगलो को साफ कर डाला। खूखार जगली जानवरो का वह आवास मानव-रव से गूंजने लगा और वहा की जमीन अन्न की फसलो से लहलहा उठी। हजारो लोगो की बस्ती बस गई। पडित हरिवदन शर्मा की प्रेरणा से सन् १९२१ मे वहा एक विद्यालय भी खुल गया। इसमे कोई सदेह नही कि जियावडी को आबाद करने का प्रमुख श्रेय उन व्यक्तियो को है, जो आरम्भ मे वहा गये और जिन्होने अपनी जान को संकट मे डाला, लेकिन उसके विकास मे उसके मालिक रायबहादुर श्री हरिहरप्रसादसिंह का भी विशेष हाथ रहा।

भू-स्वामियो और किसानो के बीच हर जगह तनातनी रहती है। जियावडी मे भी मालिक और किसानो के बीच कशमकश जारी हो गई। सन् १९३५ मे उसने उग्र रूप धारण कर लिया। मालिक के विरोध मे किसानो ने अपनी मागे सरकार के सामने पेश की, पर अगरेजो ने उनकी सुनवाई नही की। सन १९४७ मे बर्मा के स्वतन्त्र होने पर किसानो का पक्ष सबल हो गया, पर वहा के प्रबन्धको के साथ उनका सघर्ष बहुत ही भयंकर हो उठा। नतीजा यह हुआ कि बर्मी सरकार ने २ फरवरी, १९५४ को जियावडी जागीर का राष्ट्रीयकरण कर डाला। सन् १९३४ मे वहां पर २४ लाख रुपये की लागत से जागीर के तत्कालीन मालिक रायबहादुर श्री हरिहरप्रसाद के लड़के श्री चन्द्रदेव प्रकाश सिन्हा ने जो चीनी की मिले

बैठाई थी, और जिसके विकास मे उन्होने और भी कुछ रुपया लगाया था, उसका भी १ नवम्बर, १९५४ मे राष्ट्रीयकरण हो गया। कहने की आवश्यकता नही कि किसी समय मे पूर्व की सबसे बडी मिलो मे से वह एक थी। राष्ट्रीयकरण से दो साल पहले श्री सिन्हा ने एक और मिल खडी की थी, वह भी सरकार के हाथ मे चली गई।

जियावडी जागीर का क्षेत्रफल १५ हजार एकड है और आवादी लगभग २० हजार, जिसमे ९९ प्रतिशत भारतीय किसान हैं। वहा के निवासी अब बर्मी सरकार की प्रजा हो गये हैं। शाति और व्यवस्था के लिए वहा एक थाना बन गया है। बस्ती मे १६ विद्यालय हैं। पुराना 'ब्राह्मण-सभा स्कूल' अब 'गाधी हिन्दी महाविद्यालय' हो गया है। सन् १९४७ मे स्थापित प्राइमरी स्कूल अब हाईस्कूल के स्तर पर पहुच गया है और उसका अपना विशाल भवन बन गया है।

सबसे पहले हम चीनी की मिल देखने गये। बडी विशाल मिल है। राष्ट्रीयकरण होने के बाद से सरकार उसे भीमकाय मशीनो से सुसज्जित करके आधुनिकतम बनाने की कोशिश कर रही है, लेकिन हमे बताया गया कि उसमे मुनाफे की जगह घाटा होता है। श्री सिन्हा के ७१ लाख रुपये के मुआवजे का मामला भी अभी तक तय नही हो पाया है।

मिल देखकर 'गाधी हिन्दी महाविद्यालय' मे गये, जहा इन पक्तियो के लेखक ने छात्रो को प्रमाण-पत्र वितरित किये। इस विद्यालय के द्वारा हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की परीक्षाओ की व्यवस्था होती है। विष्णुभाई ने शिक्षा और साहित्य के सबध मे अपने विचार व्यक्त किये और अन्त मे दीक्षात-भाषण के रूप मे मैंने भी कुछ बातें कही। विद्यालय के प्रधान अध्यापक श्री रामगोविंद वर्मा बडे लगनशील और सेवाभावी व्यक्ति हैं। उनके सहयोगी तथा कार्यकारिणी के सदस्य भी बडे निष्ठावान लोग हैं।

दोपहर बाद सार्वजनिक सभा हुई, जिसमे हिन्दी के लेखक हमारे मित्र श्री श्यामाचरण मिश्र ने हम लोगो का परिचय देते हुए वहा की समस्याओ पर प्रकाश डाला। विष्णुभाई और मैंने अपने भाषणो मे इस बात पर जोर दिया कि वहा के भारतीय निवासियो को ब्रह्मदेश की भूमि और वहा के नागरिको के साथ घनिष्ठता स्थापित करनी चाहिए। श्री शीतल-

प्रसाद व्यास ने, जो हमारे साथ वहा गये थे, बड़े सुन्दर और प्रभावशाली ढंग से रामायण पर प्रवचन किया।

शाम को जियावडी हाईस्कूल मे गये। खुले स्थान पर उन्मुक्त वायु-मण्डल मे उसका भवन है, जिसके निर्माण मे एक लाख से ऊपर रुपया लग चुका है। लगभग ७०० छात्र और १७ अध्यापक हैं। वैसे तो इस सस्था मे कई निस्स्वार्थ सेवाभावी व्यक्ति कार्य कर रहे हैं, लेकिन उसके प्रिंसीपल श्री श्रीराम वर्मा तथा कार्यकारिणी के मत्री मुहम्मद हबीब के नाम विशेष रूप से उल्लेखयोग्य हैं।

जियावडी जागीर मे जियावडी कस्बे के साथ-साथ और भी कई बस्तिया हैं, जिनके भारतीय नाम है, जैसे जयपुर, शिवसागर, भास्कर पट्टन, हस्तिनापुर, गोपालगज, नवानगर आदि-आदि। कुछ बर्मी नामो की बस्तिया भी हैं, जिनमे मुख्यत भारतीय ही रहते हैं।

अखिल बर्मा काग्रेस की शाखा के अध्यक्ष श्री जुल्मसिह मिलने आये। उन्होने वहा की स्थिति की विस्तार से जानकारी दी। वहा के भारतीयो की समस्याए मुख्यत ये बताई गई

१. वहा की पूरी भूमि खेती के काम मे आ गई है, लेकिन बढती जनसख्या विस्तार चाहती है, जो अब संभव नही है। अतः बहुत-से लोग भारत आना चाहते है, पर उसके लिए पर्याप्त सुविधाए नही हैं।

२. जो भारतीय बर्मी नागरिक नही बने, उन्हें एफ०आर०सी० (फारिनर्स रजिस्ट्रेशन सर्टीफिकेट) लेना पडता है। वह हर साल जारी कराना होता है, जिसके लिए प्रति व्यक्ति ५० रुपये लगते हैं। १८ वर्ष से ऊपर हर आदमी के लिए इतना रुपया देना अनिवार्य है। इससे गरीबो पर बहुत बोझ पड जाता है। न देने पर जेल जाने की नौबत आ जाती है। नागरिकता के लिए दिये गए आवेदन-पत्र आठ-आठ साल से पड़े हैं, जो स्वीकार नही किये गए।

३ भारत मे अपने घर वे लोग केवल २० रुपये मासिक भेज सकते हैं, वह भी केवल अपनी पत्नी को। इससे उन्हें बड़ा असतोष रहता है।

४ बिना आयात लाइसेंस के पुस्तके तथा अन्य चीजें बाहर से नही मगा सकते। किताबे आने मे कठिनाई होने के कारण पढाई मे बाधा

पडती है ।

ये तथा ऐसी ही दूसरी बाधाए सरकार से सबध रखती थी और उसीके सहयोग से दूर हो सकती थी। उन लोगो ने कहा कि आप भारत सरकार का ध्यान इन बातो की ओर खीचकर कुछ कराइये । पर अपनी मर्यादा हम जानते थे। हमने कह दिया कि सरकारी स्तर पर आप ही लोग कुछ कीजिये ।

जियावडी के निकट से पेगूयोमा श्रेणिया आरम्भ हो जाती हैं, जिनसे उस स्थान की शोभा बहुत बढ गई है ।

अगले दिन वहा से रवाना हुए। कई सज्जनो ने स्टेशन तक आकर बडी आत्मीयता से विदाई दी। प्यू जक्शन पर भी दो सज्जन मिलने आये और पुष्पो तथा फलो के उपहार दे गये । वहा के निवासियो की भावना, विनम्रता तथा सादगी को देखकर बडी प्रसन्नता हुई, लेकिन उनके रहन-सहन मे हमे वही त्रुटि दिखाई दी, जो हम प्राय अपने गावो मे देखते हैं। बर्मी और चीनी लोगो के मकानो की सुघडता बहुत ही आकर्षक होती है, लेकिन जियावडी के अधिकाश मकान बडी फूहडता से बने हैं और बहुत ही गदे हैं। यदि बताया न जाय तो भी वहा के घरो और छोटे-से बाजार को देखकर साफ पता चल जाता है कि वह भारतीयो की बस्ती है । क्या ही अच्छा होता, यदि वहा के भारतीय सादगी के साथ-साथ कलापूर्ण रहन-सहन का एक अच्छा नमूना वहा के लोगो के सामने प्रस्तुत करते !

विकास की गुजाइश न होने के कारण बहुत-से लोग स्वदेश आने के लिए आतुर थे। हमसे कहते थे, "पासपोर्ट, वीसा आदि की सुविधा मिल जाय तो अपने देश चले जाय । रूखी-सूखी खाकर रह लेंगे, पर इतना सतोष तो रहेगा कि सुख-दुख मे हम अपने घरवालो और नाते-रिश्तेदारो के बीच हैं।"

उनकी इस वेदना को देखकर जहा व्यथा अनुभव हुई, वहा यह धारणा और भी पुष्ट हुई कि वहा रहनेवाले भारतीयो के लिए उस भूमि के साथ अपनेपन का नाता जोडना नितात आवश्यक है। अगर पूरे भारतीय समाज ने ऐसा किया होता तो निश्चय ही उनकी हालत आज की बनिस्वत कही ज्यादा अच्छी होती ।

: १८ :

रंगून की भारतीय संस्थाएं

ससार के जिन-जिन देशो मे भारतवासी गये हैं और स्थायी रूप से रहने लगे है, वहा-वहापर उन्होने अपनी सस्थाए अवश्य स्थापित की हैं। ब्रह्मदेश में भी अनेक भारतीय सस्थाए हैं। कुछ साल पहले तक बर्मा भारत का एक अग था और आज राजनैतिक रूप से स्वतन्त्र हो जाने पर भी हमारे देश के साथ उसके बडे घनिष्ठ सबध हैं। हम बता चुके हैं कि वहापर भारतीयो की सख्या लगभग छः लाख है, जिनमें से बहुतो ने तो वहा अच्छी सम्पत्ति खडी कर ली है, अपने कल-कारखाने और मकान बना लिये हैं और कुछने वही की नागरिकता स्वीकार कर ली है। अत वहापर उनके सगठनो तथा संस्थाओ का होना स्वाभाविक ही है।

सबसे पहली भारतीय सस्था, जिसकी ओर हमारा ध्यान गया, वह 'अखिल बर्मा हिन्दी साहित्य सम्मेलन' था। उसकी चर्चा हम विस्तार से पीछे कर चुके हैं। इसमे कोई सन्देह नही कि हिन्दी की शिक्षा तथा उसके साहित्य के प्रचार एव प्रसार के लिए यह सस्था बड़ा महत्वपूर्ण कार्य कर रही है। प० हरिवदन शर्मा की प्रेरणा से रोपे गये इस पौधे को अनेक सेवा-भावी व्यक्तियो ने अपने पसीने से सीचा है और अब भी सीच रहे हैं। परदेश मे हिन्दी तथा उसके साहित्य के प्रचार-कार्य की कठिनाइयो और मर्यादाओ को दूर बैठकर नही समझा जा सकता। सम्मेलन का कार्य वास्तव मे सराहनीय है। दो बातो का हमे विशेष रूप से इस प्रसग मे उल्लेख करना है। पहली तो यह कि सम्मेलन का अपना भवन नही है। हम बडे-बडे मकानो के पक्षपाती नही है, और यह जानते हैं कि सस्थाएं भवनो के जोर पर नही, सेवा-परायण एव लगनशील व्यक्तियो के बल पर चलती है, लेकिन अपनी प्रवृत्तियो के सुचारु रूप से संचालन के लिए सम्मेलन की अपनी जगह होनी चाहिए। पढाई-लिखाई के प्रबध के अलावा उसमें स्थायी मच का भी निर्माण किया जा सकता है जिसके

लिए श्री सत्यनारायण गोयनका, प्रो० गौतम भारद्वाज, धर्मवीरजी, बालचन्दजी प्रभृति के रूप मे अच्छी प्रतिमाए वहा विद्यमान हैं। एक बडे पुस्तकालय की भी अपने भवन मे व्यवस्था हो सकती है।

दूसरी बात यह है कि सम्मेलन की अधिकाश प्रवृत्तिया केवल भारतवासियो तक ही सीमित हैं। उसकी परीक्षाओ मे हमे ब्रह्म-देशवासियो के बैठने के समाचार नही मिले। अधिवेशन के अवसर पर किये गए नाटको को छोडकर और किसी सभा मे हमने बर्मियो को नही देखा। बर्मा मे बौद्धभिक्षु लाखो की सख्या मे हैं। यदि हिन्दी सीखने के लिए उन्हें प्रेरित किया जाय तो कोई कारण नही कि वे इस ओर प्रेमपूर्वक आकर्षित न हो। ससार के बहुत-से देशो के लोग बडी लगन से हिन्दी सीख रहे है। बर्मा तो फिर भी हमारा पडोसी देश है। इस दिशा मे कठिनाइया हो सकती हैं, लेकिन कोशिश करने पर रास्ता निकल सकता है।

दूसरी सस्था है बोटाटाग पगोडा रोड पर रामकृष्ण मिशन। दो-ढाई लाख रुपये की लागत से निर्मित उसके कई मजिल के भवन को देखकर उस सस्था के सचालको की कर्मठता का पता चलता है। उसके सचालक स्वामी सूर्यानन्दजी ने हमे साथ ले जाकर अपना पुस्तकालय दिखाया। उसमे तीस हजार पुस्तको का विशाल सग्रह था। पुस्तकालय को इतना बडा रूप देने का श्रेय मुख्यत. इन स्वामीजी को ही है। मर्चेन्ट स्ट्रीट पर मिशन का अस्पताल है, जिसमें कोई पौने दो-सौ रोगियो के रहने की व्यवस्था है। नर्सों के प्रशिक्षण का केन्द्र भी इस अस्पताल मे है। चिकित्सालय द्वितीय महायुद्ध से पूर्व भी था, लेकिन लडाई के दिनो मे बमबारी से उसका विध्वस हो गया। पर जिस सस्था की बुनियाद मे लोक-कल्याण और सेवा की भावना हो, वह नष्ट कैसे हो सकती थी! आज वहीपर पहले से कही अधिक विशाल, दस-बारह लाख रुपये की इमारत बन गई है और उसका सेवा-क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है। मिशन की और भी कई प्रवृत्तिया हैं। फिल्मो के प्रदर्शन, सगीत तथा समय-समय पर भाषणो की व्यवस्था होती रहती है। अस्पताल एव पुस्तकालय से तो अनगिनत व्यक्ति लाभ उठाते ही हैं।

स्वामी सूर्यानन्दजी सन् १९५३ से वहा है। सात साल के अपने

निवासकाल मे उन्होनें मिशन की प्रवृत्तियो को काफी फैलाया है। वहं हमें अपने अनुभव सुनाते रहे। उन्होंने हमें मिशन में 'अणु-बम बनाम आत्म-बल' विषय पर बोलने के लिए आमन्त्रित किया। हम लोग गये। उस सभा की अध्यक्षता अवकाश-प्राप्त डिप्टी कमिश्नर सीथू ऊ सान पे द्वितीय ने की। विष्णुभाई और मैंने अपने भाषणो मे आत्मिक शक्ति पर बल दिया, विज्ञान की प्रगति पर प्रकाश डाला और अन्त में दोनो के समन्वय की बात कही। हम दोनो के बाद लाटविया के बौद्ध साधु रेवरेंड एफ० लुस्टिग बोले। उनका भी आशय लगभग वही था। अतमे अध्यक्ष महोदय ने बौद्ध विचार-धारा के दृष्टिकोण से इस विषय पर अपने विचार व्यक्त किये और बौद्ध ग्रथो मे से अनेक प्रसगोचित उद्धरण पढकर सुनाये। सभा मे भारतीयो के अलावा बर्मी श्रोता भी थे।

यह वास्तव मे बहुत बड़ा सौभाग्य है कि मिशन को बहुत-से सेवा-परायण साधुओ की सेवाए प्राप्त हैं, जिनके चारो ओर सकीर्ण परिधि नही है और जिनका हृदय सबके लिए खुला है। यही कारण है कि उनकी सस्थाओ और केन्द्रो से बिना किसी भेदभाव के सब लाभ उठाते हैं।

तीसरी पुरानी भारतीय सस्था, जिसने उस देश मे भारतीय सस्कृति की सराहनीय सेवा की है, आर्यसमाज है। जिस समय बर्मा भारत का अग था, भारतीय सस्कृति की प्रेरणाए भारत से जानेवाले प्रचारकों के द्वारा वहा पहुचती थी। सन् १६०४–५ मे वहां 'आर्यसमाज' की स्थापना हुई। भारत-बर्मा-सरकार की नौकरी मे संलग्न भारतीयो के अलावा स्वतत्र रूप से कार्य करनेवाले भारतवासियो ने भी उसमें सहायता दी। आज समूचे बर्मा मे लगभग बीस आर्यसमाज हैं। उन सबका केन्द्रीकरण 'अखिल ब्रह्मा-देशीय आर्यप्रतिनिधि सभा' के द्वारा होता है।

आर्यसमाज के कई स्थानो पर अपने भवन हैं। रंगून और माडले में तो तिमंजिली इमारतें हैं। मचीना, मेमियो, लाशयो, येनाजांऊ, मोगोक आदि मे भी उसके अपने भवन हैं। प्रत्येक आर्यसमाज में साप्ताहिक सत्सग, वेदमंत्रो का पाठ, हवन आदि तो होते ही हैं, व्याख्यान, प्रवचन, भजन आदि की भी व्यवस्था रहती है। उनके द्वारा हिन्दी के प्रचार में पर्याप्त सहायता मिलती है। वस्तुत. हिन्दी के कार्य में योग

देनेवाले अधिकाश व्यक्ति आर्यसमाज के साथ सम्बद्ध हैं। रात्रि-पाठ-शालाओ का भी समाज द्वारा सचालन होता है। अनेक विद्यालयो और कन्या-पाठशालाओ की स्थापना का श्रेय आर्यसमाज के कर्मठ कार्यकर्ताओ को है। आर्यसमाज के कारण स्वामी श्रद्धानद, लाला लाजपतराय, प० गगाप्रसाद उपाध्याय, प० परमानन्द आदि सम्माननीय व्यक्तियो ने ब्रह्म-देश का भ्रमण किया और वहा वैदिक धर्म के प्रसार के लिए अनुकूल वायु-मडल तैयार करने मे सहायता दी।

आर्यसमाज के अन्तर्गत 'आर्य-स्त्री-समाज' की स्थापना सन् १९२५-२६ मे हुई, जो स्त्रियो मे जागृति उत्पन्न करने के लिए अपना योगदान दे रही है।

आर्यसमाज मे हमे दो बार आमत्रित किया गया। रगून पहुचने पर समाज के प्रमुख व्यक्ति वहा ले गये। समाज के द्वारा 'बाल-सभा' का सचालन होता है। उसमे भी हम गये और बच्चो से मिले। बाद मे दक्षिण-पूर्वी एशिया के अन्य देशो के प्रवास से लौटने पर सस्मरण सुनाने के लिए उन्होने दूसरी बार बुलाया। विष्णुभाई ने विस्तार से बताया कि उधर के देशो मे किस प्रकार भाषा, रहन-सहन आदि पर भारतीय सस्कृति का प्रभाव आज भी सुरक्षित है। मैंने कहा, इन देशो मे से अधिकाश मे आज भी ऐसे अवशेष मौजूद हैं, जिनसे पता चलता है कि किसी समय मे यहा भारतीय सस्कृति का बोलबाला था। आवश्यकता इस बात की है कि इन देशो मे जो भारतीय रहते हैं, वे उनकी रक्षा करें और अधिकाधिक लोगो के साथ उनका परिचय करावें।

समाज की ओर से एक छोटा-सा चिकित्सालय भी चलता है, जिसमे डा० ओमप्रकाश तथा कुछ अन्य व्यक्ति प्रतिदिन कुछ समय अपनी नि शुल्क सेवाए देते हैं।

'विवेकानद क्लब' तथा 'शरत मेमोरियल हॉल' के अपने कक्ष मे कुछ प्रवृत्तिया चलती हैं, जिनमे विवेकानद पुस्तकालय प्रमुख है। पाठको को हम बता चुके हैं कि बगला के मूर्द्धन्य साहित्यकार शरतचन्द्र चटर्जी सन् १९०३ से १९१६ तक बर्मा मे रहे थे। उनके कुछ तत्कालीन सह-कर्मी आज भी वहा विद्यमान हैं। बगाली युवको मे कई एक शरत के

प्रांमक हैं। सस्था की प्रवृत्तिया विशेष व्यापक नही हैं, यद्यपि अनेक उत्साही कार्यकर्ता उसके साथ हैं।

बर्मा मे गुजरातियो की सख्या काफी है। उनके 'गुजराती समाज' ने अपने गुजराती हाईस्कूल मे गुजरात के स्वतत्र राज्य बनने पर विशाल सभा का आयोजन किया, जिसमे तत्कालीन भारतीय राजदूत श्री लालजी मेहरोत्रा भी उपस्थित थे। उस अवसर पर गुजराती समाज के अनेक कार्यकर्ताओ से सामूहिक रूप मे मिलना हुआ। हमे यह देखकर वडा हर्ष हुआ कि अनेक गुजराती सज्जन अपनी इस सस्था को सजीव बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील हैं।

'जैन-सभा' ने हमे 'विश्वशान्ति मे जैन-धर्म का योगदान' विषय पर बोलने के लिए आमन्त्रित किया। सभा गुजराती हाईस्कूल मे हुई। जैन-सभा के सभी प्रमुख सदस्य उपस्थित थे। जैन-धर्म के सिद्धान्तो के प्रचार के लिए यह सस्था अच्छा काम कर रही है।

'बगाली लेखक और शिल्पी मजलिस' बगाली लेखको तथा कलाकारो की संस्था है। उसमे हमे कुछ लेखको से मिलने का अवसर मिला। एक चित्रकार भी मिले।

हिन्दू समाज के व्यापक हितो को लक्ष्य मे रखकर चलनेवाले 'हिन्दू मित्र-सघ' के साथ वहा के अनेक प्रतिष्ठित व्यवित जुडे हुए हैं। उसकी प्रवृत्तियो मे एक प्रवृत्ति गोपालन और गोरक्षण भी है।

'गाधी हॉल', जिसमे हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ था, हाल ही मे प्राप्त किया गया है। उसके विकास की योजना बन रही है। सयोजको की आकाक्षा है कि उसे वे उसके नाम के अनुरूप ही बनावें। इस स्थान को प्राप्त कराने मे श्री लालजीभाई तथा अन्य व्यक्तियो का प्रमुख हाथ रहा।

'प्राची प्रकाश' रगून से प्रकाशित होनेवाला हिन्दी दैनिक पत्र है। ३१ वी गली मे उसका कार्यालय तथा प्रेस है। पत्र का आरम्भ सन् १९२६ मे हुआ था। बाद में वह बद हो गया। १९३४ मे फिर निकला, लेकिन एक लेख पर तीन हजार रुपये की जमानत मागे जाने पर फिर बंद कर दिया गया। अब सन् १९४६ से बरावर निकल रहा है। बीच मे गुजराती मे

भी निकला, लेकिन घाटा रहने से गुजराती सस्करण बद कर देना पडा। पत्र के सम्पादक श्री चन्दूलाल ठक्कर हैं, और उनके सहयोगी हैं श्री श्याम-लाल भारती। उस छोटे-से प्रेस मे हिन्दी, तमिल, बर्मी आदि की छपाई का काम होता है। हम लोगो के सम्मान मे पत्र से सबधित सारे कार्यकर्ता एकत्र हुए। हिन्दी का दैनिक पत्र परदेश मे निकालना आसान काम नही है, पर वे लोग अपनी लगन से उसे चलाये जा रहे है। 'नवजीवन' हिन्दी का साप्ताहिक पत्र है, जो यहा से निकलता है।

भारतीय शिक्षा सस्थाओ मे उल्लेखयोग्य चार हाईस्कूल है—गुजराती, डी०ए०वी०, मारवाडी और आई०ई०एस० खालसा हाई स्कूल। डी०ए०वी० स्कूल मे पाचवी कक्षा तक लडके-लडकियो की सह-शिक्षा है। सवेरे की पारी मे लडकिया पढती हैं, शाम की पारी मे लडके।

इनके अलावा रगून मे और भी कई भारतीय सस्थाए हैं, लेकिन हमने उन्ही सस्थाओ का उल्लेख किया है, जिनके साथ हमारा सपर्क हुआ था।

: १६ :

थाईलैंड के लिए प्रस्थान

भौगोलिक दृष्टि से बर्मा बहुत बडा देश नही है, पर वहा देखने को इतना है कि महीनो घूमो तब भी पूरा न हो। उस भूमि तथा उसपर बसने-वाले जन को अधिक-से-अधिक देखने और समझने की इच्छा से प्रेरित होकर हम उत्तरी, मध्य एव दक्षिणी बर्मा के अनेक भागो मे गये, घूमे, फिर भी पता चला कि कई नगर, ऐतिहासिक केन्द्र, प्राकृतिक स्थल, देवालय आदि बाकी रह गये है। हम द्विविधा मे पडे। जितना अन्दाज़ करके गये थे, उससे कही अधिक समय लग चुका था। सोचा, सबकुछ देख सकना न तो सभव है और न आवश्यक ही। अत अपनी जिज्ञासा पर रोक लगाकर हमे आगे का कार्यक्रम निश्चित करना चाहिए। दिल्ली से रवाना होते समय बर्मा के साथ-साथ हम थाईलैंड, कम्बोडिया और लाओस के वीसा ले गये थे। सिगापुर और मलाया देशो के लिए वीसा की जरूरत नही पडती। हम बता चुके है कि दिल्ली की जिस प्रवास एजेसी ने कलकत्ते से रगून तक की टिकट की व्यवस्था कराई थी, उसीसे हमने यह भी तय कर लिया था कि बर्मा से अन्य देशो मे जाने की हमारी इच्छा और सुविधा हुई तो हम सूचना दे देंगे और वह रगून मे हमे टिकट दिलवा देगी। जिन-जिन देशो मे जाने का विचार था, उनका चार्ट भी बनाकर दे गये थे। आगे का कार्यक्रम निश्चित करने लगे तो मित्रो ने कहा, "कौन बार-बार घर से निकलना होता है। इधर के और देश देख ही जाओ।" पर विदेशी मुद्रा के नाम पर हम दोनो के पास कुल जमा ७०-७० रुपये थे। इतने देशो मे ठहरने और खाने-पीने के खर्च के लिए यह रकम एकदम नाकाफी थी। बर्मा के नियमानुसार हम वहा से सौ-सौ च्या और ले जा सकते थे, पर उनसे भी क्या होता! हमने सोचा, बर्मा मे अगर कुछ ऐसे भारतीय निकल आवे, जिनके इन देशो मे परिचित लोग हो, तो सुभीता हो सकता है, लेकिन खोज करने पर मालूम

हुआ कि सिंगापुर को छोडकर और किसी भी देश के साथ उनके व्यापारिक सबध नही हैं। लाओस के लिए हमारे पास वहा के तत्कालीन राजदूत श्री रतनमजी की पत्नी श्रीमती कमलाजी का निमत्रण था, लेकिन वहा पहुचने से पहले थाईलैंड रास्ते मे पडता था। उसे कैसे छोड सकते थे ? हमे पता था कि बैंकाक मे 'थाई-भारत कल्चरल लाज' नाम की एक सस्था है, जो वहा आनेवाले भारतीयो की बडी मदद करती है। उसके मत्री तथा प्रमुख सचालक श्री रघुनाथ शर्मा को हमने पत्र भी लिख लिया था। जिस समय हमारा मन डावाडोल हो रहा था, उनका उत्तर मिला कि हम थाईलैंड अवश्य आवें। साधनो की अपर्याप्तता होते हुए भी अन्ततोगत्वा हमने अन्य देशो मे जाने का यह सोचकर इरादा कर दिया कि वापसी टिकट तो हमारे पास होगा ही, जहा कठिनाई आवेगी, वही से लौट आवेंगे।

जाने का विचार हो जाने पर दिल्ली प्रवास-एजेंसी को केविल किया। आशा थी कि तीसरे-चौथे दिन टिकट आ जायगा, लेकिन एक सप्ताह की प्रतीक्षा के बाद उनका पत्र आया कि हम उन्हें सूचना दें कि कहा-कहा जाना है। हमने जो चार्ट उन्हें दिया था, वह गुम हो गया है। बडी झुझलाहट हुई, क्योकि अपने अन्दाज के हिसाब से बैंकॉक पहुचने की सभावित तिथि की खबर हम शर्माजी को दे चुके थे। एक बार मन हुआ कि आगे का कार्यक्रम छोड दें, पर मित्रो ने नही माना। विवश होकर एजेंसी को विस्तृत पत्र भेजा और लिखा कि वे पत्र के मिलते ही तार द्वारा सबधित रगून-एजेंसी को सूचित कर दें। चौथे या पाचवें दिन पान अमेरिकन एजेंसी के कार्यालय से सत्यनारायणजी की दुकान पर फोन आया कि हम उनसे मिलकर अपनी टिकट ले लें। सयोग से हम सिनेमा देखने गये थे। दुकान से आदमी गया तो उन लोगो ने कह दिया कि जिनके नाम टिकट हैं, उन्ही-को भेजो। हम सिनेमा से लौटकर आये तबतक उनका दफ्तर बद हो चुका था, शनिवार होने के कारण। सोमवार की छुट्टी थी। हम उतावले हो रहे थे कि टिकट का इतजाम हो जाय तो फौरन चल दें। जो स्थिति सामने थी, उसमे दो दिन तो बेकार जाते ही थे, सभावना तीसरे दिन के भी रगून में ही जाने की थी। हमने एक बार फिर एजेंसी के कार्यालय को

फोन किया। थोडी देर घंटी वजने के वाद कोई वोला, "आफिस वद हो गया है।" हमने कहा, "यह तो हमे भी मालूम है, पर आप कौन हो?" उसके जवाब देने पर कि वह वहा का एक बाबू है, हमने उसे सारी स्थिति वताई और आग्रह किया कि वह जैसे बने, अगले दिन टिकट का प्रवध करा दे। घर जाने की जल्दी मे होते हुए भी उसने हमारी बात तो सुन ली, लेकिन टका-सा जवाव दे दिया कि वह कुछ नही कर सकता। हम एजेंसी के अधिकारी को फोन करे। उनके घर फोन है। फोन किया, पर बेकार रहा। वह घर पर नही मिले। हारकर भारतीय राजदूतावास के अपने मित्र सूचनाधिकारी श्री राजेन्द्रनाथ गुप्ता से कहा और उनके प्रयत्न से लगा कि सोमवार को टिकट मिल जायगे, लेकिन वह हमारा भ्रम था। एजेंसी का दफ्तर सोमवार को भी वद रहा और टिकट मगल को मिले। टिकट लेने के साथ ही हमने अगले दिन रगून से रवाना होने के लिए पान अमेरिकन के विमान मे सीटे वुक करा ली। घर आये और जिन-जिन देशो के लिए हमारे पास पते थे, उन्हें पत्र लिखे। हमारे पासपोर्ट मे दक्षिण वियतनाम का एण्डोर्समेंट तथा वहा का वीसा नही था। उनकी व्यवस्था अपने राजदूतावास की सहायता से हमने अहतियातन पहले ही करा ली थी। टिकट बनवाते समय हमने दक्षिण वियतनाम की राजधानी सैगाव को भी शामिल करा लिया।

श्री लालजीभाई ने कम्वोडिया के हमारे राजदूत श्री नावर को और सूचनाधिकारी गुप्ताजी ने थाईलैंड तथा अन्य देशो के भारतीय दूतावासो अथवा कौंसलेट-जनरलो को हमारे बारे मे पत्र लिखे और उनके नाम-पतो तथा फोन-नम्वरो की सूची बनाकर हमे दे दी, जिससे जरूरत पड़ने पर हम उनसे सपर्क कर सके और उनकी सहायता ले सकें।

यह सब हो चुकने पर हमने यात्रा की तैयारी की। हमे लौटकर फिर रगून आना था। प्रवास मे पन्द्रह दिन लगने की सभावना थी। इसी हिसाव से हमने साथ के लिए जरूरी सामान छाटकर अलग किया। बाकी का वही छोड दिया।

इस बीच मित्रो को मालूम हो गया कि हम जा रहे हैं तो वे मिलने आये। उनसे मिलने-मिलाने मे बहुत-सा समय निकल गया।

अगले दिन वडे तडके उठकर तैयार हुए और कुछ मित्रो के साथ ८ बजे हवाई अड्डे पर पहुच गये। पान अमेरिकन एयरवेज पर जाकर सूचना दी, सामान तुला, फिर कस्टम मे पहुचे। वहा अधिकारियो ने सारा सामान देखा। मेरी वारी जरा पहले आ गई। निबटते ही एक बर्मी सज्जन ने मुझे अपने पीछे आने का सकेत किया। एक कमरे मे ले गया और वहा जाकर बोला, "मैं आपकी तलाशी लूगा।" मैंने कहा, "जरूर ले लो।" उसने मेरी जाकट की जेब देखी, बटुआ देखा, जेब मे पडे कागज देखे और मुस्कराकर बोला, "जाइये।" मैंने कहा, "रुपये और गिन लो।" वोला, "नही, उसकी जरूरत नही है।" मैं कमरे से वाहर आया तो देखता क्या हू कि विष्णुभाई तेजी से दूसरी ओर जा रहे हैं। मैंने आवाज दी। उन्होने कहा, "मुझे तलाशीवाले कमरे मे जाने को कहा है।" मैं उन्हें साथ ले गया। अफसर ने उनकी तलाशी ली। तलाशी अकेले मे ली जाती थी, इसलिए मैं बाहर ही रुक गया। मेरे अदाज मे कुछ अधिक देर लग गई तो मैंने झाककर अदर देखा। अफसर बडी गभीर मुद्रा मे दो शीशिया हाथ मे लिये दरवाजे की ओर आ रहा था और विष्णुभाई उसे समझाकर कह रहे थे कि इन शीशियो मे होमियोपैथी की पेटेंट दवाइया हैं, पेट-दर्द आदि के लिए। पर वे हजरत न जाने क्या समझकर शीशियो को बडी सजीदगी से देख रहे थे। द्वार पर आये तो मैंने भी विष्णुभाई की वात का समर्थन किया। थोडे पसोपेश के बाद उसने शीशिया लौटा दी और छुट्टी दे दी।

तलाशी की यह प्रथा बडी अनुचित लगी। कस्टम के फार्म पर यात्री सामान, मुद्रा आदि के वारे मे पूरी सूचनाए दे देते हैं। ऐसी अवस्था मे उनपर अविश्वास का कोई कारण नही रह जाना चाहिए। फिर भी तलाशी ली जाती है तो इसमे दोष अधिकारियो का उतना नही है। लोगो ने अपनी साख आप खोई है। बहुत-से आदमी फार्म मे लिखते कुछ हैं, जवकि उनके पास होता कुछ और ही है। ऐसे लोगों की वेईमानी का दुष्परिणाम भले लोगो को भी भोगना पडता है। बाद मे हमे मालूम हुआ कि कुछ लोगो का यह धधा ही है कि कीमती चीजें अधिकारियो की आखो मे धूल झोंककर ले जाय और उन्हें वेचकर पैसा वनायें। अधिकारियों की,

सावधानी और जागरूकता के बावजूद लोग उन्हे चकमा दे ही जाते हैं। जो हो, हमे तो यह अच्छा नही लगा कि लोगो की जेबो मे हाथ डाल-डालकर उनकी तलाशी ली जाय।

इस सारी खानापूरी मे कोई एक घटा लग गया। सामान की जाच के अलावा सारे कागजात देखे गये, स्वास्थ्य के प्रमाण-पत्र तक। सब यात्रियो के छुट्टी पा लेने पर ६ वजे विमान मे बैठने की घोषणा हुई। हम विमान मे प्रविष्ट हुए। पान अमेरिकन एयरवेज का वह वडा भीमकाय जहाज था कास्टीलेशन। टूरिस्ट और अव्वल दर्जे के अलग-अलग विभाग थे। उसके आकार की कल्पना इसीसे की जा सकती है कि अकेले टूरिस्ट विभाग मे ६३ सीटे थी। जहाज वहुत ही साफ-सुथरा था। नीचे फर्श पर मखमल बिछी थी। सीटे अच्छी थी। पर दोनो विभागो मे मुसाफिर बहुत थोडे थे। अधिकाश सीटें खाली पडी थी। असल मे बात यह थी कि एक तो उन देशो मे यूरोप की अपेक्षा बहुत कम लोग बाहर जाते हैं। दूसरे, उधर कई कम्पनियो के विमान चलते हैं। नतीजा यह होता है कि कभी-कभी जहाजो को खाली जाना पडता है।

विमान जितना अच्छा लगा, उतना उड़ान का अनुभव सुखद नही हुआ। रगून से रवाना होते समय मौसम खुला था, लेकिन ज़रा-सा आगे बढते ही आकाश बादलो से भर गया। पायलट विमान को बादलो से ऊपर ले गया, फिर भी समय-समय पर मुसाफिर हिचकोरो से हैरान होते रहे। विमान की परिचारिका बेशक बडी चुस्त थी। विमान के रवाना होने पर उसने सामने खड़े होकर बता दिया कि खतरे मे जान बचाने के लिए जीवन-पेटी का किस प्रकार प्रयोग किया जाता है। उसने स्वय पेटी पहनकर हमें दिखाई और कहा, एक-एक पेटी आप लोगो की सीटो के नीचे रखी है।

बादल रास्तेभर छाये रहे। जब-जब हम नीचे देखते थे, रुई-सी बिछी हुई दिखाई देती थी। नीचे सबकुछ उसीमे ढका था। कभी-कभी भ्रम होता था कि सागर लहरा रहा है। कही-कही सफेद-काली दीवारें-सी खडी दिखाई देती थी, लेकिन हमारी आखें तो भूमि, उसकी हरियाली, उसपर बहती नदियो और उसपर खडे पर्वत देखने के लिए लालायित

थी। प्रकृति सारे रास्ते क्षुब्ध रही और बादलो की आख-मिचौनी के अतिरिक्त कुछ भी नही दिखाई दिया।

सारे जहाजो मे परिचारिका मुह मे डालने के लिए लेमनचूस, पिपरमेंट की टिकिया या और कुछ चीज तथा रुई लेकर आती है, पर इस धनी विमान मे वह नही हुआ। मुझे कानो मे लगाने के लिए रुई की जरूरत महसूस हुई तो मागने पर मिली। मौसम को देखकर बार-बार इच्छा होती थी कि एक प्याला गरम-गरम कॉफी मिल जाय, लेकिन परिचारिका से कहा तो उसने बताया कि उसकी व्यवस्था नही है। कुल ५० मिनट को सफर था, पर ऊब गये और जब १० बजकर १० मिनट पर विमान बैंकाक के हवाई अड्डे पर उतरा तो हमने चैन की सास ली। थाईलैंड के समय के हिसाब से उस समय १० बजकर ४० मिनट हुए थे, अर्थात् वहा का समय बर्मा से आधा घटा आगे था।

बैंकाक का हवाई अड्डा बहुत बडा और अच्छा है। बर्मा से पूर्वी देशो मे जानेवाले प्राय सभी विमान वहा रुकते हैं। इस कारण उसका विशेष महत्व है। रनवे पक्का होने से विमानो के उतरने पर वहा धूल नही उडती। लम्बे-चौडे मैदान और आलीशान इमारत को देखते हुए विष्णुभाई और मैं सबसे पहले इमीग्रेशन विभाग मे पहुचे। हमारा पारपत्र केवल एक दिन का था। जब वह हमने दिल्ली मे लिया था तो उसे देने वाले थाई अधिकारी ने बताया था कि उसे सिर्फ एक दिन का वीसा देने का अधिकार है, लेकिन बैंकाक पहुचने पर बडी आसानी से वह तीन दिन का कर दिया जायगा।

इमीग्रेशन विभाग के अधिकारी ने हम दोनो से १६-१६ टिक्ल मांगे। थाईलैंड का सिक्का टिक्ल कहलाता है। विष्णुभाई ने मुद्रा-विनिमय करनेवाली बैंक में जाकर, जो कुछ ही कदम पर हवाई अड्डे के भीतर थी, १०० क्यात अर्थात् सौ बर्मी सिक्को के टिक्ल लिये तो १५० मिले। उसमे से ३२ उन्होने अधिकारी को दे दिये। तीन दिन का वीसा मिल गया।

इतने मे सारा सामान कस्टम में पहुच गया। हमने उसे छाटा और सोचा कि पेटी आदि खोलकर दिखानी होगी, लेकिन कस्टम के कर्मचारियो

ने मुस्कराकर सामान पर खडिया से निशान लगाकर उसे बिना खुलवाये ही पास कर दिया। थाई लोगो के इस व्यवहार की मन पर अच्छी छाप पडी।

यहा पहली बार थाईलैंड के निवासी देखने को मिले। स्त्री-पुरुष दोनो के नक्श बडे अच्छे लगे। उनका रग सुन्दर था, लेकिन सबसे उल्लेखनीय बात यह थी कि उनके चेहरो पर एक प्रकार की सरलता और भोलापन था।

रगून से पिछले दिन हमने शर्माजी को तार दे दिया था। आशा थी कि हवाई अड्डे पर वह या उनका कोई आदमी मिल जायगा। कस्टम से निबटकर जब बाहर आये तो शर्माजी के बारे मे पूछताछ की, लेकिन कोई न मिला। पान अमेरिकन एयरवेज की बस शहर जाने के लिए तैयार खडी थी। सो उसमे जाकर बैठ गये।

हवाई अड्डे से शहर १८ मील है। बस मे बैठे-बैठे वहा की भूमि को देखते रहे, जो वास्तव मे बडी उपजाऊ है। पानी की अधिकता के कारण वहा इतनी हरियाली है कि देखकर तबीयत बाग-बाग हो जाती है। खेतो के बीच कही-कही झोपडियो के गाव बसे हुए थे। उनकी शोभा को देखते हुए बैंकाक मे प्रविष्ट हुए। बस शहर मे घूमती हुई और यात्रियो को होटल मे छोडती हुई अपने आफिस पर पहुची। वहा जाकर हमने सामान सभाला, फिर थाई-भारत कल्चरल लॉज को फोन किया। मालूम हुआ कि शर्माजी घर चले गये है। उनके घर का फोन-नम्बर पूछकर घर फोन किया तो शर्माजी मिल गये। उनसे तार के बारे मे पूछा तो उन्होने बताया कि उन्हे नही मिला। हमारे पत्र के आधार पर उन्होने हमारी प्रतीक्षा की थी। जब हम नही पहुचे तो उन्होने सोचा कि हमारा कार्यक्रम बदल गया होगा। अत मे वह बोले, "आपके लिए लॉज मे सारी व्यवस्था है। एक टैक्सी लेकर आप वहा पहुच जाय। मैं फोन किये देता हू।"

इतना कहकर उन्होने पान अमेरिकन के आफिस के एक बाबू को लॉज का पता बता दिया और हमारे लिए एक टैक्सी करा देने को कह दिया।

उस बाबू ने टैक्सी मगवाकर ड्राइवर को पता समझा दिया। टैक्सी मे सामान रखवाकर हम लॉज पहुचे। वहा हमे एक बौद्ध भिक्षु स्वामी शासन रश्मी मिले। वह हमारी राह देख रहे थे।

: २० :

बैंकाक में

थाईलैंड एशिया के दक्षिण-पूर्वी कोने मे है । उसके पश्चिम मे वर्मा है, पूर्व मे लाओस और कम्बोडिया, दक्षिण मे मलयेशिया और उत्तर मे वर्मा । पूरे देश का क्षेत्रफल लगभग २० लाख वर्गमील है, आवादी कोई ढाई करोड, जिसमे स्यामी ६० फीसदी, चीनी ३ ५ तथा भारतीय और मलायी ३ ३ हैं । बाकी ३ २ फीसदी मे दूसरे लोग हैं ।

थाईलैंड का एक नाम स्याम भी है । यह कहना कठिन है कि इन दोनो मे से ज्यादा पुराना नाम कौन-सा है । दोनो नामो का ही उपयोग पुराने जमाने से होता आ रहा है और आज भी वहा दोनो नाम चालू हैं ।

मूलत थाई लोग शानसी घाटी के निवासी थे, जो चीन के दक्षिण मे है। कुछ इतिहासज्ञो का यह भी मत है कि वर्मा के शान राज्य के निवासी अर्थात् शान तथा 'स्याम' दोनो एक ही शब्द हैं। थाई लोगो का भाग्य शताब्दियो तक चीनियो की एक जाति होने के नाते चीन के साथ बधा रहा। वहा इन्होने 'नान-चो' नामक राज्य की स्थापना की । लेकिन तेरहवी शताब्दी मे चीन-मगोल वश के कुबलाई खां ने उसे जीतकर अपने राज्य मे मिला लिया । नतीजा यह हुआ कि थाई लोगो को लाचार होकर हिन्द-चीन में आना पडा । कुछ लोग बर्मा चले गये और 'शान' नाम से पुकारे जाने लगे । कुछ लोग हिन्द-चीन के लियो प्रात मे मिकाग नदी की तराई मे जा वसे और उन्होने अपने कई छोटे-छोटे राज्य बना लिये । इसी बीच चाग-क्षेत्र के थाई लोगो ने उत्तरी स्याम मे एक नगर का निर्माण किया, जो चागमाई कहलाता है और जो आज थाईलैंड का एक महत्व-पूर्ण औद्योगिक केन्द्र है ।

तेरहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे थाई राजकुमार खुन-इन्द्रादित ने, जो खमेर साम्राज्य के अधीन एक शासक था, सन् १२५७ मे अपने लडके की सहायता से अपनेको स्वतत्र घोषित कर दिया और 'सुखोथाई' को

अपने राज्य की राजधानी बनाया। खुन-इन्द्रादित की मृत्यु के बाद उसके लड़के खुन-राम ने राज्य की सीमा का विस्तार किया। सुखोथाई का भाग्य कोई दोसौ वर्ष (१२५७-१४३७) तक चमकता रहा। उसके शासकों मे एक बड़ा ही शक्तिशाली राजा हुआ, जिसने थाई-वर्ण-माला का निर्माण किया।

सन् १४३८ मे ऊ-थाग नामक राजा द्वारा एक नये राजवंश का उदय हुआ, जिसकी राजधानी अजुध्या मे रक्खी गई। सुखोथाई राज्य उसीमे सम्मिलित हो गया। इस प्रकार अजुध्या ने थाई-इतिहास मे एक नये अध्याय का श्रीगणेश किया। कम्बोज, जो उस समय हिन्द-चीन का एक प्रांत था, अजुध्या राज्य का अंग बन गया।

साढे तीनसौ वर्ष तक अजुध्या का सितारा चमकता रहा। अनन्तर बर्मी आक्रमणकारियो ने उसपर धावा बोल दिया और उसे तहस-नहस कर डाला। उन हमलो से घबराकर राजा ने अपनी राजधानी से सदा के लिए विदा ली और चलते समय प्रतिज्ञा की कि अगले दिन सूर्योदय के समय जहां उसकी नाव पहुंचेगी, वहीं वह नई राजधानी स्थापित करेगा और उस स्थान पर स्मारक के रूप मे एक मंदिर बनवायगा। सयोग से चौफया नदी की धारा मे तैरती हुई उसकी नाव सूर्योदय के समय वर्तमान बैंकाक के पास पहुंची। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार राजा ने उस स्थान पर एक विशाल मंदिर का निर्माण कराया, जो बैंकाक के सबसे सुन्दर मन्दिरो मे से है। उस अरुन वाट (अरुणोदय मंदिर) को देखने के लिए आज भी दूर-दूर से लोग आते हैं।

लेकिन दुर्भाग्य से राजा अधिक दिन जीवित नहीं रहा। कहते हैं, चक्रीकुल के एक सेनापति ने उसको मारकर बैंकाक पर एक नये राजवंश का आधिपत्य स्थापित किया। थाईलैंड का वर्तमान राजवंश उसी चक्रीकुल की परम्परा मे है। इस प्रकार अजुध्या के भाग्य के अस्त होने पर बैंकाक ने अपने देश के इतिहास मे नये युग का आरम्भ किया। सन् १७८२ से आजतक वही स्याम अथवा थाईलैंड की राजधानी है।

सन् १९३२ तक वहां राजाओं का शासन रहा। २४ जून, सन् १९३२ को सेना के अधिकारियो ने राजा की निरंकुश शासन-पद्धति के विरुद्ध

विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह के फलस्वरूप तत्कालीन शासक ने लोक-तन्त्री सविधान स्वीकार करके ससदीय शासन-प्रणाली चालू की, जिसके अनुसार आज वहा राष्ट्रपति, मन्त्रिमण्डल तथा ससद विद्यमान है।

थाईलैण्ड की राजधानी होने के कारण बैंकाक की निराली शान है। वह अपने देश का सबसे बडा नगर है। उसका क्षेत्रफल ६८ वर्गमील है और आबादी करीब २० लाख। शिक्षा, व्यापार तथा शासन का प्रमुख केन्द्र होने के कारण उसका बडा महत्व है। लेकिन सबसे दिलचस्प बात यह है कि उस नगरी में प्राचीन और अर्वाचीन का विचित्र समन्वय है। एक ओर पुराने ढग की पोशाक पहने पुरातन नारी दिखाई देगी तो दूसरी ओर नवीनतम फैशन के कपडो से सुसज्जित थाई बाला। उसकी सडको पर नग-धडग बालक खेलते हुए दीख पडते हैं तो उन्ही सडको पर नई चाल के कपडे पहने बच्चो को घूमते देखा जा सकता है। बाजारो मे कई एक आज भी पुराने इतिहास की याद दिलाते हैं, तो कुछ नवीनतम दुनिया का चित्र उपस्थित करते हैं।

कुल मिलाकर बैंकाक की पहली छाप मन पर यह पडी कि उसपर पश्चिम का प्रभाव तेजी से पड और बढ रहा है। उसके लबे-चौडे शानदार बाजार जहा उसके वैभव का प्रदर्शन करते हैं, वहा पश्चिमी वेश-भूषा और कटे-बने बालो मे वहा की तरुणिया पूर्वी सभ्यता और सादगी को चुनौती देती हैं। दो लाग की धोती की देशव्यापी पोशाक अब प्राय लुप्त हो चली है और उसका स्थान फ्रॉक, स्कर्ट अथवा चुस्त पेंटो ने ले लिया है। दो वेणियो का केश-विन्यास, जो वहा के महिला-समाज की विशेषता थी, अब हजार पीछे एक के सिर पर भी मुश्किल से दिखाई देता है। नये मकानो की बनावट पर भी पश्चिमी शैली का प्रभाव पड रहा है। बाजारो, उनकी सजावट और जगमगाहट को देखकर ऐसा लगता है, मानो हम यूरोप अथवा अमरीका के किसी नगर में हो।

यह देखकर विस्मय होता है कि पश्चिमी विचार और प्रभाव के उद्दाम प्रवाह के बावजूद वहा के जीवन से सरलता एकदम गायब नही हुई है और वहा के आचरण मे पूर्व की कुछ विशेषताए आज भी मौजूद हैं। पश्चिमी लिबास से लैस होकर भी वहा के निवासी आपस मे या बाहर से

आये लोगो से हाथ नही मिलाते। हाथ जोडकर, सिर झुकाकर, अभिवादन करते हैं और विदाई के समय 'गुड बाई' या 'बाई-बाई' न कहकर 'स्वस्ति' शब्द का प्रयोग करते हैं।

पडित रघुनाथ शर्मा पहली मुलाकात मे बहुत देर तक वहा के बारे मे बातें करते रहे। बोले, "हमलोग भारतीय सस्कृति के बारे मे बातें तो बहुत करते है, लेकिन हिन्दुस्तान से भी तो वह तेजी से गायब होती जा रही है। वेशभूषा, रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचार आदि सब पर विदेशी हवा अपना असर डाल रही है। पर इधर के देशो मे आप देखेंगे कि हमारी सस्कृति की कितनी मूल्यवान चीजे आज भी सुरक्षित है। वैष्णव और शैव देवी-देवताओ की एक-से-एक बढकर मूर्त्तिया यहा मिलती है। मदिरो का तो कहना ही क्या! उनकी कारीगरी देखने के लिए दुनिया-भर के लोग आते हैं। यहा की भाषा मे ८० फीसदी सस्कृत के शब्द है। उनमे बहुतो का उच्चारण थोडा भिन्न जरूर है, पर वे लिखे शुद्ध रूप मे जाते हैं। रामायण का तो इतना प्रभाव है कि अपने देश मे भी नही मिलेगा। यहा के राजा के गद्दी पर बैठते ही उनका नाम 'राम' हो जाता है। राम प्रथम, राम द्वितीय, आदि-आदि। वर्तमान राजा का नाम राम अष्टम है।"

एक सास मे शर्माजी जाने कितनी बाते सुना गये। भारतीय सस्कृति के प्रति उनकी आस्था बडी गहरी दिखाई दी। हमने पूछा, "इस देश मे भारतीय कितने हैं?"

बोले, "बीस हजार के लगभग होगे।"

"वे करते क्या हैं?"

"उनमे से अधिकाश तो व्यापारी हैं। छोटे-बड़े धंधे करते हैं। कुछ नौकरपेशा हैं। यहा आपको ऐसे भारतीय भी मिलेंगे, जो पीढियो से रह रहे हैं। एक तरह से यह उनका घर ही बन गया है। नये-नये लोग भी समय-समय पर आते रहते हैं। यहा काम का सुभीता आसानी से हो जाता है और बेपढे लोग भी यहा आकर कुछ-न-कुछ कमाई कर लेते हैं। आर्थिक दृष्टि से लोग अपने देश की बनिस्बत यहा ज्यादा अच्छे रहते हैं। इसलिए रोजी के लिए लोगो का आना-जाना बराबर होता रहता है।"

खाना तैयार था । खाने बैठे । बातो का सिलसिला चलता रहा । शर्माजी की बातें हम ध्यान से सुनते रहे । उनसे हमे वहा के बारे मे काफी जानकारी मिली ।

भोजन करके थाई-भारत-कल्चरल लॉज आ गये और थोडी देर विश्राम करके स्वामी शासन रश्मीजी से वहा के बारे मे उनके अनुभव सुनते रहे । स्वामीजी मध्य प्रदेश के निवासी हैं । किशोरावस्था में ही बौद्ध भिक्षु होकर अपने देश मे घूमे, नेफा गये, कुछ साल लका मे रहे और अब छ महीने से थाईलैण्ड मे हैं । उनका मुख्य उद्देश्य स्यामी भाषा और साहित्य का विधिवत् अध्ययन करना है । बडे सरल व्यक्ति थे । उनसे हमे न सिर्फ बहुत-सी नई बाते मालूम हुईं, बल्कि उन्होने साथ ले जाकर हमे बहुत-से स्थान भी दिखाये । बैंकाक से बाहर भी कई जगह साथ गये ।

रात को आर्यसमाज के अध्यक्ष मास्टर सुन्दरचन्द और कोपाध्यक्ष श्री ब्रजनाथ राय आये और बहुत देर तक वहा के भारतीय समाज के विषय मे तरह-तरह की बातें सुनाते रहे । वहा के एक और भारतीय व्यवसायी श्री मुनीश्वरसिंह भी आकर बातचीत मे शामिल हो गये । भारतीयो की अवस्था पर खेद प्रकट करते हुए कहने लगे कि जहा भारतीय सस्कृति की इतनी कीमती चीजें मौजूद है, वहा भारतीयो को अपने आचरण को ऊचा रखना चाहिए । लेकिन ऐसा है नही । "आपको क्या बताऊ ! जरा से लालच के पीछे लोग अपना ईमान खो देते हैं । धर्म की डीगें मारते हैं, पर उनका आचरण ऐसा है कि कुछ न पूछिये ।"

उन्होने अपनी बात के प्रमाण मे बहुत-सी घटनाए सुनाईं । हम सुनते रहे और सोचते रहे कि प्रवासी भारतीयो की उन देशो मे कितनी बडी जिम्मेदारी है । यदि वे क्षुद्र स्वार्थों को जीत लें और साध्य एव साधनो की शुद्धता का ध्यान रक्खें तो उनके हाथो अपने देश की कितनी बडी सेवा हो सकती है । अपनी सस्कृति के प्रति उनकी निष्ठा और तदनुकूल आचार-विचार पश्चिमी प्रवाह को रोकने मे बहुत-कुछ सहायक हो सकते हैं ।

अगले दिन सवेरे उठकर उसी भवन मे स्थित 'हिन्दू समाज' के कक्ष मे गये, जहा प० अनन्तराम तिवारी महाभारत का पाठ कर रहे थे ।

श्रोताओ मे दो मर्द और तीन स्त्रिया थी। हमे बताया गया कि वहा सवेरे के समय कोई-न-कोई पाठ बराबर होता है। और दिन तो थोडे ही लोग आते हैं, पर छुट्टी के दिन काफी भीड हो जाती है। मर्दों मे वहा के एक बडे व्यापारी श्री मुल्लामलजी थे, जिनके नाम हमारी संसद के सदस्य श्री रघुनाथसिंह ने हमे एक पत्र दे दिया था।

थोडी देर वहा रहकर हम मुनीश्वरसिंह के साथ भारतीय दूतावास गये, जहा प्रथम सचिव श्री आहूजा पहले के परिचित निकल आये। जिस समय मैं रूस गया था, वह वहा के भारतीय राजदूतावास मे काम करते थे। मास्को मे कई बार उनसे मिलना हुआ था। बडी आत्मीयता से मिले और कुछ देर बात करने के बाद राजदूत कर्नल निरजनसिंह गिल के पास ले गये। गिलसाहब अपने पद को शीघ्र ही औपचारिक रूप से ग्रहण करनेवाले थे। वह आजाद हिन्द फौज मे थे और चूकि उधर के देश उनके कार्य-क्षेत्र रहे थे, अत वहा की उन्हें अच्छी जानकारी थी। बातचीत मे हमने उनसे कहा कि हमारी सरकार दूसरे देशो के साथ राजनैतिक सबध बनाने के लिए बेहिसाब पैसा खर्च करती है, पर उन सबधो की बुनियाद कितनी कमजोर होती है। जरा-सा तूफान आने पर हिल जाती है। अगर वह उसका आधा भी ध्यान सास्कृतिक और साहित्यिक सबधो पर लगावे तो अधिक स्थायी परिणाम निकल सकता है। उन्होंने कहा, "आपकी बात सच है। पक्के सबध बनानेवाले आधार साहित्य और सस्कृति ही होते है। मैं चाहता हूं कि हमारे देश से गैरसरकारी तौर पर ऐसे लोग यहा आवें, जो अपने साहित्य और सस्कृति का ज्ञान रखते हो। आप जितने लेखको को भिजवा सकें, जरूर भिजवाइये।"

गिल महोदय का उत्साह देखकर अच्छा लगा, लेकिन हमे पता था कि सरकारी तत्र की मर्यादा होती है। इसलिए उनसे ज्यादा कुछ कहना-सुनना बेकार था। यह जानकर कि हम लोग लेखक हैं, उन्होने कहा, "आप यहा कुछ दिन ठहरिये और खूब घूमिये। आपको बडे काम की चीजें देखने को मिलेंगी। लिखने का मसाला भी बहुत मिलेगा।"

बातचीत और चाय पीने मे काफी समय निकल गया। उनसे छुट्टी लेकर सीधे इमीग्रेशन विभाग मे पहुचे। पिछले दिन जब हमने शर्माजी

को बताया था कि हम अधिक दिन वहा नही ठहर सकेंगे तो उन्होंने बड़े आग्रह से कहा था कि इतवार तक तो आपको रहना ही होगा। एमरल्ड बुद्ध का मदिर और राजमहल हफ्ते मे रविवार को ही खुलते हैं और उन्हें बिना देखे जायगे तो आपकी बैंकाक की यात्रा अधूरी रह जायगी। इस-लिए आगे के कार्यक्रम मे भले ही काटछाट कर लें, लेकिन यहा इतवार तक जरूर रुकें। उनका इतना आग्रह देखकर हमने रुकने का विचार किया, लेकिन हमारे पारपत्र की मियाद तो कुल तीन दिन की था। शर्माजी से कहा तो उन्होने उसे एक सप्ताह का और बढावा देने के लिए एक आवेदन-पत्र तैयार करा दिया। उसी आवेदन-पत्र को लेकर हम इमीग्रेशन-विभाग मे गये। आशा थी कि काम फौरन हो जायगा, लेकिन वहा पहुचते-पहुचते खाने की छुट्टी का समय हो गया। अधिकारी चले गये। उनके बाद मे मिलने पर मियाद बढवाने मे कितनी हैरानी हुई, इसका उल्लेख हम आगे करेंगे।

: २१ :

बैंकाक के बौद्ध मंदिर

बर्मा की भाति यद्यपि थाईलैण्ड बौद्ध मदिरो का देश नही कहलाता, तथापि वहा घूमते हुए कदम-कदम पर मदिरो को देखकर यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि उनकी सख्या और समृद्धि की दृष्टि से दोनो मे कौन-सा देश आगे है। अकेले बैंकाक शहर मे कोई ३०० मदिर है, पूरे देश मे तो उनकी गिनती हजारो मे पहुचेगी। विमान से किसी भी नगर पर उडते हुए निगाह रग-बिरगी चिकनी खपरैलो की ढलवा छतो पर जाये बिना नही रहती। उनसे भी अधिक निगाह जाती है तीन-तीन, चार-चार फुट लम्बी सुरियो पर, जो छतो के दोनो सिरो पर बारहसिंगे के सीगो की तरह निकली होती हैं। ऊचाई पर से देखने पर ऐसा जान पडता है, मानो शहर की सुरक्षा के लिए सतरी तैनात खडे हो। शहरो मे ही नही, देहातो तथा उप-नगरो मे भी बौद्ध मदिरो और विहारो का जाल बिछा हुआ है।

बर्मा मे बौद्ध मदिरो को 'पगोडा' कहते हैं, थाईलैण्ड मे वे 'वाट' कहलाते हैं। पगोडाओ और वाटो की आकृति मे बडा अन्तर होता है। पगोडा गोलाकार होते हैं और उनके शीर्ष-भाग पर हमारे मदिरो की तरह शिखर रहता है। लेकिन वाटो के ऊपर खपरैलो की ढलवा छते होती हैं और उनके दोनो छोरो पर लम्बी-लम्बी सुरिया ऊपर को उठी रहती हैं। इनका निर्माण किसी देवता की प्रतिष्ठा के निमित्त कराया जाता है। अन्य धार्मिक कार्यों के लिए भी वाट बनवाने की प्रथा है। वर्तमान वाटो मे से अधिकाश मे भगवान बुद्ध की मूर्त्तिया हैं।

वाटो के साथ लाखो की सम्पत्ति जुडी हुई है। वहा के लोक-जीवन मे इन मदिरो का बड़ा महत्व है। थाई-कला के वे अनुपम प्रतीक हैं। सामाजिक जीवन के वे महान सास्कृतिक केन्द्र है और मानव की लिप्सा एव भौतिकता को नई दिशा का बोध कराने के लिए वे अत्यन्त प्रभावशाली

प्रेरणा-स्रोत हैं ।

बर्मा की भाति यहा के मदिरो मे भी नर-नारियो की भीड लगी रहती है । पश्चिमी विचार-धारा के प्रभाव के बावजूद यहा के निवासियो मे धर्म के प्रति आज भी आस्था बनी हुई है । सभी वर्गों के लोगो को देव-मदिरो मे श्रद्धा अर्पित करते हुए देखा जा सकता है ।

वाट फो

सबसे पहले हम वाट फो देखने गये । यह मदिर चौफया नदी के निकट अवस्थित है । अन्दर जाने से पहले बाहर चक्कर लगाया तो उसके बाह्य सौंदर्य और कला को देखकर मुग्ध रह गये । धर्म और कला का उसमे बडा ही सुन्दर सयोग था । भीतर जाने पर देखते क्या है कि जगह-जगह पर प्रहरियो की विशाल मूर्त्तिया खडी हैं, जिनकी दाढी-मूछें छाती तक लटकी हुई हैं । बौद्ध मदिरो मे इस प्रकार की मूर्त्तिया देखने का यह पहला ही अवसर था । उनका निर्माण चीनियो द्वारा कराया गया था । भावना की दृष्टि से थाई और चीनी कला का यह मेल भले ही श्रेयस्कर माना जाय, लेकिन कला-प्रेमी आखो को वह अच्छा नही लगता ।

यहा के मदिरो मे राजवश के व्यक्तियो की समाधिया बनाने की आम प्रथा है । ये छतरिया कहलाती हैं और शिखरयुक्त मदिरो की भाति अधिकाश वाटो के प्रागण मे खडी मिलती हैं । इस मदिर के अहाते मे भी हमने ऐसी कई समाधिया देखी । आगे बढने पर एक ओर को थोडी ऊचाई पर निगाह गई तो वही ठिठकी रह गई । बौद्ध मदिर मे शिवपिण्डी ! बडा कौतूहल हुआ । वहा के नारी-समाज मे उसकी बडी मानता है । सतान की कामना से थाई स्त्रिया उस शिवपिंडी की बहुत ही भक्तिभावना मे पूजा करती हैं ।

प्रागण मे एक ओर बुद्ध की दो विशाल धातु-प्रतिमाए तैयार हो रही थी । ये मूर्त्तिया साचे मे ढालकर बनाई जाती हैं, फिर उन्हें साफ किया जाता है । कई लोग उन मूर्त्तियो की सफाई पर लगे थे । उन्हें देखते-देखते विचार आया कि मनुष्य के हाथ मे कितनी शक्ति है । वह भगवान का भी निर्माण कर सकता है । लेकिन दुर्भाग्य से आज उसके द्वारा अधिकांशत शैतान की मूर्त्तिया गढी जा रही हैं । दुनिया की अशाति और

क्लेश का मनुष्य ही प्रमुख कारण है ।

मंदिर की दीवार पर कुछ खुदा हुआ देखकर उसके पास गये और बारीकी से उन दृश्यो को देखा तो पता चला कि वे रामायण के प्रसग हैं। थाईलैण्ड मे रामायण के प्रति लोगो का जो प्रेम है, वह पुराने जमाने से चला आ रहा है।

ऐसा जान पडता है कि थाई-कला के निर्माताओं के लिए मानव और उसका शरीर उपेक्षणीय नही था। मदिर के निकट के कक्ष मे औषधि-शास्त्र की विशद जानकारी दी गई है और अनेक प्रकार की आकृतियो द्वारा शरीर-विज्ञान का परिचय कराया गया है।

मदिर के गर्भगृह मे भगवान बुद्ध की शयन-मुद्रा मे विशाल मूर्त्ति है। लम्बाई ४६ मीटर अर्थात् कोई ५४ गज है और ऊचाई १२ गज। मूर्त्ति अधिक पुरानी नही है। सौ-सवासौ साल पहले की है। उसके निर्माण मे उस समय ५० लाख टिकल यानी १२।। लाख रुपये के लगभग खर्च हुए थे। पूरी मूर्त्ति सोने के पत्तर से जडी है। भगवान के निर्वाण की प्रतीक मूर्त्तिया बहुत-से देशो मे मिलती हैं, लेकिन इतनी बडी मूर्त्तिया या तो बर्मा के पेगू नगर मे देखी थी या यहा। मूर्त्ति बहुत ही भावपूर्ण है और उसके मुख-मण्डल से अभय और शान्ति टपकती है।

वाट बैचमा बोफिट

अन्य मदिरो मे वाट बैचमा बोफिट (सगमरमर का मदिर) अपनी मूर्त्तियो की मनोज्ञता तथा भव्यता के लिए दूर-दूर तक प्रसिद्ध है। राज डमरौन एवेन्यू मे होकर सडक के दोनो ओर पश्चिमी शैली के मकानो और आगे ससद-भवन को देखते हुए हम उक्त मदिर मे पहुचे। उसकी बाह्याकृति मे हमे कोई विशेषता नही दिखाई दी। लेकिन अन्दर जाकर जब उसकी मूर्त्तियो के दर्शन किये तो मन गद्‌गद् हो उठा। बुद्ध की इतनी सुन्दर मूर्त्तिया कम ही देखने मे आती है। एक सुरुचिपूर्ण वेदिका पर बुद्ध भगवान की पद्मासनस्थ प्रतिमा मध्य मे विराजमान है। उसके बाईं ओर मजूषा मे भगवान बुद्ध की अस्थिया हैं। उनके ऊपर बर्मा के पगोडा का नमूना है। मूर्त्ति के आगे लाल मखमल की गद्दी बिछी हुई है, जिसपर केवल बौद्ध भिक्षु ही चढ सकते हैं। जिस समय हम मदिर को देख रहे थे

और मूर्त्तियो तथा दरवाजो एव खिडकियो आदि की कला की सराहना कर रहे थे, एक थाई युवक और युवती आये और मदिर को देखने लगे। देखते-देखते युवती ने अपना वटुवा और युवक ने अपना वैग उस गद्दी पर रख दिया। उसी समय वहा के सबसे वडे बौद्ध भिक्षु (सघराज) वहा आ गये। युवती ने उनके चरणो मे सिर झुकाकर प्रणाम किया। स्वामी-जी ने आशीर्वाद दिया, पर साथ ही सकेत किया कि वह गद्दी पर से अपना सामान हटा ले। युवती अनजाने मे हुई अपनी भूल पर सहम गई।

उस मदिर को दिखाने के लिए स्वामी शासन रश्मी साथ गये थे। उन्होने सघराज से हमारा परिचय कराया तो उन्होने वडी प्रसन्न मुद्रा मे आशीर्वाद दिया—"आप लोग सुखी हो।" महामुनि के चेहरे पर ऐसी सादगी और सरलता थी कि हमारा सिर सहज ही उनके आगे झुक गया।

मदिर के बाहर परकोटे के सहारे दीर्घा मे बीसियो मुद्राओ मे तथागत की बडी-वडी मूर्त्तिया हैं। उनमे से कई मूर्त्तिया उनके साधना-काल की अवस्था को वताती हैं। एक मूर्त्ति तो बडी ही हृदयस्पर्शी थी। भगवान बुद्ध का शरीर सूख गया है, पेट पीठ से लग गया है, आखें वैठ गई हैं। यह मूर्ति उस समय की है, जबकि घर-वार त्यागने के उपरान्त बुद्ध ने अन्न-जल छोडकर सबोधि-प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया था।

पूरा मदिर सगमरमर का है और अपनी सादगी और कला के लिए विख्यात है। वहीपर हमने एक बौद्ध विहार देखा, जिसमे एक भारतीय बौद्ध भिक्षु मिले।

वाट सुयास

वाट सुयास थाई-भारत-कल्चरल लॉज के, जहा हम ठहरे थे, सामने ही था। काफी वडा मदिर था वह। उसमे एक विशेष वात हमने यह देखी कि वहा बौद्ध भिक्षुओ के वर्ग चलते हैं। जिस समय हम वहा घूम रहे थे, चारो ओर पीत वस्त्रधारी भिक्षु दिखाई दे रहे थे। उनकी एक क्लास लग रही थी, जिसमे अध्यापक पढा रहे थे। इस मदिर मे लकडी पर खुदाई का काम भी देखने योग्य है।

अरुण वाट

अरुण वाट की यात्रा चिर-स्मरणीय रहेगी। वह चौफया नदी के

ारे तट पर है। तैरते बाजारों को देखते हुए नाव द्वारा वहा पहुचे।
ाफया नदी का पाट वहा बहुत चौडा है और उसकी धारा मे बडी तेजी
। कही-कही पर नाव डगमगा जाती है, पर अबतक कोई दुर्घटना नही
ं। उस पार पहुचते-पहुचते नदी की धारा मे मदिर का प्रतिबिम्ब दिखाई
ा है। बडा सुन्दर लगता है। हम बता चुके हैं कि इस मदिर का निर्माण
जुध्या के राजा ने अपने सकल्प की पूर्ति के लिए कराया था। मदिर के
ासपास छोटी-सी बस्ती है और बौद्ध भिक्षुओ के रहने के स्थान हैं।

बीच मे मुख्य स्तूप है, जिसे फ्रा प्राग कहते हैं। उसके चारो ओर
ची मीनारे हैं। दूसरे वाटो से यह मदिर आकृति मे तो भिन्न है ही, एक
सरी बात मे भी अलग है। वह ठोस है, अर्थात् उसमे गर्भगृह नही है।
ख्य मदिर पर चढने के लिए सीढिया हैं। ऊपर जाकर सारे शहर का
श्य बडी अच्छी तरह से देखा जा सकता है। कला-कारीगरी के साथ-साथ
स मदिर का ऐतिहासिक महत्व होने के कारण देश-विदेश के लोग उसे
खने आते हैं। हवाई तथा नौ सेना के प्रशिक्षण का केन्द्र भी वहापर है।

ाट सिरी सकेत

'फुखाओ थौग' नामक ईटो की ऊची पहाडी पर स्थित वाट सिरी
केत (वाट श्री साकेत) की शोभा निराली है। ऊपर जाने के लिए
ीढिया बनी हुई हैं। बीच-बीच मे दीवारो पर जगह-जगह मूर्त्तिया
नी हैं।। 'फुखाओ' कहते है पहाडी को और 'थौग' माने सोना।
ानश्रुति है कि वहापर किसी वृद्धा को सोना प्राप्त हुआ था। उसीने
ास वाट का निर्माण कराया। उसका गर्भगृह भी ठोस है। ऊपर पहुचने
। पहले चीनियो का एक छोटा-सा मदिर है।

ऊचाई पर बने होने के कारण इस मदिर का महत्व इसलिए भी है
के वहा से सारे शहर को देखा जा सकता है। हम शाम को वहा गये थे
ौर अधेरा होने तक ठहरे। पूरा नगर बिजली की रोशनी से जगमगा
उठा। पिकनिक के लिए यह स्थान बहुत ही उपयुक्त है।

इनके अलावा और भी कई मदिर बडे सुन्दर है। पर नगर का सर्व-
श्रेष्ठ मंदिर 'एमरल्ड बुद्ध का मंदिर' (वाट फा केओ) है, जिसकी चर्चा
अगले अध्याय मे करेंगे।

: २२ :

सर्वश्रेष्ठ देवालय

वैकाक के मन्दिरो मे वाट फ्रा केओ अर्थात् एमरल्ड वुद्ध का मन्दिर राजधानी का ही नही, वल्कि ममूचे थाईलैंड का सर्वश्रेष्ठ देवालय माना जाता है। इसी मदिर को देखने के लिए हमारे मेजवान प० रघुनाथ शर्मा तथा अन्य भारतीय मित्रो ने विशेष आग्रह किया था। यह मन्दिर सप्ताह मे केवल एक वार यानी रविवार को खुलता है।

हमने रविवार के अपने कार्यक्रमो मे इस मदिर को देखना भी शामिल किया। उस दिन हमे सवेरे हिन्दू-समाज मे वोलना था, लेकिन वडे जोर का पानी आ गया। हम तैयार होकर कमरे मे बैठे शर्माजी की वाट देखते रहे। शर्माजी कुछ देर से आये। उनके आने पर मभा मे गये, जो थाई-भारत-कल्चरल लॉज के अहाते के दूसरे कक्ष मे थी। सभा से कोई १० बजे छुट्टी पाते ही सीधे एमरल्ड बुद्ध के मन्दिर को देखने गये। घनी बस्ती से निकलकर हमारी टैक्सी राज-मार्ग पर पहुची। वैसे हम कई वार पहले भी उधर से गुजर चुके थे, लेकिन इस वार जव गाडी उस मार्ग पर अवस्थित राज-प्रासाद के सामने जाकर रुकी तो वहा की शोभा और स्वच्छता को निश्चिन्त भाव से देखने का अवसर मिला। प्रसन्नता हुई। नगर का वह भाग वडा वैभवशाली है और भीडभाड तथा शोरगुल से एकदम मुक्त है।

मन्दिर राजमहल के भीतर है। महल मे हर किसीका हर समय आना-जाना होता रहे तो सुरक्षा के काम मे वडी कठिनाई हो सकती है। इसलिए मन्दिर को हफ्ते मे एक दिन खोला जाता है। पुलिस आदि की समुचित व्यवस्था रहती है।

महल के वाहर सडक पर मोटरो की भीड देखकर हमने समझ लिया कि काफी लोग वहा आ गये हैं। फाटक खुला था। उससे अन्दर गये, मदिर मे जाने का वैसे कोई टिकट नही लगता, लेकिन केमरे के लिए टिकट

लेना होता है। मेरे पास केमरा था। इसलिए हमे कार्यालय मे जाना पडा। कर्मचारी ने केमरे की टिकट के लिए ५ टिकल मागे। बोला, "यदि आप चाहो तो केमरे को यहा छोड जाओ और टिकट मत लो। लौटकर केमरा ले जाना।" पर शर्माजी नही माने। कहने लगे, "केमरे को साथ रखना ठीक होगा। अदर बडी सुन्दर चीजे है। केमरा नही ले जाओगे तो उन चीज़ो को देखने पर आपको केमरा न ले जाने का मलाल होगा।" इतना कहकर उन्होने टिकट ले ली और हम आगे बढे।

सामने राजघराने की कई छतरिया (समाधिया) मिली। उनपर निगाह डालते हुए पहले मदिर पर पहुचे। उस मदिर की निर्माण-कला और कारीगरी यद्यपि अन्य मन्दिरो के जैसी थी, तथापि वहा के उन्मुक्त वायुमण्डल मे वह विशेष आकर्षक लगी। उसे देखकर दूसरे मदिर पर पहुचे। शर्माजी ने कहा, "जिस मदिर को देखने आये हैं, वह यह नही है। वह तो तीसरा है।" यह मदिर पहले जैसा था। दोनो की विशालता, चमक-दमक, सुरुचिपूर्णता और सफाई चित्ताकर्षक थी। कई एक विदेशी पर्यटक भी वहा आये हुए थे और मदिरो अथवा समाधियो के चित्र खीच रहे थे।

दूसरे मदिर को देखकर आगे बढे। बहुत-से स्त्री-पुरुष, बच्चे अपने-अपने हाथो मे चढावे की चीज़े लिये उधर जा रहे थे। यही था एमरल्ड बुद्ध का मदिर। उसके बाहर जूते उतारने की व्यवस्था थी। जूते उतारकर हमने रखवाले को सौंप दिये और टिकट ले लिया। मदिर के तीन द्वार थे, जिनमे से हरेक के दोनो ओर एक-एक सिह की, उछाल मुद्रा मे, प्रतिमा थी, जैसे छ सिह उन द्वारो की रखवाली के लिए वहा बैठे हो। बर्मा की भाति यहापर भी देवालयो मे शेरो की बडी-बडी प्रतिमाए देखने मे आती हैं।

मन्दिर के निचले भाग पर चारो ओर पत्थर के छोटे-छोटे गरुड बने थे, जिनकी बनावट और मुखाकृति को देखकर ऐसा लगता था, मानो नीचे से ऊपर तक के सपूर्ण मदिर को वही अपने ऊपर उठाये हुए हो।

तीनो द्वार बडे सुन्दर हैं। उनपर नक्काशी हो रही है और किवाडो पर शीशे जड़े हुए हैं। सुनहरा काम इतनी बारीकी से किया गया है कि

निगाह उसपर से हटना नही चाहती ।

दाई ओर के द्वार से हम भीतर घुसे और अन्दर जो देखा, उसकी स्वप्न मे भी कल्पना नही की थी । उसमे राजसी वैभव बोल रहा था । चादी का फर्श था । मध्य मे ३४ फुट के जडाऊ सिंहासन पर बुद्ध भगवान की मरकत (एमरल्ड) की २ फुट ७ इच की मूर्त्ति थी । मरकत बहुत ही मूल्यवान पत्थर होता है । कहा जाता है, इस मूर्त्ति के बराबर कीमती मूर्त्तिया कम ही मिलती हैं । दक्षिण-पूर्वी एशिया के विभिन्न देशो मे घुमाने के उपरान्त यह प्रतिमा सन १७२८ मे वहा लाई गई थी और उस मदिर मे विराजमान कर दी गई थी ।

मूर्त्ति की पोशाक ऋतु के हिसाब से बदलती रहती है । गर्मी, बरसात और सर्दी इन तीनो ऋतुओ की अलग-अलग पोशाकें हैं । कहने की आवश्यकता नही कि हर पोशाक बहुत ही कीमती है । पोशाक बदलने की विधि राजा या उसके प्रतिनिधि द्वारा समारोहपूर्वक की जाती है । मूर्त्ति के ऊपर प्रकाश की व्यवस्था है । इसलिए ऊचाई पर होने पर भी उसके दर्शन बहुत अच्छी तरह से हो जाते हैं ।

मूर्त्ति के दाए-बाए ठीक वैसी ही मुद्रा मे बुद्ध की तीन-तीन खड्गासनस्थ प्रतिमाए है, दो सामने । ऊपर छत मे आठ बडे-बडे शहतीर लगे हैं, जिनपर टेक देकर खभो द्वारा छत को सहारा दिया गया है । दोनो ओर दो घडिया लगी हैं ।

मदिर के चारो ओर की दीवारो पर बुद्ध के जीवन से सबधित घटनाए विभिन्न रगो मे चित्रित हैं । वे स्मरण दिलाती हैं कि किन-किन अवस्थाओ से होकर तथागत को सबोधि की उपलब्धि हुई थी । मूर्त्ति के सामने बडे धर्माचार्य के बैठने और उपदेश देने के लिए एक कुर्सी रहती है । पास ही माइक की व्यवस्था है, जिससे धर्माचार्य की वाणी सबको सुनाई दे सके ।

चढावे मे प्राय कमल के फूल और दूसरी तरह के फूलो के गुलदस्ते, अगरबत्तिया, मोमबत्तिया और कही-कही अडे तथा चाय आदि चढाने की प्रथा है । इस मन्दिर मे तो नही, लेकिन बौद्ध देशो के अन्य मदिरो मे सोने के वरक मूर्त्तियो पर चिपकाने का आम रिवाज है । ये वरक और चीजो के साथ मदिर के बाहर दूकानो पर बिकते हैं । इसके अतिरिक्त

रुपये-पैसे चढाने का भी प्रचलन है। हर मन्दिर मे पेटी रक्खी रहती है, जिसमे चारो ओर शीशे लगे रहते है और ऊपर पैसा डालने के लिए सूराख रहता है। अन्दर पडे नोटो और सिक्को से पता चलता है कि भक्तजन कुछ-न-कुछ पेटी मे डाले विना नही जाते। कही-कही नोट लटकाने के लिए एक छोटा-सा नुकीला स्टैण्ड रहता है, जिसमे अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार लोग नोट लगा जाते है। इस सारे चढावे का नतीजा यह हुआ है कि अपरिग्रह का पाठ देनेवाले बुद्ध सोने से लद गये हैं और उनके देवालय विपुल सम्पत्ति के स्वामी बन गये हैं।

मदिर मे बच्चो, स्त्रियो और पुरुषो की सख्या काफी थी, जो वहा बैठकर अपने इष्टदेव को श्रद्धाजलि अर्पित कर रहे थे, लेकिन क्या मजाल कि एक शब्द भी किसीके मुह से जोर से निकलता हुआ सुनाई दे जाय। सब मौन प्रार्थना मे लीन थे। हम लोग भी वही मूर्त्ति के सामने बैठ गये और भक्तो की श्रद्धा-भावना को देखने लगे। लोग आते थे, श्रद्धा से तीन बार मूर्त्ति के सामने सिर झुकाते थे और वही बैठ जाते थे। उनका, विशेषकर बच्चो का, अनुशासन सराहनीय था। छोटे-बडे सबकी दृष्टि मूर्त्ति पर केन्द्रित थी। चारो ओर शान्ति व्याप्त थी। वहा बैठकर ऐसा लगता था कि चित्त निर्मल हो गया है। ऐसा वायुमडल और ऐसी शान्ति हमारे मदिरो मे कहा मिलती है! वहा तो शोर इतना होता है कि मन को एकाग्र करके कुछ चिन्तन करना एक प्रकार से असम्भव हो जाता है। उस मदिर मे बैठकर एक क्षण मे पता चल जाता है कि वाणी से मौन की महिमा कितनी अधिक है।

वडी देर तक बैठे-बैठे हम देव-मूर्त्ति को, उसके बहुमूल्य सिंहासन को और दीवारो की चित्रकारी को देखते और सराहते रहे। श्रद्धा से विनत हाथ जोड़े अनगिनत भक्तो की आखो मे भगवान् के दर्शन करते रहे। वहा का चित्र लेने का मोह हुआ। इशारे से मैंने शर्माजी से पूछा कि क्या चित्र ले लू तो उन्होने कहा, "ले लो।" लेकिन वहां का वातावरण इतना गम्भीर था कि मुझे चित्र लेने का यकायक साहस न हुआ।

उठने को जी नही करता था, पर बाहर प्रतीक्षा करते दर्शनार्थियो की सख्या को देखकर हमे अनिच्छापूर्वक बाहर आना पडा। बाहर आकर

जूते पहनते-पहनते एक बार फिर अन्दर जाने को मन हुआ। गये। कोने में खडे होकर वहा की एक-एक चीज को देखने लगे। इतने मे वडे ही मधुर स्वर मे प्रार्थना के स्वर गूज उठे। उन्होने वहा के वातावरण को और भी स्निग्ध बना दिया। हिम्मत करके मैंने केमरा खोला और चित्र ले लिया।

बाहर आकर बातें करने लगे, पर सच यह है कि हमारा अन्तर मौन की महिमा से अभिभूत था। शर्माजी हमें दूसरे मंदिर के पीछे ले गये, जहा कम्बोडिया के विश्व-विख्यात मदिर अकोर वाट का विशाल मॉडल था। अकोर वाट हमे जाना था, इसलिए उस मॉडल को बडी दिलचस्पी के साथ देखा।

परकोटे के साथ-साथ चारो ओर कोई एक मील के घेरे की गैलरी थी। सभवत उसका निर्माण परिक्रमा की दृष्टि से किया गया होगा, लेकिन आज तो वहा कला का विलक्षण सग्रह हैं। शर्माजी बडे उत्साह से वहा ले गये। प्रासाद के मुख्य द्वार के निकट से आरम्भ करके हमने उस पूरी गैलरी को देखा और उसकी चित्रकला पर मुग्ध रह गये। सम्पूर्ण रामायण की कथा विशाल रगीन चित्रो मे अकित की गई है। लगभग बारह फुट ऊची दीवार है, जिसपर नीचे डेढ फुट जगह छोड़कर अनेक रगो मे बडे-बडे चित्र बनाये गए हैं। ऊपर समुद्र के दृश्य हैं, नीचे रामायण के विविध प्रसग। चित्रों को दर्शक छू न सकें, इसलिए दीवारो से कुछ फासले पर लोहे की रेलिंग लगादी गई है। उसीके सहारे-सहारे लोग चलते हैं।

पूरी रामायण को चित्रित करने की मूल कल्पना जिसके मन मे उठी होगी, वह वास्तव में धन्य पुरुष होगा। जिन्होंने उस कल्पना को मूर्त्त-रूप दिया होगा, वे भी निस्सन्देह धर्मनिष्ठ जीवन के धनी रहे होगे। चित्रों की विशालता जहा दर्शको का ध्यान खीचती है, वहा भावो की अभिव्यक्ति उनके हृदय को पुलकित कर देती है। चित्र बडे ही सजीव हैं। भवनो की बनावट और व्यक्तियों की आकृति पर थाई प्रभाव है, लेकिन उनसे रामायण की कथा को समझने मे कोई कठिनाई नहीं होती। इस समृद्ध सग्रह के बीसियो चित्र ऐसे हैं, जो बार-बार आंखो के सामने उभर

आते है। गृद्धराज आर्तवाणी को सुनकर तुरन्त पहचान लेते हैं कि वह सीताजी की आवाज है। हनुमान के लकागमन के अवसर पर मार्ग मे सुरसा के बाधा उपस्थित करने का चित्र तो बडा ही मनोरजक है। सुरसा का खुला हुआ भयानक मुह और उसमे प्रविष्ट होने के लिए उद्यत हनुमान देखते ही बनते हैं। यह चित्रकारी लगभग २०० वर्ष पुरानी है। कही-कही से रग छूट गये हैं। उनकी मरम्मत कर दी गई है, अथवा की जा रही है।

पूरी चित्रकला को देखकर थाई लोगो के इस दावे का औचित्य समझ मे आ गया कि भगवान राम उनकी अजुध्या मे पैदा हुए थे। रामकथा और रामायण के प्रति जितना अधिक प्रेम और श्रद्धा उस देश मे है, उतनी भारत मे कहा है!

: २३ :

अन्य दर्शनीय स्थल

हम वता चुके हैं कि वैंकाक की दर्शनीय चीजो मे पहला स्थान वहा के बौद्ध मदिरो का है। धर्म, कला और सस्कृति का उनमे अद्भुत सगम है।

राष्ट्रीय सग्रहालय

कला की दृष्टि से वहा का राष्ट्रीय सग्रहालय वडा समृद्ध है। उसे देखने के लिए वहा के सम्माननीय साहित्यकार फाया अनुमान रचथौन ने हमे अधिकारी के नाम एक चिट दे दी थी। सुविधा होते ही वहा पहुचे। अधिकारी से मिलने पर उन्होने तुरन्त अपने सहयोगी को हमारे साथ कर दिया। यह सग्रहालय पहले राजमहल था, जिसका निर्माण वैंकाक-युग के आरम्भिक काल मे, सन् १७८२ मे, हुआ था। बाद मे राजा चूलालौंगकर्न (राम पचम) ने उसके तीन कमरे सग्रहालय बनाने के लिए दे दिये। सन १९२६ मे राजा प्रजाधिपोक (राम सप्तम) ने पूरा प्रासाद ही इस लोकोपयोगी कार्य के लिए अर्पित कर दिया। आज उसमे थाईलैण्ड के प्रागैतिहासिक काल से लेकर वर्तमान समय तक की कलापूर्ण वस्तुओ का वडा सुन्दर एव मूल्यवान सग्रह है।

थाईलैण्ड की कला दो प्रमुख भागो मे बाटी जा सकती है। पहली है प्रागैतिहासिक काल की, दूसरी ऐतिहासिक काल की। ऐतिहासिक काल की कला दस शैलियो मे विभाजित की जा सकती है

१ ईसाई युग के प्रारम्भ मे पाचवी शती तक प्राप्त प्राचीन विदेशी वस्तुए

२ द्वारवती (६ठी से ११ वी शती)

३ प्राचीन हिन्दू देवी-देवताओ की प्रतिमाए (६ठी से ८वी शती)।

४ श्रीविजय (७वी से १३वी शती)

५ लवपुरी (१२-१३ वी शती)

६ चागसेन (१२ मे १६ वी शती)
७ सुखोथाई (१३-१४वी शती)
८ ऊ थौग (१२ अथवा १३–१५वी शती)
९ अजुध्या (१४वी शती से १७६७ तक)
१० बैंकाक (१७८२ से वर्तमान शताब्दी तक)

सग्रहालय मे २८ कक्ष है। पहले कक्ष का निर्माण सबसे पहले राजा ने कराया था। अब 'वाजिरायान पुस्तकालय' के नाम से उसका उपयोग पाडुलिपिया रखने के लिए होता है। बैंकाक का यह सर्वप्रथम सार्वजनिक पुस्तकालय है। इस विशाल कक्ष मे राजा मौगकट का आदम कद का चित्र लगा है और स्लेट से ढकी वह मेज है, जिसपर वह बडे-बडे हिसाब किया करते थे। वही पर अजुध्या-काल से लेकर बैंकाक के चौथे शासक के समय की अलमारिया है, जिनपर वडी बारीक चित्रकारी हो रही है। चौदहवी शताब्दी के थाई भाषा के शिलालेख उत्तरी दीर्घा मे और विदेशी भाषाओ के दक्षिणी दीर्घा मे रक्खे है। उनके अतिरिक्त विभिन्न सचित्र ग्रथ तथा कई कालो के हस्तलेख भी है। इसी कक्ष मे सस्कृत के अनेक शिलालेख-पट्ट हैं।

दूसरे कक्ष मे थाईलैण्ड मे सबसे अधिक विख्यात बुद्ध की प्रतिमाओ मे से एक है, जिसमे बुद्ध चलने की मुद्रा मे दिखाये गए हैं। इसी कक्ष के सामने राजा चूलालौंगकर्न के शासन-काल (१८६८–१९१०) मे ढली विष्णु की विशाल मूर्त्ति है, जिसके हाथ मे धनुष-वाण है। अदर भगवान बुद्ध के जीवन की घटनाओ से सबधित भित्ति-चित्र हैं। किताबो की तीन अलमारिया है, जिनपर रामायण की कथाए अकित है।

तीसरे कक्ष मे थाईलैण्ड की सबसे सुन्दर कला-वस्तुए है। इसी कक्ष मे राज-सिहासन, सुखोथाई और अजुध्या-शैली की बुद्ध एव हिन्दू देवी-देवताओ की प्रतिमाए, श्रीविजय-शैली की अवलोकतेश्वर की मूर्त्ति आदि-आदि चीजे हैं। कक्ष की दीवारो के सहारे-सहारे द्वारवती-काल से लेकर बैंकाक-युग तक की धातु की विभिन्न कला-कृतिया प्रदर्शित है। भारतीय अमरावती शैली की (दूसरी से चौथी शती) बुद्ध-प्रतिमा भी यहा देखी जा सकती है।

चौथे कक्ष मे बुद्ध की पाषाण प्रतिमाए तथा तिजोरी मे कुछ मूल्यवान वस्तुए हैं और पाचवें मे राजाओ की पालकिया तथा हौदे। छटा कक्ष बडा मनोरजक है। उसमे विभिन्न खेलो से सबधित वस्तुए, नाट्यकला से सबधित चेहरे, मुकुट, छाया-नाटको मे काम आनेवाले उपादान आदि हैं। उन्हें देखकर मालूम होता है कि पुराने लोग कितने मनोरजन-प्रेमी थे।

आठवें कक्ष के ऊपरी भाग मे एक परदे पर रामायण के कई प्रसग अकित है। आगे के कुछ कक्षो मे नौकाओ तथा हाथी आदि वाहनो के मॉडल है। ग्यारहवें मे थाईलैण्ड के प्रत्येक युग के सिक्के और बारहवें मे शाही हाथी, बन्दूकें, तोपें, भाले तथा ढोल हैं। तेरहवें और चौदहवें कक्ष मे सैनिको का सामान और झडे है। पन्द्रहवें मे कुछ रगीन चित्र और उसके ऊपरी भाग मे धार्मिक वस्तुए, जैसे बौद्ध भिक्षुओ को विशेष अनुष्ठानो मे दिये जानेवाले पखे आदि हैं, नीचे के भाग मे पोशाकें है, जो बताती है कि पुराने समय मे किस प्रकार की डिजाइनें प्रचलित थी।

सत्रहवें मे थाईलैण्ड के प्रागैतिहासिक काल की वस्तुए है। अठारहवे मे वाद्ययत्र, उन्नीसवें में राज-चिह्न, जैसे राजाओ के सिहासन आदि। इक्कीसवें की दक्षिणी दीर्घा मे द्वारवती-शैली की विशाल मूर्त्तियो के अतिरिक्त हिन्दू देवी-देवताओ की प्रतिमाए तथा जावा की कला-कृतिया हैं। बाईसवें मे रत्न-जडित वस्तुए है, जो थाई-कला का सुन्दर नमूना है।

चौबीसवें कक्ष मे वे विमान हैं, जिनमे राजाओ के शव ले जाये जाते थे। काठ का एक फूलदान तथा लकडी की दूसरी चीजें है।

वस्तुत यह पूरा सग्रहालय धातु प्रतिमाओ के लिए प्रसिद्ध है। हिन्दू देवी-देवताओ मे ब्रह्मा, विष्णु, शिव, पार्वती, लक्ष्मी, नदी, गणेश, हरिहर (अष्टबाहु) आदि की प्रतिमाओ की भरमार है। इन मूर्त्तियो मे चेहरो की भावभगिमा देखते ही बनती है। थाईलैण्ड मे मूर्त्तिकला का श्रीगणेश बुद्ध अथवा देवी-देवताओ की मूर्त्तिया ढालने या गढने के निमित्त हुआ था और आज भी वहा की स्थापत्य-कला का मूल उद्देश्य धर्म को पोषण देना है। यही कारण है कि धार्मिक मूर्त्तिया वहा बडी सख्या मे मिलती है।

थाईलैण्ड मे हमने इतने मन्दिर देखे और इस सग्रहालय को भी बडे ध्यान से देखा, पर हमे कही पर एक भी अश्लील मूर्त्ति दिखाई नही दी।

सभवत वहा का धार्मिक वातावरण इतना प्रभावशाली रहा होगा कि कलाकार नग्न अथवा वासनोत्तेजक चित्र या मूर्ति बनाने की कल्पना नही कर सके होगे । यह भी हो सकता है कि दैनिक जीवन मे व्याप्त घिनौनेपन को देखकर उन्हे उस ओर से वितृष्णा हो गई हो और उन्होने अनजाने क्षणो मे भी अपनी तूलिका अथवा छेनी को मानव के अशिव की व्याख्या का माध्यम न बनने दिया हो । जो हो, वहापर मूर्ति-कला इतनी सजीव है कि अनेक मूर्त्तियों को देखकर लगता है, वे अभी बोल पडेंगी ।

चूलालौंगकर्न विश्वविद्यालय

बैंकाक के चूलालौगकर्न विश्वविद्यालय का भवन स्वत ही पर्यटको का ध्यान अपनी ओर खीच लेता है । वह जितना विशाल है, उतना ही कलापूर्ण भी है । थाईलैण्ड मे प्राइमरी (प्रथोम) अर्थात १ से ४ कक्षा तक की शिक्षा नि शुल्क और अनिवार्य है । मिडिल (मथयोम) तथा हाई-स्कूल की कक्षाए ५ से १२ तक है, अर्थात हमारे यहा के इटर के बराबर । उसके उपरान्त विश्वविद्यालय की शिक्षा आरम्भ हो जाती है । शिक्षा का माध्यम थाई भाषा है, पर विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम मे अगरेजी भी एक ऐच्छिक विषय है ।

वैसे प्रमुख विश्वविद्यालय वहापर एक है, लेकिन शिक्षा के जिन चार प्रमुख अगो को लेकर प्रत्येक अग को विश्वविद्यालय का दर्जा दे दिया गया है, वे है १ धर्मशास्त्र (धम्मसात), २ कृषि (कसेती), ३ वैद्यक शास्त्र (फैतेसात),४ ललित-कला । इनकी व्यवस्था तत्सबधी सचिवालयो के अन्तर्गत है ।

विश्वविद्यालय मे प्रवेश के लिए छात्र-छात्राओ को एक विशेष परीक्षा देनी पडती है, जिसका मुख्य उद्देश्य यह है कि उच्च शिक्षा मे केवल वही विद्यार्थी जा सकें, जो योग्य और क्षमतावान हो । विश्वविद्यालय के प्रत्येक विभाग मे लडके-लडकिया साथ पढते हैं । वहा के नियम इतने कडे हैं कि छात्रो को पढाई-लिखाई की ओर से असावधान होने का अवसर प्राय. नही रहता । कोई छात्र परीक्षा मे एक बार से अधिक अनुत्तीर्ण हुआ तो उसे निकाल दिया जाता है । एक विषय मे असफल होने पर उसे फिर परीक्षा देने की सुविधा रहती है, जिससे उसका एक पूरा

वर्ष व्यर्थ जाने से बच जाता है ।

विश्वविद्यालय की सर्वोच्च परीक्षा एम० ए० की है, जिसे वहा 'विद्वान' (महा विथवान) कहते हैं । वह छ वर्ष मे पूरी होती है ।

विश्वविद्यालय की उन दिनो छुट्टी थी, इसलिए हम उसको क्रियान्वित रूप मे तो नही देख सके, लेकिन बहुत-से लोगो ने हमे बताया कि वहा के छात्रो मे अनुशासनहीनता नही है और उनके साथ अध्यापको के सबध बडे मधुर हैं ।

चिडियाघर

बैंकाक का चिडियाघर बहुत बडा है । चारो ओर से पानी-भरी खाई से घिरा है । प्रवेश टिकट से होता है । फिर भी हमने देखा कि काफी भीड रहती है । जानवरो तथा पशु-पक्षियो की विविधता की दृष्टि से वह हमे अच्छा लगा । ध्रुव पर मिलनेवाले भालू, काला तेंदुआ, शेर-बबर, जेबरा, आदि ने हमे विशेष रूप से आकृष्ट किया । हाथी के बच्चे वहा कई थे और बडे जोर से चिघाड रहे थे । उनकी इच्छा के विरुद्ध उन्हें कटघरो मे बद कर दिया गया था और वे अपनी मुक्ति के लिए पूरा जोर लगाकर मानो याचना कर रहे थे । पक्षियो मे तोतो और मैनाओ का सग्रह बहुत मूल्यवान था ।

सर्प-पालक सस्था

हमे बताया गया था कि बैंकाक की 'सर्प-पालक सस्था' अपनी विशेषता रखती है । थाईलैण्ड मे पाये जानेवाले सभी प्रकार के साप वहा पाले जाते हैं और सैकडो सापो को रोज खिलाया-पिलाया जाता है । शुक्रवार को उनका विष निकालते हैं । हमें यह भी बताया गया कि सापो के काटने से थाईलैण्ड मे हर साल हजारो मौतें होती थी, लेकिन इस सस्था के खुलने पर एक ऐसा इजेक्शन तैयार हुआ है, जिससे अब बहुतो की जान बच जाती है । बडे कौतूहल से हम उस सस्था को देखने गये । पहुचने पर देखा कि वह सस्था क्या, एक अस्पताल है, जिसमे साप तथा कुत्ते के काटे का इलाज होता है । उसीमे सापो के दो विभाग थे । एक मे कोबरा थे, दूसरे मे क्रेट । दो गहरी खाइया बनाकर उनपर जाली लगा दी गई थी, जिनके भीतर साप इधर-से-उधर दौडते थे । कुछ साप तो बहुत ही

फुर्तीले थे, कुछ आकार मे बडे थे । उन्हें यहा से वहा दौडते देखकर जहा मनोरंजन होता है, वहा डर भी लगता है ।

सफान पुल

चौफया नदी का सफान पुल राजधानी के अनुरूप ही है । उसके पास ही राम प्रथम की विशाल मूर्त्ति है, जिसकी पोशाक मुख्यत भारतीय है, पर सिर पर टोप लगा है । मूर्त्ति भावपूर्ण है । सामने चौक है । वहा खडे होकर जब हम मूर्त्ति को देख रहे थे, तो हमारे कानो मे थाई सगीत की ध्वनि पडी । देखा, एक छोटे-से समुदाय मे कोई थाई लडकी गा रही थी और उसके साथ काष्ठ तरग, मृदग, बासुरी आदि वाद्य बज रहे थे । कुछ देर सगीत का आनन्द लेकर ऊपर पुल पर पहुचे । पुल को देखकर कलकत्ते के हावडा-पुल की याद हो आई । सफान पुल उतना बडा नही है, पर शैली लगभग वही है । जहाज आते हैं तो वह बीच से खुल जाता है । नदी का पाट यहा काफी चौडा है और उसमे बडी-बडी नौकाए और जलपोत बराबर विचरण करते हुए दिखाई देते हैं ।

बालोद्यान और प्रपात

पुल से आगे एक कृत्रिम प्रपात देखा, जो बालोद्यान का अग था । एक पहाडी-सी बनाकर ऊपर से प्रपात के गिरने की व्यवस्था की गई है । सामने जलाशय है, जिसमे बिजली की रग-बिरगी बत्तिया लगाई गई हैं । उनकी जगमगाहट से उस सारे सौंदर्य को बडा लुभावना बनाया गया है । आदमी मे कल्पना-शक्ति हो तो कितनी सुन्दर चीजो का निर्माण किया जा सकता है ।

काफी आगे तक की यह बस्ती नई बनी है, जिसमे आने-जाने के लिए चौडी सडकें हैं । उनके किनारे-किनारे बडी-बडी दूकानें है । आगे एक गोल घेरे मे अश्वारोही राजा प्रजाधिपोक की मूर्त्ति है । इस सडक की अपनी निराली शान है ।

रछवन बाजार और नई सड़क

शहर का रछवन बाजार कपडे के थोक व्यापार का प्रमुख केन्द्र है । दुनिया-भर का कपडा वहापर खरीदा जा सकता है । छोटी-बडी दूकानें कपडो से भरी है ।

अन्तर्देशीय व्यापार का केन्द्र सेम पेग (नई सडक) है, जिसकी चहल-पहल देखते ही बनती है। थाईलैण्ड मे आनेवाला सारा सामान इसी सडक पर होकर गुजरता है। यूरोप. चीन, अमरीका, भारत आदि देशो की वडी-बडी व्यावसायिक कम्पनियो और बैंको को देखकर लगता है, बैंकाक ससार के बहुत वडे बाजारो मे से है।

फौराट

फौराट जौहरियो का बाजार है, जहा-सोने-चादी, हीरे-मोती आदि का व्यापार होता है। दूकानो पर नये-से-नये ढग के आभूषण मिलते हैं। अधिकाश दूकानें चीनियो की सम्पत्ति हैं।

नहरें

नहरें बैंकाक की शोभा हैं। सारे नगर मे नहरो का जाल विछा है और इसी कारण इस नगर को 'पूर्व का वेनिस' कहा जाता है। दिन मे एक बार इन नहरो मे पानी आता है। उस समय उनमे नावें चलती हैं। जब वह पानी उतरता है तो अपने पीछे कीचड और गदगी छोड जाता है, जिससे रोग के कीटाणु उत्पन्न होते हैं। बैंकाक की आधी बीमारियो का कारण पानी की यही गदगी है। इसी कारण अब नहरो को पाटा जा रहा है।

तैरते बाजार

चौफया नदी के तैरते बाजार वहा के लोक-जीवन की अच्छी झाकी प्रस्तुत करते है। इन बाजारो मे 'थातियन' बाजार प्रमुख है, जो नदी के किनारे-किनारे बहुत दूर तक फैला है। उसमे साग-भाजिया, फल, मछली-केंकडे तथा दूसरी बहुत-सी चीजें मिलती हैं। सामान से भरी नावें नदी मे इधर-से-उधर दौडती रहती हैं। उन्हीमे खरीद-फरोख्त होती है। सबेरे के समय वहा खूब चहल-पहल रहती है। अपनी नाव मे बैठे-बैठे ही आप जो चाहें खरीद सकते हैं। बैंकाक के मध्यवर्गीय परिवारो की गृहणिया ताजी साग-भाजी, फल आदि खरीदने के लिए बहुत बडी सख्या मे वहा आ जाती हैं। उनके सौंदर्य और माधुर्य से वहा का वातावरण वडा सरस हो उठता है। नहर और नदिया थाईलैण्ड के व्यावसायिक जीवन की रीढ हैं। नदी को वहा 'मेना' कहते हैं। मे का अर्थ है माता, 'ना' माने पानी, अर्थात् जलमाता।

: २४ :

एक थाई विद्वान से चर्चाएं

अपने प्रवास मे हम जिन-जिन देशो मे गये, वहा के प्रमुख लेखको, विद्वानो तथा चितको से मिलने का हमने अधिक-से-अधिक प्रयत्न किया। बैंकाक पहुचते ही हमने प० रघुनाथ शर्मा से अनुरोध किया कि वह वहा के गण्यमान्य साहित्यकारो से हमारी भेट अवश्य करा दें। बडी तत्परता से उन्होने थाई भाषा, साहित्य और इतिहास के लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान फाया अनुमान रचथौन से मिलने की व्यवस्था करा दी। थाई-भारत-कल्चरल लॉज के वह अध्यक्ष हैं, इसलिए समय मिलने मे अधिक कठिनाई नही हुई।

शर्माजी के साथ विष्णुभाई और मैं एक दिन शाम को उनके निवास पर पहुचे। मकान बहुत वडा नही था, लेकिन खुली और साफ-सुथरी बस्ती मे था। फाटक खोलकर जैसे ही अन्दर गये कि दो कुत्ते बड़ी तेजी से दौडकर आये और बडे जोर से भौंकने लगे। हम लोग ठिठक गये। उनमे एक कुत्ता तो बेहद फुर्तीला था। दूसरा डील-डौल मे ऐसा था कि देखते ही दिल दहल उठे। उनकी आवाज को सुनकर अन्दर से कोई सज्जन आये और उन्होने कुत्तो को हटाकर एक ओर कर दिया। फिर हमे साथ ले जाकर भीतर ड्राइग रूम मे विठा दिया। ड्राइग रूम लकडी का था, वडा ही स्वच्छ और सुरुचिपूर्ण। सामने अलमारियो मे बहुत-सी किताबे करीने से रक्खी थी। ऊपर खिलौने सजे थे। पास मे एक बड़ी घडी टगी थी। एक कोने मे तिपाई पर काच की सुराही रक्खी थी।

ड्राइग रूम की चीजो को देख रहे थे कि फाया अनुमान रचथौन आ गये और हाथ जोडकर हमारा अभिवादन करके सोफा पर बैठ गये। वह बुशशर्ट और पेंट पहने थे। चेहरा तथा सिर एकदम बालो से रहित था। आखे उभरी थी, जो उनकी निश्च्छलता और चिंतनशीलता का परिचय देती थी।

चर्चा आरम्भ करते हुए विष्णुभाई ने कहा, "आप सन् १९४६ मे

एशियाई देशो की काफ्रेस मे थाई शिष्ट-मण्डल के नेता के रूप मे दिल्ली आये थे, तब मैं आपसे मिला था। आपने कहा था कि हमसे अधिक हमारी सस्कृति के रक्षक आप है। आपने यह भी बताया था कि थाई भाषा पर सस्कृत का बडा प्रभाव है। मुझे याद है, आपने कहा था कि आपका नाम मूल मे सस्कृत नाम है—अनुमान राजधन, लेकिन स्यामी उच्चारण मे 'राजधन' का 'रचथौन' हो गया है, यद्यपि लिखा वह शुद्ध सस्कृत-रूप मे ही जाता है। उस समय की लम्बी बातचीत पर मैंने एक लेख लिखा था।"

रचथौन बडे ध्यान से उनकी बात सुनते रहे और उनके समर्थन मे बीच-बीच मे सिर हिलाते रहे। मैंने पूछा, "आप उस समय दिल्ली मे कितने दिन रहे थे ?"

बोले, "ज्यादा दिन नही रहा।"

"आप दूसरी बार भारत गये या नही ?"

"जीहा, मैं दूसरी बार सन् १९५५ मे बौद्ध कार्फ्रेस मे भारत गया था। उस समय अशोक होटल मे ठहरा, लेकिन कई रातें रेल मे कटी। आगरा गया, वहा से फतेहपुर सीकरी। फिर काशी, कुशीनारा, बोधगया होता हुआ कलकत्ता पहुचा।"

मैंने कहा, "तो आपने स्वतत्र भारत भी देखा है। लौटकर आपने भारत के बारे मे कुछ लिखा ?"

"जीहा, एक लेख लिखा, पर वह थाई भाषा मे है। मेरी कठिनाई यह है कि मेरे पास काम बहुत रहता है और आप जानते ही हैं कि समय सीमित है। इस समय मैं थाई विश्वकोष की तैयारी मे लगा हू। उसके साथ-साथ 'नेशनल गजेटीयर ऑव थाईलैण्ड' का काम भी चालू है। उसमे कोई दो हजार पृष्ठ होगे। वह इपीरियल गजेटीयर आव इडिया की भाति नही होगा। इसके अलावा मैं थाई भाषा के चालू शब्दो की डिक्शनरी (डिक्शरी ऑव थाई करेंट वर्ड्स) तैयार कर रहा हू, जिसके पूर्ण होने मे चार-पाच साल लगेंगे। थाई इतिहास मे सशोधन का काम भी चल रहा है। इस तरह आप देखते है कि मेरे हाथ कितने घिरे हुए हैं।"

मैंने पूछा, "आपने मौलिक रूप मे क्या लिखा है ?"

मेरे इस प्रश्न पर जैसे कुछ सोचते हुए बोले, "मौलिक रूप मे मैने थाई सस्कृति, रीति-रिवाज, नारी-समाज, विवाह-पद्धति, कृषि आदि पर काफी लिखा है।"

"आपकी किसी पुस्तक का अगरेजी या अन्य किसी भाषा मे अनुवाद हुआ है?"

"कुछ चीजे तो मैंने अगरेजी मे ही लिखी है। थाई भाषा की एक रचना का अनुवाद अगरेजी मे हुआ है—'लाइफ ऑव ए फार्मर इन थाईलैण्ड" (थाईलैण्ड मे एक कृषक का जीवन)। वास्तव मे मेरी कठिनाई यह है कि मै अगरेजी अच्छी तरह नही जानता।"

हमसे यह छिपा न रहा कि उन्होने यह बात बहुत-कुछ शिष्टाचार के रूप ही कही थी। सच यह था कि वह अगरेजी अच्छी तरह जानते थे। प्रसग बदलते हुए विष्णुभाई ने पूछा,"वर्तमान थाई साहित्य अर्थात, उपन्यास, कहानी आदि की क्या स्थिति है?"

उन्होने कहा, "उनका विकास इस समय बडी तेजी से हो रहा है। नये-नये लेखक तैयार हो रहे हैं। लेकिन असल बात यह है कि उनमे से अधिकाश का विशेष अध्ययन नही है और बहुत-से तो पैसे के लिए लिखते है। फिर भी थाई-साहित्य की अभिवृद्धि आशाजनक रूप मे हो रही है।"

विष्णुभाई ने आगे पूछा, "आपके यहा अन्य भाषाओ से अनुवाद भी हो रहे है क्या?"

"सरकार कुछ कर रही है। लेकिन हमारे यहा बर्मा-ट्रासलेशन-सोसायटी जैसी सस्था नही है।"

विष्णुभाई ने आगे सवाल किया, "यूनेस्को विभिन्न भाषाओ के उत्तम ग्रथो का अनुवाद करा रहा है। हमारे देश से प्रेमचन्दजी के 'गोदान' को अनुवाद के लिए लिया गया है। और भी बहुत-से ग्रथ चुने गये है। क्या आपके यहा मे भी कोई पुस्तक ली गई है?"

वह बोले, "अभी तो नही, पर आपकी और हमारी तुलना क्या! आपके यहा कितने विश्वविद्यालय हैं। हमारे यहा तो कुल एक है।"

मैंने कहा, "दो देशो के राजनैतिक सबध स्थायी नही होते। पर साहित्यिक और सास्कृतिक सबधो की जडे गहरी होती हैं। उन्हीपर हमे

जोर देना चाहिए। यह इसलिए भी आवश्यक है कि वर्तमान समय मे राजनैतिक विग्रह बहुत है।"

"आपकी बात ठीक है।" वह बोले, "लेकिन साहित्यिक आदान-प्रदान मे सबसे बडी कठिनाई अनुवाद की है। दूसरे, यह काम व्यय-साध्य भी है। फिर भी ऐसे कामो को 'थाई-भारत-कल्चरल लॉज' जैसी सस्था उठा सकती है।"

मैंने कहा, "मुझे आपके यहा की स्थिति का पता नही, लेकिन अगर चुनी हुई लोकप्रिय पुस्तको का भारतीय भाषाओ मे रोचक शैली मे प्रामाणिक अनुवाद हो तो उनके प्रकाशन की व्यवस्था हो सकती है। गुजराती के सुविख्यात लेखक झवेरचन्द मेघाणी ने बर्मा के लोकजीवन पर प्रकाश डालते हुए एक बडा सुन्दर एव भावपूर्ण उपन्यास लिखा है, जिसका अनुवाद मराठी और हिन्दी मे हुआ है। वह बहुत ही पसन्द किया गया है। यदि इस प्रकार की चीजें लिखी और अनुवाद के लिए चुनी जाय तो उनके प्रकाशन की आसानी से व्यवस्था हो सकती है।"

"आपकी बात सही है।" उन्होंने बडी गंभीरता से कहा, "पर रोचक और प्रामाणिक अनुवाद करना टेढी खीर है। उसके लिए दोनो भाषाओ पर पूर्ण अधिकार चाहिए।"

इसी बीच उनकी परिचारिका एक थाई युवती चार गिलासो मे पानी लेकर आई और घुटनो के बल टिककर बडी विनम्रता से उसने गिलासो को मेज पर रख दिया। फिर सिर झुकाये बडी शालीनता से चली गई।

घडी मे पौने सात हो रहे थे। हमे लगा कि कही देर तो नही हो गई। उठने का हमने जैसे ही इशारा किया, वह बोले, "नही, मुझे कोई जल्दी नही है। आप बैठें। मैं शाम को ६ बजे भोजन कर लेता हू।" भोजन की बात आने पर उन्होने कहा, "मैं करीब-करीब शाकाहारी हू। चिकनाई कम-से-कम लेता हू। उससे बचने की मेरी कोशिश रहती है।"

चर्चा को चालू करने की दृष्टि से मैंने कहा, "भारत और थाई सस्कृतियो मे बडी समानता है।"

विष्णुभाई ने इसकी पुष्टि करते हुए कहा, "आज हम वाट को देखने गये थे। वहा की दीवारो पर रामायण के अनेक प्रसग खुदे हुए थे।'"

"जीहा," वह बोले, "ऐसे बहुत-से प्रसग यहा मिलते हैं। पर यह कहना कठिन है कि वे किस रामायण पर आधारित हैं। विभिन्न देशो मे रामायण पृथक्-पृथक् रूपो मे प्रचलित है ।"

"आपने कौन-सी रामायण पढी है ?"

विष्णुभाई के इस सवाल का उत्तर देते हुए उन्होने कहा, "पढी तो मैंने कई रामायणें है, पर अध्यात्म रामायण को मैं आधारभूत मानता हूं। आपके देश मे भी रामायण के कितने ही सस्करण हैं—वाल्मीकि रामायण, तुलसी-रामायण, कम्बन-रामायण, बगाल मे कृतिवास-रामायण, इसी प्रकार इण्डोनेशिया, वियतनाम, मलाया, बर्मा, कम्बोडिया आदि के अपने-अपने सस्करण हैं ।"

विष्णुभाई ने कहा, "बर्मा मे तो रामायण यही से गई है ।"

"जी नही, वहा कम्बोडिया का संस्करण प्रचलित है । (हँसकर) पता नही, वे लोग क्यो और कैसे थाईलैण्ड को बीच मे छोडकर कम्बोडिया पहुच गये ।"

मेरे इस सवाल का कि क्या आपके यहा गाधीजी की आत्मकथा का अनुवाद हुआ है, उत्तर देते हुए उहोने कहा, "नही, गाधीजी की किसी पुस्तक का अनुवाद नही हुआ। हा, उनकी आत्मकथा के आधार पर स्वामी सत्यानन्द पुरी ने गाधीजी की जीवनी लिखी है ।"

शर्माजी ने कहा, "नेहरूजी की 'मेरी कहानी' का थाई भाषा मे अविकल अनुवाद हुआ है ।"

"विश्व इतिहास की झलक' का अनुवाद नही हुआ ?" विष्णुभाई ने कहा, "वह तो संसार की सर्वोत्तम कृतियो मे से है ।"

रचथौन बोले, "नही, उसका अनुवाद नही हुआ ।" फिर प्रसग बदलते हुए उन्होने पूछा, "आप लोग यहा क्या-क्या देख चुके हैं ?"

हमारे बताने पर वह बोले, "यहा के सग्रहालय मे आपने हनुमान को देखा होगा, पर यहा के हनुमान आपके हनुमान से भिन्न हैं। वह आपके यहा की भाति बाल-ब्रह्मचारी नही हैं। उन्होने पाच विवाह किये और वह सीता और राम के पुत्र माने जाते हैं ।"

इसके उपरान्त उन्होंने शर्माजी की ओर संकेत करके कहा, "साहित्य

के आदान-प्रदान का काम इनके द्वारा 'लॉज' से होना चाहिए ।"

शर्माजी ने मुस्कराकर कहा, "मैं तो अब ६३ साल का हो गया हू ।"

इसपर रचथौन हँस पडे । बोले, "उसमे नौ बरस और जोड दीजिये । मैं ७२ का हू । पिछले दिनो जब में हागकाग जाने को था तो डाक्टर ने कहा कि आप अब ७० से ऊपर हो गये हो, सफर मत करो । हम आपकी कोई जिम्मेदारी नही ले सकते । पर मैं तो गया ही ।"

समय बहुत हो गया था । हमने चर्चा समाप्त की । हमारे उठते-उठते वह बोले, "मेरी पत्नी को अतिथियो का आना बहुत पसन्द है । कोई नही होता तो मैं बराबर लिखने मे लगा रहता हू न ! यह उन्हें पसद नही है । वह चाहती है कि मैं खूब तन्दुरुस्त रहू ।"

उनकी पत्नी पास ही कमरे मे दूसरी ओर को बैठी थी । हमने वहा जाकर उन्हें प्रणाम किया । वह बडी फुर्तीली दिखाई दी । पान खूब खाती है ।

रचथौन हमे बाहर पहुचाने आये । विदा लेते हुए मैंने कहा, "आप दीर्घजीवी हो और नई पीढी को आपका मार्ग-दर्शन बहुत दिनो तक मिलता रहे ।"

हाथ जोडकर बडे स्नेह से नमस्कार करते हुए उन्होने जो शब्द कहे, वे भारतीय सस्कृति के प्रति उनके असीम प्रेम के द्योतक थे । उन्होने कहा, "जीवेम शरद शतम् ।"

: २५ :

अजुध्या में

थाईलैंड का प्रवास बिना अजुध्या गये पूरा नही हो सकता था। वैंकाक से वहातक रेल जाती है, बसे चलती है और अगर कोई पानी के रास्ते जाना चाहे तो नाव भी मिल जाती है। हमने पता लगाया तो मालूम हुआ कि अपनी सवारी न हो तो काफी समय लग जायगा और रास्ते की चीजे छूट जायगी। हम तो ज्यादा-से-ज्यादा एक दिन दे सकते थे। हमारी कठिनाई देखकर हमारे मेजवान शर्माजी ने अपने उद्योगपति मित्र श्री मुल्लामलजी से चर्चा की तो उन्होने वडी प्रसन्नता से कहा कि मेरी कार ले जाइये। १४ मई को वडे तडके रवाना होने का कार्यक्रम वना, लेकिन वारिश के कारण १० वजे से पहले नही निकल पाये। कार मे विष्णुभाई, मै, भिक्षु शासन रश्मी तथा अजुध्या के रहनेवाले दो अन्य बौद्ध भिक्षु थे।

वैंकाक से अजुध्या ५६ मील है। सडक पक्की और साफ-सुथरी होने पर भी सवारियो की भीड-भाड के कारण बहुत तेज नही चल सके। मौसम सुहावना था। सडक के दोनो ओर धान के खेत बिछे थे, जिनके बीच-बीच मे बासो के घरो की बस्तिया थी। अधिकाश बस्तियो मे केले के पेडो और बासो की निकुजो की हरियाली को देखकर बडा अच्छा लगा। खेतो मे स्त्री-पुरुष धूप से बचाव के लिए सिर पर बड़े-वडे टोप लगाये काम कर रहे थे। कई स्थानो पर लम्बे-लम्बे सीगो के भैसे और भैसें चर रही थी। उधर भैसो का रग सफेद होता है।

३० मील तक का रास्ता कैसे कट गया, पता भी न चला। हमारी कार का नौजवान ड्राइवर गोपालन आजाद हिन्द फौज मे रहा था। शहर से निकलते ही ऐसी-ऐसी रोमाचकारी घटनाए उसने सुनाई कि रोगटे खडे हो गये। सैनिको की वीरता, कष्ट-सहिष्णुता तथा पराजित होकर लौटते समय की मुसीबतें, ये तथा ऐसी दूसरी वातें किसी उपन्यास से कम रोचक न थी। जान हथेली पर लेकर किस प्रकार उन्हे बीहड स्थानो को पैदल पार

करना पडा, उसका हाल सुनकर किसी का भी दिल काप सकता था।

तीसवें मील पर पहुचने पर बायी ओर को एक रास्ता फटा और हमारी कार उस ओर को मुडी। स्वामीजी ने बताया कि हम अजुध्या के रास्ते से हटकर बाग पाईन जा रहे हैं, जहा ४०० मीटर लम्बी और ४० मील चौडी झील से आवृत्त थाई राज-महल तथा मदिर हैं। तीन-चार मील के इस रास्ते पर सडक के दोनो ओर पानी मे रक्त-कमल खिले हुए थे। महल के फाटक के बाहर दुकानो पर हमारी कार रुक गई। एक बौद्ध भिक्षु कार्यालय से पास लेने अदर चले गये। इस बीच हमने खाने का डौल जमाया। कुछ भोजन साथ था, कुछ की व्यवस्था दुकान से की। एक थाई लडकी कमलगटे बेच रही थी। उससे कमलगटे खरीदे। पास लेकर स्वामीजी के लौट आने पर सबने भोजन किया।

भोजन से छुट्टी पाकर महल देखने चले तो मक्के के फूलो से भरे कागज के लिफाफे लेकर थाई बालक पीछे पड गये। थाई भाषा मे वे कुछ कहते थे, जो हमारी समझ मे नही आता था। स्वामीजी ने बताया कि झील मे मछलियो को खिलाने के लिए इन्हे खरीदने का आग्रह कर रहे हैं। एक टिकल अर्थात् कोई चार आने मे दो लिफाफे लेकर आगे बढे।

सबसे पहले झील के किनारे एक मदिर मिला, जो राजा प्रसार थौंग का मदिर कहलाता है। कहते हैं, इसमे राजा अपने राजकुमार के साथ पूजा करने आता था। मदिर सामान्य-सा है। उसमे राजा की मूर्त्ति है। उसके पास झील के बीच मे एक सुन्दर बौद्ध मदिर है आइस्वन दिव्यासुन (ऐश्वर्य दिव्यासन) जिसका निर्माण चौथे राजा ने कराया था। साढे तीनसौ वर्ष पुराने इस देवालय मे पाचवें राजा की मूर्त्ति है। उसके चारो ओर के दृश्य बडे मनोहारी हैं। वहीपर झील पर एक विशाल और कलापूर्ण पुल है, जिसपर खडे होकर मदिर बडा आकर्षक लगता है।

वहा से महल की ओर बढे, जो पास ही सुनसान मे खडा नश्वर जीवन की कहानी सुना रहा था। किसी समय मे वहा खूब चहल-पहल रहती होगी। राज-परिवार का वैभव इठलाता होगा, लेकिन आज तो वहा निस्तब्धता का साम्राज्य था। अचानक ये पक्तिया स्मृति मे उभर आईं

माटी कहे कुम्हार से, तू क्यों रौंदत मोय।
इक दिन ऐसा आयगा, मैं रौंदूंगी तोय।।

महल के सामने पहुचे तो उसके सौंदर्य को देखकर मुग्ध रह गये। गाइड ने बताया कि उस वैभवशाली महल का निर्माण चीनी इजीनियरो ने किया था और उसका सारा सामान चीन से मगाया गया था। महल के सामने का रास्ता वडा ही सुन्दर और सुरुचिपूर्ण था और उसका द्वार कला का उत्कृष्ट नमूना था। अन्दर घुसते ही पहले कक्ष मे वह स्थान देखा, जहा बैठकर राजा प्रजा की फरियाद सुना करता था। अब उसमे राजा की अस्थिया समाधिस्थ हैं। उसके पास ही शीशे के चौखटे मे वह मुहर रक्खी है, जो राजा के आदेशो पर लगाई जाती थी। इस कक्ष के खभो पर वहुत वढिया कारीगरी है। उनकी सागौन की लकडी चीन से आई थी। उनके रगो को देखकर ऐसा जान पड़ता है, मानो वे आज ही वनकर तैयार हुए हो।

उसके वाद छोटी रानियो के दो कक्ष देखे, जिनमे से एक में रग-विरगी सीपो से जडा लकडी का एक पर्दा रक्खा था। उससे सटे खेलने के दो कक्ष थे, जिनके वीच मे मेज और चारो ओर कुर्सिया पडी थी।

काठ की सीढियो से चढकर ऊपर की मजिल मे पहुंचे। सबसे पहले पाचवे राजा का शयन-कक्ष मिला, वडा ही कलापूर्ण। उसके पास स्नान-घर मे मगर की आकृति का फव्वारा लगा था। पास ही पटरानी का कमरा था, फिर पूजा-गृह और अध्ययन-कक्ष। पूजा-गृह मे चीनी भाषा मे हाथ से लिखी कई जिल्दो में राजवशावली सुरक्षित थी। अध्ययन-कक्ष मे छठे राजा वाजीराउध का विशाल चित्र स्टैण्ड पर लगा था। सारा महल अपनी कला, कारीगरी तथा सुरुचिपूर्णता के लिए आज भी दर्शनीय है।

वहा से चलकर हमने वह ऊची मीनार देखी, जिसपर चढकर राजा तथा राज-परिवार के लोग चारो ओर की दृश्यावली को देखा करते थे।

अत मे पटरानी की समाधि पर गये। उसके स्मारक-स्तभ पर रानी के साथ तीन वच्चो की मूर्तिया वनी थी। उसके पीछे वडी मार्मिक कहानी थी। एक वार रानी चौफया नदी मे नौका-विहार कर रही थी। अचानक नाव डूब गई और उनके साथ उनकी लड़की तथा लडके की भी मृत्यु हो गई। रानी गर्भवती थी। सात महीने का लडका उनके पेट था। उन सबकी स्मृति मे ये मूर्त्तिया वनवा दी गई है। यह सन् १८८१ की घटना है। अपने ऐश्वर्य के दिन देखकर अव राजा-रानी दोनो वहा

चिर-निद्रा में लीन है।

हमे अजुध्या पहुचने और शाम को वैकाक लौटने की जल्दी थी, इसलिए ज्यादा देर न ठहरकर अजुध्या की ओर वढे। ३० मील के उस रास्ते को पार करके वहा पहुचते-पहुचते शाम के ४ बज गये। नगर मे चक्कर लगाते हुए सबसे पहले चद्रकासम महल गये, जिसका निर्माण राजकुमार नरेसुअन ने १५७७ मे अपने पिता महाधर्म्मराज के राज्यकाल में कराया था। उसके एक भाग में सग्रहालय है। बुद्ध की अनेक मूत्तियो के अलावा उसमे त्रिपिटक, बन्दूकें, तोप के गोले, काठ का दरवाजा, ब्रह्मा, शिव, विष्णु, गरुड,गणेश, परशुराम आदि की मूत्तिया थी। काष्ठद्वारो की विशेषता यह थी कि वे एक ही लकडी के बने थे और उनपर वडा सुन्दर कटाव हो रहा था। कई अलमारियो मे चीनी के बर्तन सजे थे। ये सब वस्तुए अजुध्या-काल की थी।

वहा से चौफया नदी के तट हर खडे होकर नौकाओ का आवागमन तथा शात जलधारा को देखते हुए उस बौद्ध मदिर मे पहुचे, जो उस ऐतिहासिक नगरी की शान है और जो खण्डहरो के वीच आज भी अपने अस्तित्व को अक्षुण्ण बनाये हुए है। मदिर बडा ही गौरवशाली है। उसमे बुद्ध भगवान की सात-आठ फुट की पद्मासनस्थ प्रतिमा है। दस फुट ऊची वेदी पर बुद्ध ध्यान-मग्न मुद्रा मे आसीन हैं। धातु की इतनी वडी प्रतिमाए प्राय कम ही देखने मे आती हैं। विस्मय हुआ कि इतनी विशाल और भारी प्रतिभा को इतनी ऊची वेदी पर किस प्रकार प्रतिष्ठित किया गया होगा। अनेक थाई स्त्रिया वदना कर रही थी। प्रतिमा कमाल की है। उसकी चेष्टाए वडी ही सजीव है।

मदिर का चित्र खीचने के लिए मैं जैसे ही वाहर आया कि एक थाई लडकी दौडी आई और पास आकर बोली, "बुधाज हैड। परचेज? ट्वेन्टी-फाइव टिकिल ओनली।" (अर्थात बुद्ध का सिर है। खरीदोगे? सिर्फ पच्चीस टिकिल मे)। इतना कहकर उसने बुद्ध की मूर्त्ति का छोटा-सा सिर मेरे हाथ मे थमाया और दौड़कर दूसरी चीजें लेने चली गई। इसके वाद तो हमें कई वच्चो ने आ घेरा। उनके पास छोटे-वडे आकार की वुद्ध की अनेक मूर्त्तिया थी। किसीका सिर, किसीका धड, किसी का कुछ। मैंने एक लडके से पूछा कि धातु की ये मूर्त्तिया कहा से मिली हैं? वह उत्तर टाल गया। स्वामीजी

बताया कि यहा के खडहरो की खुदाई मे बहुत-सी मूत्तिया निकलती है, जिन्हें लोग उडा लेते हैं। यहा मूत्तियो का क्या ठिकाना! कोई-कोई तो इतनी वडी और कलापूर्ण होती है कि उसके दस-दस हजार टिकिल तक मिल जाते हैं। पिछले दिनो ऐसी वहुत-सी चोरिया पकडी गई, पर उससे लोग माननेवाले थोडे हैं।

वाट के चारो ओर मदिरो के भग्नावशेप है। किसीकी ईंट-चूने की दीवारें खडी हैं तो किसीके शिखर, कही मलवे का ढेर लगा है तो कही कुछ। उन्हें देखकर पता लगता है कि अपने सौभाग्य के दिनो मे अजुध्या कितनी गौरवशालिनी नगरी रही होगी।

मदिर के पास ही भूतपूर्व प्रधान मत्री विपुलसग्राम का स्थान देखा। फिर वहा के तीन दूसरे विख्यात वाट देखने गये। उनमे पहला था वाट फराराम, दूसरा वाट सिरी सन्पेट और तीसरा वाट लोकयसुधा। वाट सिरी सन्पेट के नीचे-नीचे एक गुफा थी और वाट लोकयसुधा में वुद्ध की शयन (निर्वाण) मुद्रा मे विशाल मूत्ति। उसके ऊपर छत के नाम पर उन्मुक्त आकाश था। सव प्रकार के मौसमो की उग्रता को वह मूत्ति सालो से सहन करती आ रही है, पर उसका कुछ भी नही विगडा।

अजुध्या के वाई ओर परसाक नदी है, दाई ओर चौफया। इस प्रकार सारी वस्ती दो नदियो की भुजाओ मे लिपटी हुई है। प्राकृतिक सुषमा और कला का वहा वडा सुन्दर समन्वय दिखाई देता है।

नगर के वाहर 'फुखाऊ ठोग', विजय-स्मारक के रूप मे है, जो वर्मियों के पराभूत होने के अवसर पर वनवाया गया था। 'फुखाऊ' का अर्थ होता है पर्वत, 'ठोग' माने 'स्वर्ण'? कहते हैं, इस पर्वत के नीचे सोना निकलता है। उसमे सचाई हो या न हो, लेकिन उस ऊची इमारत पर चढकर चारो ओर के दृश्यो का वडे अच्छे ढग से आनद लिया जा सकताहै।

वहा से हम चापछाग पहुचे, जहा किसी जमाने मे हाथी पकडे जाते थे। वहा पहले घना जगल था। उसमे से हाथियो को घेरकर वाडे मे लाया जाता था और हजारो की भीड के सामने उन्हे पकडा जाता था। राजा-रानी स्वय उपस्थित रहते थे।

अतिम मदिर देखा वाट फनान्छग, जिसमे वुद्ध की तीन प्रतिमाए हैं।

दाईं ओर की विशाल मूर्त्ति असली सोने की है, वाईं ओर की रोल्ड गोल्ड की। मदिर और मूर्त्तियो के वैभव को देखकर लगता है कि अपरिग्रही वुद्ध को परिग्रही भक्तो ने वडा धनी वना दिया है। इसी वाट के मुख्य मदिर मे वुद्ध की २८ हाथ चौडी और ३८ हाथ ऊची मनोज्ञ मूर्ति है। वहा के प्रधान भिक्षु ने, जो हमें उस मदिर को दिखाने आये थे, वताया कि उस मूर्त्ति का निर्माण अजुध्या के वसने से २६ साल पहले हुआ था। मूर्त्ति की विशालता से अधिक उसके मुख-मण्डल पर व्याप्त वीतरागता ने हमें प्रभावित किया।

अजुध्या की ऐतिहासिक नगरी आज राजधानी के अपने समस्त वैभव को काल को अर्पित कर चुकी है और उसका उजडा अतीत मदिरो, स्तूपो तथा भवनो के खण्डहरो मे से झाकता दिखाई देता है, पर सृष्टि के नियमानुसार विनाश और विकास का क्रम साथ-साथ चलता है। प्राचीन गौरव यदि ईंटो के ढेर मे दव गया हो तो आधुनिक वाने मे नया वैभव वहा चारो ओर मुस्कराता हुआ दिखाई देता है। नये भवन, नये वाजार और नई उमगें, उस नगरी को नया यौवन प्रदान करती दिखाई देती हैं।

नगर मे घूम लेने के बाद स्वामी शासन रश्मी हमें अपने वडे भाई के घर ले गये। वहापर वडे भाई और उनकी पत्नी ने हमारा आत्मीयता से स्वागत किया। कुछ देर तक वातें करते रहे। शर्वत पिलाया। उनके दो वडे प्यारे वच्चे थे। हमारे वुलाने पर वे दोनो हमारे पास आ गये। हमने गोद मे विठा लिया। वे हमारी भाषा नही जानते थे। हम जो कुछ कहते, उनके पिता वर्मी भाषा मे उन्हें वता देते। वच्चे मुस्कराकर हमारी ओर देखते। अत मे हमने उन्हें एक-एक भारतीय सिक्का दिया। वे दोनो वडी फुर्ती से हमारी गोद मे से उठे और हमारे पैरो पर सिर रखकर उन्होने प्रणाम किया। उनकी शिष्टता और विनम्रता को देखकर हमारा जी भर आया।

उन लोगो ने भोजन का आग्रह किया, लेकिन हमारे पास उतना समय नही था। उनसे विदा लेकर रवाना हुए। रास्ते-भर उस नगरी के विभिन्न चित्र आखो के सामने आते रहे।

: २६ :

नगर प्रथम और बागसेन

नगर प्रथम

थाईलैण्ड मे कई ऐसे स्थान हैं, जिनके साथ भारतीय इतिहास तथा सस्कृति की बडी पुरानी कडिया जुडी हुई हैं। उस देश मे रहनेवाले भारतीय ही नही, बल्कि थाई-निवासी भी उन पुरातन सबधो को मानते हैं और उन स्थानो के प्रति गहरी भावना रखते है। भगवान राम के नाम और उनकी जन्मभूमि के साथ जुडी अजुध्या की चर्चा हम पिछले अध्याय मे कर चुके हैं। ऐसे ही स्थानो मे एक स्थान है नाखोन प्राथाम (नगर प्रथम), जो बैंकाक से ५६ किलोमीटर अर्थात् कोई ३५ मील पर है। थाई निवासियो की मान्यता है कि सम्राट अशोक के भेजे दो धर्मदूत, सोन और उत्तर, बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए पहले-पहल इस देश मे इसी स्थान पर उतरे थे। उस समय बैंकाक का अस्तित्व न था। तत्कालीन राजा ने बौद्ध धर्म अगीकार कर लिया और उसी स्थान से बौद्ध धर्म का प्रसार दक्षिण-पूर्वी दिशाओं मे हुआ। उसी पावन सदेश की स्मृति को स्थायित्व प्रदान करने के लिए बाद मे एक स्यामी राजा ने वहापर छोटा-सा पगोडा बनवा दिया, जिसे बैंकाक-काल के एक राजा ने विशाल रूप दिया। धर्मदूतो तथा बौद्ध धर्म के प्रथम आगमन के कारण ही उस नगर का नाम 'नगर प्रथम' पडा है। कुछ लोग उसे 'निर्वाण-प्रथम' भी कहते है। इसका कारण सम्भवत यह है कि वहा पर निर्वाण-मुद्रा मे भगवान बुद्ध की एक बडी विशाल प्रतिमा है।

वहा की यात्रा करने की इच्छा होना स्वाभाविक ही था, लेकिन हम कुछ कहें कि उससे पहले ही हमारे मित्र श्री जगदीशसिंह ने प्रस्ताव किया कि वह हमें अपनी कार मे वहा ले जायंगे। जगदीशसिंहजी बहुत वर्षों से बैंकाक मे व्यापार करते हैं। कार्यक्रम बनाकर एक दिन प्रात काल वहा के लिए रवाना हुए। स्वामी शासन रश्मी भी हमारी टोली मे शामिल हो गये। उधर के देशो की सडकें बहुत अच्छी हैं। छोटे-बडे सभी नगरो के लिए डामर

या सीमेंट के पक्के रास्ते हैं। ३५ मील का वह फासला बात-की-बात मे पार हो गया। इधर-उधर की चर्चाए करते हुए और स्थान-स्थान पर नारियल की कुजो की शोभा देखते हुए नगर प्रथम पहुच गये। बस्ती बडी नही थी, पर वहा की सफाई देखकर तबीयत खुश हो गई।

सबसे पहले हमारी टोली उस ऐतिहासिक स्थल पर पहुची, जिसके कारण उस नगर को इतना महत्व मिला है। वह नगर के मध्य मे है। एक छोटे-से फाटक से होकर विशाल प्रागण मे एक ओर को हमारी कार रुकी। जगदीशसिंहजी ने सामने के विशाल पगोडा की ओर सकेत करके कहा, "यही है वह पगोडा, जिसे देखने के लिए दूर-दूर के लोग आते हैं।"

बहुत-सी सीढिया चढकर ऊपर पहुचे। आकृति की दृष्टि से पगोडा को स्तूप कहना अधिक उपयुक्त होगा। उसका ऊपरी भाग सोने के पत्तर से जडा होने के कारण सूर्य के प्रकाश मे जगमगा रहा था। बाहरी हिस्से मे सामने की ओर एक महराब मे भगवान बुद्ध की दस फुट ऊची स्वर्ण प्रतिमा थी, खड्गासनस्थ। इस मूर्त्ति की उधर बडी मान्यता है। दर्शनार्थियो का आना-जाना बराबर बना रहता है। मुख्य प्रतिमा के सामने तीन छोटी-छोटी मूर्त्तिया हैं। उनके दर्शन करके बाहर आये और पगोडा के आकार को ध्यान से देखने लगे। ऊची कुर्सी पर बने होने के कारण उसकी ऊचाई और भी अधिक मालूम होती है। देखते-देखते अतीत के जाने कितने चित्र मन मे घूम गये। पता नही, नये देश मे आने पर धर्मदूतो के हृदय मे क्या-क्या भावनाए उठी होगी और किन-किन असुविधाओ का सामना करते हुए उन्होने धर्म-प्रचार का कार्य आरभ किया होगा। हमें विचारो मे डूबे देखकर स्वामी शासन रश्मी भी कुछ देर के लिए ध्यान-मग्न हो गये। फिर स्वामीजी ने पगोडा के चबूतरे पर एक ओर को सकेत करके कहा, "वह देखिये, वे दो उल्काखण्ड हैं। यहा उल्कापात हुआ था। उसीके अवशेष रखे गए हैं।"

पगोडा के चारो ओर एक गैलरी थी, जिसमे भगवान बुद्ध के जीवन से सबधित सैकडो चित्र अकित थे। कुछ प्रसग रामायण के थे। कही-कही कम्बोडियन भाषा के कुछ लेख थे। एक कक्ष मे भगवान बुद्ध की परिनिर्वाण मुद्रा की एक मूर्त्ति थी, जिसके पास तीन शिष्यो की प्रतिमाए थी। बुद्ध के मुख-मण्डल पर परम शान्ति दिखाई देती थी। शिष्यो के चेहरो पर चिंता और

शोक के चिह्न । वह भगवान बुद्ध के पार्थिव शरीर के अतकाल का दृश्य था । कुछ कदम पर एक दूसरे कक्ष मे भगवान बुद्ध का उपदेश-मच दिखाया गया था, जिसमे दीवारो पर भक्तो के बडे-बडे चित्र थे । सबके हाथ जुडे थे और वे वडे भक्ति-भाव से मच की ओर देख रहे थे । उनकी आकृतिया भारतीयो के चेहरो से मिलती-जुलती थी । उनमे गरुड भी विराजमान थे ।

गैलरी की परिक्रमा करते-करते पगोडा के बाहरी वृत्ताकार भाग की विशालता का अनुमान हो गया । उसके निर्माता की दृष्टि कितनी विशाल और हृदय मे धर्म-प्रभावना कितनी गहन रही होगी । अत मे हम वही पर स्थित एक अन्य पगोडा मे पहुचे, जिसमे बुद्ध की बहुत बडी प्रतिमा थी, परि-निर्वाण मुद्रा मे, सोने के पत्तर से जडी हुई । उसके दाए-बाए दो मूर्त्तिया खड्गासनस्थ । अनेक स्यामी स्त्री-पुरुष वहा श्रद्धाजलि अर्पित कर रहे थे थी, ओर चढावा चडा रहे थे । हम लोगो ने भी सोने के वरक, अगर-वत्तिया और मोमबत्तिया बाहर दुकान से लेकर वहा चढाई । अन्य देशो के भी कुछ पर्यटक वहा आये हुए थे ।

फिर वह प्राचीन बट-वृक्ष देखा, जिसके नीचे बैठकर धर्मोपदेशक अपने भक्तो को उपदेश दिया करते थे । आज उसके आसन से धर्म के स्वर नही उठते, उसकी छाह मे भक्त और सैलानी लोग थोडी देर रुककर आराम करते है ।

इस स्थान की रमणीकता छुट्टी के दिन सैलानियो की भारी भीड इकट्ठी कर लेती है । बैंकाक तथा दूसरे कस्बो से वहा आने के लिए बस आदि की नियमित सुविधा है । वैशाख पूर्णिमा के दिन तो वहा बडा भारी मेला लगता है। थाईलैण्ड के दूर-पास के बहुत-से स्थानो से लोग उस अवसर पर वहा इकट्ठे हो जाते हैं ।

कहते है, प्रारभ मे इस जगह पर जो पगोडा बना था, वह भारतीय शैली का था, ऊपर शिखर था । बाद मे उसके रूप मे थोडा परिवर्तन हो गया । फिर आठसौ बरस निकल गये और इस बीच उसकी ओर किसीका ध्यान न जाने से वह टूटने-फूटने लगा, वहा जगल खडा हो गया । फिर राजा मोग-कुट ने सन १८८० मे मौजूदा आकार में उसका पुनर्निर्माण कराया । आज उसकी ऊचाई ३७५ फुट है ।

जाते समय पगोडा के अहाते मे थाई लोक-नृत्य हो रहा था। हमने सोचा कि पहले मदिर मे हो आवे तब उस सास्कृतिक कार्यक्रम को देख लेगे, लेकिन वहा से लौटे तवतक कार्यक्रम पूरा हो चुका था और भीड विखर रही थी।

शहर मे चक्कर लगाया। वारह वजनेवाले थे। वारह वजे के वाद वौद्ध भिक्षु भोजन नही करते। अत जगदीशसिंहजी ने स्वामीजी के लिए भोजन की व्यवस्था मे सारा वाजार छान डाला, लेकिन एक भी रेस्ट्रा या होटल ऐसा न मिला, जहा केवल शाकाहारी चीजे मिलती हो। वहा के वौद्ध भिक्षु प्राय मासाहारी होते हैं, लेकिन जगदीशसिहजी चाहते थे कि कोई ऐसी जगह मिल जाय, जहा विष्णुभाई और मेरी सुविधा की दृष्टि से निरामिष भोजन ही हो और हम सव साथ-साथ खा लें। लेकिन उनके प्रयत्न व्यर्थ गये। चीनी और थाई सभी दुकानो पर सामिष चीजें ही थी। आखिर लाचार होकर एक चीनी रेस्ट्रा मे गये और डबल रोटी, डिव्वे का दूध और कॉफी से काम चलाया। कुछ फल ले लिये, जिन्हे रास्ते मे खाते आए।

एक प्राचीन घटना से जुडे होने के अलावा उस नगर मे प्राचीनता का द्योतक अव कुछ भी नही है। वह पूर्णतया आधुनिकता के रग मे रगा हुआ है। कुल मिलाकर सैर-सपाटे के लिए अच्छी जगह है, लेकिन भगवान बुद्ध और अशोक की स्मृति के कारण भारतीयो के लिए तो उसकी वडी महिमा है।

वागसेन

नगर प्रथम की यात्रा जगदीशसिहजी ने धार्मिक एव आध्यात्मिक दृष्टि से कराई थी, लेकिन वह वागसेन ले गये मात्र उसके अनुपम प्राकृतिक सौंदर्य के कारण। १२० किलोमीटर पर थाईलैण्ड की खाडी का तटवर्ती यह स्थान उस देश के इने-गिने आकर्षणो मे से एक है। शहर से निकलते ही जगदीश-सिहजी ने 'आजाद हिंद फौज' के किस्से सुनाने शुरू कर दिए। वोले, "नेताजी और उनकी सेना ने तो यहा जादू कर दिया था। एक भारतीय सज्जन ने कजूसी से कौडी-कौडी वचाई थी। बच्चो की खरीदी चीजो को वह चुपचाप वाजार मे वेच आते थे। कहा करते थे कि ये लडके तो पैसे उडाते हैं, पर नेताजी का भाषण सुनकर उन्होंने सात लाख टिकिल निकालकर उन्हें दे दिये, वाद मे ६ लाख और दिये। कहा, "नेताजी, जैसे वने, भारत को आजाद करा दीजिये।" ऐसे ही एक दूसरे सज्जन ने भारत के स्वतत्र होने पर

१५ अगस्त १९४७ को बैंकाक की सारी ट्रामो मे एक दिन के लिए बेपैंसे यात्रा करने की सबके लिए छूट करा दी। उस दिन के किराये के लाखो टिकिट उन्होने अपने पास से दिये। दुनिया के इतिहास मे आजादी की खुशी इस रूप मे मनाने की मिसाल मुश्किल से मिलेगी।" आगे चलने पर एक पहाडी की ओर इशारा करके उन्होंने कहा, "देखिये, यह है वह पहाडी, जहा 'आजाद हिंद फौज' का हैड क्वार्टर था।"

हम लोग सोचने लगे, भले ही नेताजी को अपने अतिम लक्ष्य की प्राप्ति मे सफलता नही मिली, लेकिन यह क्या कम उपलब्धि थी कि प्रवासी भारतीयो को उन्होने अपने देश की आजादी के लिए पागल बना दिया। यह भी कम बात नही है कि आजाद हिन्द फौज की पराजय के बावजूद आज भी उस सगठन और उसके सचालक की याद लोगो को विह्वल कर देती है।

१०३ किलोमीटर पर छोलपुरी नगर आया, जो उसी नाम के जिले का केन्द्र है। बागसेन उसी जिले के अन्तर्गत है। नगर मे बिना रुके सीधे अपनी मजिल पर पहुचे। बादल घिरे थे, बूदें पड रही थी, फिर भी सैलानी लोगो की काफी भीड थी। सागर हिलोरें ले रहा था, गर्जन कर रहा था और उसके किनारे-किनारे सडक पर लोग चहलकदमी करते हुए उसका आनन्द ले रहे थे। बडी मनोरम जगह है। जलवायु अच्छा होने के कारण, पैसेवालो ने वहा अपनी कोठिया बना ली हैं। हरियाली खूब है। थोड़ा आगे एक पहाड़ी है, जिसकी चोटी तक पक्की सडक जाती है। पहाडी पर एक रेस्ट्रा है, जहा बैठकर चारो ओर के दृश्य देखे जा सकते है। समुद्र के किनारे घूमकर हम रेस्ट्रा मे गये और देर तक सागर के विभिन्न रूप देखते रहे। मौसम सुहावना था। बूदाबादी अब भी हो रही थी। अचानक पश्चिमी क्षितिज पर से बादल हट गये और सूर्य की किरणो ने सागर के तरगित जल पर सुनहरी चादर बिछा दी। थोडी देर मे मेघखण्डो ने सूर्य को फिर अपने अचल मे छिपाकर उस दृश्य पर पर्दा डाल दिया, लेकिन उसकी स्मृति आज भी धूमिल नही हो सकी है।

जगदीशमित्रजी ने बताया कि यहा से थोडी दूर पर सिरिछा नाम का स्थान है। किंवदन्ती है कि वहा भगवान राम ने बाली का वध किया था।

बागसेन को और अधिक सुन्दर बनाने के लिए थाई सरकार की ओर से

वडी कोशिश हो रही है। सीमेट की सडक वन गई है। उसे एक वड आरोग्य-धाम के रूप में विकसित करने की योजना है। शासन ने वहुत-सी कोठिया और मकान वना दिये है, जिनमे शासनाधिकारी छुट्टी के दिनो मे आकर ठहर जाते हैं।

हटने को जी नही करता था, लेकिन वादलो का प्रकोप देखकर अनिच्छा-पूर्वक विदा ली। अतिथि-गृह पर थोडी देर रुके, फिर छोलपुरी आये। वहा पाच-सात भारतीय भी रहते हैं। दुकान करते हैं। जगदीशसिंहजी एक परि-चित हिन्दू के घर ले गये, जिन्होने स्यामी लडकी से विवाह किया था, पर पति-पत्नी मे आगे चलकर वनी नही और वह स्यामी लडकी उनके पचास हजार टिकिल लेकर एक दिन चुपचाप घर से चली गई। चली तो गई, लेकिन उस घर से ममता का नाता पूरी तरह तोड नही सकी। तीन वर्ष की एक कन्या पीछे रह गई। वीच-वीच मे वह छिपकर उसे देखने आती रही और जव वडी होने पर उस लडकी का एक हिन्दू-परिवार मे विवाह हुआ तो वह आई और कुछ तोले सोना दे गई। लडकी अपने पिता की दुकान पर उस समय मौजूद थी और उसकी महीने-सवामहीने की वडी सुन्दर वच्ची विस्तर पर खडी किलकारिया मार रही थी। अपने जीवन की कटु-स्मृतियो की चर्चा करते हुए उन सज्जन ने कहा, "मैंने देख लिया, इस जिन्दगी मे कुछ नही है, कोई अपना नही है। इसलिए अव मैं अपना ज्यादातर समय धर्म-ध्यान मे लगाता हू।"

छोलपुरी से चलकर वाग पू आये, जो समुद्र के किनारे का एक दूसरा सौंदर्य-स्थल है। वैंकाक से नजदीक अर्थात् ३६ किलोमीटर पर होने के कारण लोग वहा आसानी से पहुच जाते हैं। वहा का घाट वडा अच्छा है। समुद्र के किनारे के रेस्ट्रा मे मजे की चहल-पहल रहती है। रविवार को नृत्य और सगीत की ध्वनि सागर की लहरो पर अठखेलिया करती हैं। इस स्थान का विकास थाईलैण्ड के भूतपूर्व प्रधान मत्री फील्डमार्शल विपुलसग्राम ने किया था। हमने रेस्ट्रा मे चाय पी। पास की एक मेज पर सुरादेवी के उपासको की लीला देखने को मिली।

वर्षा के कारण मार्ग रपटीला हो गया था। मोटरो की चार दुर्घटनाए हमने देखी। एक जगह जीप उल्टी पडी थी, दूसरी जगह एक

बस सडक से नीचे उतर गई थी, तीसरी जगह एक-दूसरे से सटकर चलने-वाली चार मोटरे आपस मे टकरा गई थी। उन्हे देखकर हम कह रहे थे कि भगवान की बडी कृपा हुई, जो हम लोगो की यात्रा आनद से, बिना किसी दुर्घटना के, हो गई। पर बेंकाक मे घुसते ही हमारी गाडी मे पचर हो गया। उसे ठीक करने मे आधा घटा लग गया। ८। बजे रात को अपने स्थान पर पहुचे।

: २७ :

प्रिंस धानी निवात के साथ

थाईलैण्ड के राजनैतिक और साहित्यिक क्षेत्र मे प्रिंस धानी निवात की वडी प्रतिष्ठा है। वैसे साहित्य और राजनीति का वहुत मेल नही होता, पर हर देश मे कुछ ऐसे लोग मिल जाते हैं, जो दोनो मे समान गति रखते हैं और उसके लिए सम्मान प्राप्त करते हैं। अनेक उच्च उपाधियो से विभूषित प्रिंस धानी निवात राजा राम षष्टम के राज्य-काल में राजरानी के निजी सचिव थे। अनन्तर राजा प्रजाधिपोक के समय मे मत्री रहे, फिर सुप्रीम कौंसिल ऑव स्टेट के मैम्बर वनने के वाद उन्होंने सन् १९४७ से १९५१ तक थाईलैण्ड के रीजेंट का पद सभाला। अव यह प्रिंवी कौंसिल, स्याम सोसायटी तथा नेशनल कौंसिल ऑव म्यूजियम के अध्यक्ष है। साहित्यिक जगत मे भी उनकी सेवाए उल्लेखनीय हैं। उनकी 'जनरल एनशियेंट हिस्ट्री' 'थाओ वोरा चाद', 'ओल्ड स्यामीज कसैप्शन ऑव मोनारकी', 'नान' (छाया नाटक) आदि पुस्तकें साहित्य की दृष्टि से वडी मूल्यवान मानी जाती हैं। वह 'रायल सोसायटी ऑव आर्ट ऐंड लिटरेचर' के कमिश्नर जनरल रहे हैं। इस प्रकार प्रिंस धानी की प्रतिभा वहुमुखी और सेवा-क्षेत्र व्यापक रहा है।

प० रघुनाथ शर्मा के उनके साथ निकट के सवध हैं। शर्माजी ने उनसे भेंट की सुविधा करा ली। एक दिन सध्या को शर्माजी, विष्णुभाई और मैं उनसे मिलने गये। पाच वजे का समय निश्चित हुआ था, लेकिन हम समय से पन्द्रह मिनट पहले ही पहुच गये। घनी बस्ती में अन्दर जाकर एक छोटे-से मकान मे वह रहते हैं। कार से उतरते ही जिस व्यक्ति से हमारा साक्षात्कार हुआ, वह थी प्रिंस धानी की वहन। वह शर्माजी से परिचित थी। उन्होने स्नेह से हमें भीतर ले जाकर ड्राइग रूम मे विठाया और स्वय पास वैठकर वातें करने लगी। वोली, "मैं सन् १९५१ मे भाई के साथ भारत गई थी। वह भगवान वुद्ध की २५००वी जयन्ती का अवसर था। हम

लोग दिल्ली मे कुछ दिन रहे, फिर कई बौद्ध तीर्थों की यात्रा की। जयपुर, आगरा, अजता-एलौरा आदि स्थानो मे भी गये। अजता-एलौरा से मैं विशेष प्रभावित हुई। लेकिन ताज के सबध मे इतना सुन चुकी थी कि उसे देखकर कोई नई या खास बात नही लगी। पर इससे आप यह न समझे कि ताज को देखकर मुझे निराशा हुई।"

वह थोडा रुकी, फिर जरा भारी स्वर मे बोली, "जिस बीवी को शाहजहा इतना प्यार करता था, उसीके बच्चो ने बाप के साथ कैसा दुर्व्यवहार किया, इसका ध्यान आते ही मुझे बडा बुरा लगा।"

विष्णुभाई ने कहा, "मुसलमानो मे उत्तराधिकार की प्रथा हिन्दुओ जैसी नही है। उनमे तो जिसके हाथ मे लाठी होती है, वही राज्य पर अधिकार कर लेता है। यही बात शाहजहा के साथ हुई।"

चर्चा गभीर हो चली। उसे सक्षिप्त करने के लिए मैंने कहा, "ताज को देखने का असली आनन्द तब लिया जा सकता है, जब उसे इतिहास की दृष्टि से उतना नही, जितना कला की दृष्टि से देखा जाय।"

वह बोली, "आपकी बात ठीक है। मैं यह नही कहती कि ताज अच्छा नही है। उस जैसी इमारते आजकल कितनी है!"

उसी समय काठ के जीने से मझौले कद और कुछ भारी शरीर के एक सज्जन उतरते हुए दिखाई दिये। वह बदगले का कोट और रगीन धोती पहने थे। पैर नगे थे। चेहरा भरा, आखे उभरी, आकृति गभीर। यही थे प्रिंस धानी निवात। नीचे आते ही हाथ जोडकर, सिर नवाकर, उन्होने हमारा अभिवादन किया और सोफे पर बैठते हुए बोले, "मुझे बडा खेद है कि मैंने आपसे प्रतीक्षा कराई।"

हम कुछ कहे कि उससे पहले ही उनकी बहन बोल उठी, "और ये लोग इस बात के लिए क्षमा माग रहे थे कि समय से पहले आ गये।"

उन्होने यह बात इस ढग से कही कि हम सब हँसे पड़े। मैंने कहा, "समय से पहले आने मे हमारा थोडा स्वार्थ था। हमें मालूम हो गया था कि ५॥ बजे आपका दूसरा कार्यक्रम है। सोचा, पहले पहुच जाने से सभावना हो सकती है कि इधर कुछ समय और मिल जाय।"

वह मुस्करा उठे।

चर्चा आरम्भ करते हुए मैंने कहा, "हम लोग रगून आये थे, वहा के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन मे भाग लेने के लिए। वहा से यहा चले आए।"

"उस सम्मेलन का उद्देश्य क्या है?" उन्होने पूछा।

"उसका उद्देश्य ब्रह्मदेश मे हिन्दी का व्यापक प्रचार और प्रसार करना है और यह काम वह सस्था वर्षों से कर रही है।"

वह बोले, "बर्मा मे भारतीय सस्कृति का प्रभाव अधिक है।"

विष्णुभाई ने कहा, "हमें तो यहा स्याम मे अधिक लगता है। यहा की भाषा में सस्कृत के शब्दो का बाहुल्य, अभिवादन की पद्धति, आदि-आदि इसके प्रमाण है।"

नया विषय छेडते हुए मैंने कहा, "भारत और थाईलैण्ड पडोसी देश है और दोनो के सबध बहुत पुराने हैं, पर दोनो के बीच साहित्यिक आदान-प्रदान नही के बराबर है। बर्मा मे भी हमने यही बात देखी। हम चाहते हैं कि थाई भाषा की चुनी हुई पुस्तको का अनुवाद भारतीय भाषाओ मे हो और भारतीय भाषाओ की अच्छी-अच्छी रचनाओ का थाई भाषा मे।'

"मैं आपसे सहमत हू," वह बोले, "लेकिन इस काम को करे कौन?"

मैंने कहा, "यहापर थाई-भारत कल्चरल लॉज है, जिसके सम्पर्क बहुत व्यापक हैं।"

"आपकी बात सही है।" इतना कहकर उन्होने शर्माजी की ओर सकेत किया और बोले, "पडितजी इस सस्था मे अच्छा काम कर रहे हैं। लेकिन बात यह है कि आप जिस काम को कहते हैं, उसे वही व्यक्ति कर सकता है, जो थाई, अग्रेजी और हिन्दी, तीन भाषाए अच्छी तरह से जानता हो। एक नौजवान इस काम के लिए मिला था। बडा ही उपयुक्त था। पडितजी उसे जानते हैं, पर दुर्भाग्य से वह राजनीति के चक्कर में पड गया।"

विष्णुभाई के इस प्रश्न के उत्तर मे कि क्या थाई भाषा की पुस्तको के अनुवाद अग्रेजी मे हुए हैं, उन्होंने कहा, "नही।"

इसके बाद रामायण का प्रसग आ गया। विष्णुभाई बोले, "आपने 'स्टोरी ऑव राम इन स्याम' पुस्तक लिखी है।"

"नही," उन्होंने उत्तर दिया, "मैंने पुस्तक तो नहीं लिखी। बर्मा की

एक सस्था के अनुरोध पर एक बडा निबध लिखकर भेजा था। पता नही, उन्होने उसका क्या किया ! सुना है, वे उसे अपने जर्नल मे छाप रहे है, पर मुझे इसकी कोई सूचना उनकी ओर से नही मिली। यदि वे नही छापेगे तो उनकी अनुमति लेकर मैं उसे छपवा दूगा।"

रामायण की चर्चा आगे बढाते हुए विष्णुभाई ने कहा, "रामायण का इस देश मे बडा प्रचार है। मन्दिरो मे उसके बहुत-से चित्र मिलते है।"

"सो तो है," वह बोले,"पर आपके देश की भाति यहा भी रामायण के कई सस्करण प्रचलित है। स्वामी सत्यानन्द पुरी ने रामायण का अग्रेजी मे अनुवाद किया है, पर मुझे खेद है कि उन्हे अनुवाद के लिए रामायण का सर्वोत्तम सस्करण नही मिल सका।"

"आपकी निगाह मे सबसे अच्छा और प्रामाणिक सस्करण कौन-सा है ?" मैंने पूछा।

इस सवाल पर कुछ सोचते हुए-से वह बोले, "सन १७६६ मे जो सस्करण प्रकाशित हुआ है, वही सर्वोत्तम है। वह राजा राम प्रथम के समय मे निकला था और उसका आधार बाल्मीकि रामायण है। उसे सम्पूर्ण तो नही कहा जा सकता, पर प्रामाणिक वही है।"

विष्णुभाई ने कहा, "क्या ही अच्छा हो, यदि कोई सज्जन एशियाई देशो मे प्रचलित रामायण के सस्करणो का अध्ययन करे।"

उनके इस कथन का समर्थन करते हुए मैंने कहा, "भारत मे श्री राज-गोपालाचार्य ने इस दिशा मे कुछ प्रयत्न किया है। उन्होने बाल्मीकि सस्करण के आधार पर रामायण की कथा प्रस्तुत की है और तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से तुलसी और कम्बन के स्थान-स्थान पर सदर्भ दिये है।"

"मैंने उनकी वह पुस्तक नही देखी।" वह बोले। पर राजाजी का नाम आते ही उनका ध्यान उस ओर चला गया। उन्होने पूछा,"राजगोपालाचार्य आजकल कहा हैं और क्या कर रहे है ? माउटबेटन के बाद वही तो भारत के गवर्नर-जनरल बने थे।"

उनकी बात का उत्तर देते हुए विष्णुभाई ने कहा, "जीहा, अब उन्होने एक नई पार्टी बना ली है और वह एक प्रकार से नेहरू के विरोध मे हैं।"

विष्णुभाई की बात को स्पष्ट करते हुए मैंने कहा, "नेहरू के प्रति उनके

मन मे वडा स्नेह है, पर वह राजनीति मे उनसे मतभेद रखते हैं।"

मेरी बात सुनकर उनका चेहरा वहुत ही गभीर हो उठा। वोले, "दिस इज़ प.लिटिक्स।" (यह राजनीति है!)

विष्णुभाई के पूछने पर उन्होने वताया कि थाई भाषा मे उत्तम नाटक हैं। मैंने कहा, "थाई जीवन पर आधारित ऐसे नाटक और उपन्यास तैयार होने चाहिए, जिनम अन्य देशो के पाठको की रुचि हो और जिन्हें पढकर वे यहा के लोकजीवन की आत्मा को देख सके।"

उन्होने शर्माजी की ओर देखकर और उन्हें सवोधित करके कहा, "इनका यह विचार तो वहुत अच्छा है।"

"क्या आपने स्यामी नाटक के विकास पर कोई पुस्तक लिखी है ?" विष्णुभाई के इस सवाल के उत्तर मे उन्होने कहा, "जीहा, मैंने एक छोटी पुस्तिका लिखी है, पर एक वडी पुस्तक भी निकली है—क्लासीकल स्यामीज़ थियेटर।"

मेरे मन मे साहित्यिक आदान-प्रदान की वात फिर उठी। मैंने पूछा, "क्या आपके यहा ऐसी कोई सस्था है, जो अन्य भाषाओ से अनुवाद आदि का कार्य विधिवत रूप से करती हो ?"

"जीनही, ऐसी कोई सस्था नही है। पेन क्लव है, पर उसका उद्देश्य कुछ और ही है। क्या भारत मे ऐसी कोई सस्था है ?"

"जीहा", मैंने उत्तर दिया, "साहित्य अकादमी इस कार्य को करती है।"

घडी पर अचानक निगाह गई तो ५।। वजनेवाले थे। हमने चर्चा समाप्त की। वह वोले, "अपने पते मुझे दे जाइये। मैं आपको कुछ पुस्तकें भेजूगा और दिल्ली आना हुआ तो सूचना दूगा।"

हमने पते दिये, फिर अन्दर के वरामदे मे जाकर चित्र खीचे। अपने पते मे मैंने 'सस्ता साहित्य मण्डल' का उल्लेख किया था। वह नाम उनके दिमाग मे रहा। चित्र खिचवाकर लौटते समय उन्होने पूछा, "मण्डल और 'साहित्य अकादमी' के काम मे क्या अन्तर है ?"

मैंने उन्हें वताया कि 'मण्डल' ने गाधीजी की, उनकी विचार-धारा की, राजेन्द्रवाबू, विनोबा, नेहरू आदि की पुस्तकें निकाली है। यह सस्था गाधी-विचार-धारा से प्रेरित है। लेकिन 'साहित्य अकादमी' के सामने वैसी कोई

मर्यादा नही है। उसने भारतीय भाषाओ और कुछ विदेशी भापाओ की पुस्तकें भी निकाली और निकलवाई हैं।"

उनके बडे ड्राइग रूम मे नालदा का एक मॉडल रखा था। उसे दिखाते हुए उन्होने कहा, "जब मै भारत गया था, मैंने नालन्दा की भी यात्रा की थी। कुछ दिन पहले मै तक्षशिला भी हो आया हू।"

"अब तो वैशाली का भी विकास हो रहा है।" मैंने कहा।

"हा," वह बोले, "मैंने सुना है, वहा अच्छा काम हो रहा है।"

वह हमे बाहर तक पहुचाने आए। मेरी धोती की ओर संकेत करके बोले, "यह दखिये, मैं भी धोती पहनता हू। किसी समय मे वह हमारे देश की पोशाक थी। पर अब इसे कम ही लोग पहनते है।"

जिस प्रकार आते समय अभिवादन मे उन्होने हाथ जोडे थे और सिर झुकाया था, ठीक उसी तरह हाथ जोडकर नमस्कार करके विदा किया।

इतने बडे राजनीतिज्ञ और साहित्यकार होते हुए भी उनमे किसी प्रकार का दम्भ दिखाई नही दिया, वल्कि उनके चेहरे पर सरलता और व्यवहार मे विनम्रता दिखाई थी। मन बडा पुलकित हुआ।

: २८ :

थाई-लोकजीवन की झांकी

इसमे सदेह नही कि प्रकृति ने थाइलैण्ड को अनुपम सौदर्य प्रदान किया है, लेकिन यह भी निर्विवाद सत्य है कि उस सौदर्य को सुरभित करने मे वहा के लोकजीवन का विशेष योगदान है। कही भी चले जाइये, मानव-जीवन के छलछलाते स्रोत अपने मधुर कलकल-निनाद से आपको मुग्ध किये विना नही रहेगे। उसमे वैभव की चमक भले ही उतनी न हो, पर हृदय की उन्मुक्तता आपको भरपूर मिलेगी।

इस समृद्ध लोकजीवन के निर्माण का श्रेय केवल थाई-सस्कृति को नही है, वल्कि अनेक संस्कृतियो के सयोग को है। भारत, चीन, कम्बोडिया, मलाया तथा अन्य पडोसी देशो से समय-समय पर सास्कृतिक धाराओ का उस भूमि पर आगमन होता रहा और स्वभाव से समन्वय-प्रिय होने के कारण थाई-समाज उन बाहरी प्रभावो का वडे प्रेम और आत्मीयता से स्वागत करता रहा। पर साथ ही उसकी विशेपता यह रही कि वह उन्हे अपने रग मे रगता गया। नतीजा यह हुआ कि आज उन सारी सस्कृतियो को थाई सस्कृति से पृथक करके देखना वडा कठिन है।

थाई-लोकजीवन को इतना सजीव और मोहक वनाने मे वहाकी नारी का वहुत वडा हाथ है। चीन के जिस दक्षिण भाग से थाई जाति उस देश मे आई थी, वहा निश्चय ही मातृ-मूलक समाज का प्राधान्य रहा होगा। तभी तो स्त्री-प्रभुत्व की परम्परा पुराने समय से वहा चली आ रही है। नारी थाई-समाज की रीढ है। वर्मा की भाति वहा भी घर-वाहर सब जगह स्त्री की प्रभुता दिखाई देती है। वह दुकान चलाती है, कारोवार सभालती है, दफ्तर मे नौकरी करती है, सामाजिक दायित्वो को उठाती है, साथ ही मातृत्व धर्म का पालन करते हुए घर-गिरस्ती की देखभाल भी करती है। थाई-समाज की रचना ही कुछ इस प्रकार हुई है कि स्त्री-पुरुष दोनो आर्थिक एव सामाजिक रूप से स्वतत्र है। इसका

एक परिणाम यह हुआ है कि स्त्री दासी की हीनभावना की शिकार न होकर, सच्चे अर्थो मे पुरुष की सहयोगिनी बनती है ।

लडके-लडकियो की आजादी पर कोई रोकथाम नही है । वे साथ-साथ घूमते है, पढते हैं; इसलिए विवाह के लिए प्राय अपना साथी चुनने मे उन्हे विशेष कठिनाई नही होती । कुछेक के मा-बाप भी चुनाव कर देते है, लेकिन अधिकाशत लडके-लडकियो की अपनी पसन्द ही प्रमुख रहती है । जात-पात का कोई भी बधन नही है । विवाह का निश्चय हो जाने पर, वर्मा की तरह लडकी-लडका बिना किसी से कहे चुप-चाप कही भाग जाते हैं । इससे मा-बाप समझ लेते है कि वे दाम्पत्य-जीवन मे बधने के इच्छुक है । पाच-सात दिन छिपे रहकर बाद मे वे लौट आते है और अपने अभिभावको के सामने जाकर प्रणाम करते हैं । स्वय साथी चुनने की प्रथा के कारण वहा विवाह के लिए 'स्वयवर' शब्द का प्रयोग होता है ।

विवाह की विधि अनिवार्य नही है । पति-पत्नी के रूप मे एक साथ रहना ही वैवाहिक जीवन को वैध बना देता है, लेकिन कुछ अभिभावक उस अवसर पर समारोह करते है । कही-कही पर जलाभिषेक क्रिया की जाती है और घर के बुजुर्ग तथा बौद्ध भिक्षु मत्रोच्चारण करते हैं और आशी-र्वाद देते हैं । मजे की बात यह है कि विवाह के बाद लडकी लडके के घर नही जाती, बल्कि लडका लड़की के घर जाकर रहता है ।

वैवाहिक जीवन को पति-पत्नी दोनो ही सुखी बनाने का प्रयत्न करते हैं, लेकिन किसी कारण से यदि उनमे नही बनती तो वे बडी आसानी से अलग भी हो जाते है । विवाह-विच्छेद के लिए दोनो का सम्मिलित निर्णय काफी होता है । पृथक हो जाने पर वे फिर विवाह करने के लिए स्वतत्र होते हैं ।

सामाजिक जीवन मे दो चीजे वहा साफ दिखाई देती है—भोग और धर्म । थाई लोग अच्छा खाते है, अच्छा पहनते है । उनकी कमाई जो होती है, उसका अधिकाश खाने-पीने मे चला जाता है । उनमे धनी बनने की आकाक्षा नही । यही वजह है कि थाई-समाज मे धनिको की सख्या उगलियो पर गिनी जा सकती है । वहाका व्यापार मुख्यत. चीनियो अथवा भारतीयो के हाथ मे है, पर थाई लोगो को इसकी चिन्ता नही ।

अपने मामूली से रोजगार या नौकरी से उन्हें सतोष रहता है। वेशक, गावो मे चावलो की खेती पर उनका ही आधिपत्य है।

सतोषी जीवन का एक लाभ भी उन्हें हुआ है और वह यह कि पैसे के लालच मे मानव को पशु समझने और दूसरो का शोषण करने की जो हीन वृत्ति प्राय पैदा हो जाती है, उससे वे मुक्त हैं। अचरज होता है कि भोग की इस दुनिया मे थाई लोग कैसे पैसे के मोह से और सग्रह-वृत्ति से इतने बचे रहते हैं! शायद इसका कारण यह है कि उनका स्वभाव ही कुछ दूसरे प्रकार का है।

थाई-लोकजीवन की सबसे वडी विशेषता हमने यह देखी कि उन लोगो के लिए कोई भी काम छोटा नही है। जो व्यक्ति चमडे का काम करता है, वह यह अनुभव नही करता कि उसके हाथो से कोई ओछा काम हो रहा है। इसी प्रकार वडा काम करनेवालो को यह गर्व का अवसर नही होता कि वे ऊचा काम कर रहे हैं। छोटे-वडे सभी काम आवश्यक माने जाते हैं और उन्हें कर्तव्य-भावना से किया जाता है। जाति-भेद वहा नही है, शायद इसीलिए कर्म के साथ छोटे-वडे का अतर नही है।

थाई लोगो की रुचि पोशाक के सवध मे वडी परिष्कृत होती है। स्त्री-पुरुष सभी वहुत अच्छे कपडे पहनते हैं। हम लोग कई नगरो मे घूमे, लेकिन गरीव-से-गरीव आदमी को भी हमने गदे कपडो मे नही देखा। मजदूर-किसान तक जब वाहर निकलते है तो साफ-सुथरे कपडे पहनकर निकलते है। कारखानो मे काम करनेवाले मजदूर अपने काम पर से हटते ही अच्छे कपडे पहन लेते हैं।

थाई लोग स्वभावत उत्सव-प्रिय होते हैं। साल मे वीसियो त्योहार मनाते हैं। उन अवसरो पर उनकी उमग और उनका उल्लास देखते ही वनता है। नव वर्ष के आगमन पर उनका जलोत्सव मानो सारे देश पर आनद की वर्षा कर देता है। नर-नारियो और वच्चो की गाती-वजाती और नाचती टोलिया सडको पर घूमती हैं, मदिरो मे जाती हैं और सडक चलते लोगो पर इतना पानी डालती हैं कि कुछ न पूछिये। उस अमृत-वर्षा मे जीवन की सारी चिन्ताए और अभाव जैसे वह जाते हैं वैर-भाव घुल जाते हैं, जीवन निखर जाता है।

इसी तरह फसल काटने के बाद 'खाऊ-फसाह का' त्योहार वहा के लोकजीवन को आनन्द से परिपूर्ण कर देता है। धान घर मे आ जाने से साल भर के खाने-पीने की बेफिक्री हो गई, फिर क्या कहने !

जन्म और मरण, दोनो थाई निवासियो के लिए विशेप अवसर होते है। जन्मोत्सव पर वे लोग खूब खर्च करते हैं। उसी प्रकार मृतक व्यक्ति के दाह-सस्कार मे भी वे वडी उदारता से काम लेते है। शव को थाई भाषा मे 'शव' ही कहा जाता है। काफी अर्से तक वे शव को रखते हैं। राज-परिवार के शव तो मसाला लगाकर कभी-कभी वरसो तक रखे जाते है। बाद मे वे दाह-क्रिया के लिए कोई दिन निश्चित करते है और गाजे-वाजे के साथ मुर्दे को स्मशान ले जाते हैं, फिर चन्दन के 'सुमेरु' पर रखकर उसे जला देते है। उस अवसर पर भिक्षुओ को खूब दान दिया जाता है। वहुत-से लोग धर्म-ग्रथो मे से चुने हुए वचन लेकर उन्हे छपवा देते हैं। ऐसे छोटे-वडे हजारो प्रकाशन वहापर मिलते है। दाह-सस्कार के दिन प्राय सामूहिक भोज की भी व्यवस्था की जाती है।

नई पीढी के प्रति थाई लोग वड़े सजग होते है। वे वारह साल की उम्र तक अपने बच्चो को पढाते हैं। उसके बाद जो आगे पढना चाहते है, उन्हे उसकी सुविधा दी जाती है। जो आगे नही पढना चाहते, उन्हे काम मे लगा दिया जाता है। श्रम की महिमा के सस्कार उनमे आरम्भ से ही पडे, इसका पूरा प्रयत्न होता है। लडको और लडकियो के प्रति मा-बाप के प्रेम मे कोई अन्तर नही होता। वे दोनो को समान मानकर उनका पालन-पोषण करते हैं।

थाई लोग घरो मे बद होकर बैठने के आदी नही होते। काम से फुरसत मिलने पर अथवा छुट्टी के दिनो मे वे अक्सर बाहर चले जाते है। प्राकृतिक स्थलो पर और ऐतिहासिक केन्द्रो मे छुट्टी के दिन खूब भीड हो जाती है। सप्ताह के कुछ दिनो मे विभिन्न क्षेत्रो मे हाट लगाने की भी परिपाटी है। इन हाटो मे थाईलैण्ड मे पैदा होने या बननेवाली चीजे तो देखने को मिलती ही है, उसका लोकजीवन भी सामने आ जाता है।

अपने मकानो को वे लोग वहुत व्यवस्थित रूप से रखते हैं। मकान बडे नही होते और शहरो से बाहर तो प्राय काठ और वासो की चटाइयो

से ही बनाये जाते है, पर उनकी सफाई देखने लायक होती है। सारी चीजे
करीने मे लगी रहती हैं और लकडी का फर्श चमकता रहता है।

पहनावे मे थाई लोग लुगी पहनते हैं। स्त्रिया भी लुगी पहनती है
लेकिन पश्चिमी विचारधारा के आगमन के साथ अब वहा तग पतलूनो
का चलन शुरू हो गया है। चीनी लोग पाजामा और फतूरी पहनते हैं
भारतवासी धोती, पाजामा या सिलवार।

थाई-लोकजीवन मे धर्म का ऊचा स्थान है। कुछ समय के लिए
थाई लोग भिक्षु अवश्य बनते हैं। बौद्ध विहारो और बौद्ध मन्दिरो की तो
वहा गिनती करना मुश्किल है। भगवा वस्त्रधारी बौद्ध भिक्षु हर कही देखे
जा सकते है। उनके वाटो मे प्राय स्त्री-पुरुषो और बच्चो की भीड लगी
रहती है। वे अपनी सामर्थ्य के अनुसार मदिरो मे चढावा भी चढाते हैं
धर्म के प्रति उनकी निष्ठा ने उनके जीवन को जहा सरल और सादा बनाया
है, वहा लोभ-लालच की व्याधि से भी उन्हे बचाया है।

: २९ :

थाई-साहित्य

थाईलैण्ड मे हमने बराबर इस बात की कोशिश की कि वहा के साहित्य से हमारा परिचय हो और हम देखे कि उनके प्राचीन तथा अर्वाचीन साहित्य का भण्डार कितना समृद्ध है, वर्तमान साहित्यिक धाराए क्या है और वहा का जीवन अपने साहित्य से कितना अनुप्राणित होता है। अपनी इस इच्छा की पूर्ति के लिए हम वहा के प्रमुख लेखक प्रिंस धानी निवात तथा फाया अनुमान रचथौन से मिले, जिसकी चर्चा पिछले पृष्ठो मे कर चुके है। एक अन्य लेखक तथा पत्रकार, जिन्होने पद्रह-बीस पुस्तके लिखी थी, हम लोगो से मिलने आए। प० रघुनाथ शर्मा और स्वामी शासन रश्मी से भी बाते हुई, लेकिन कुल मिलाकर हम पर जो छाप पडी वह यह थी कि थाई-साहित्य बहुत विकसित नही है। नये-पुराने लेखक वैसे काफी हैं, लेकिन ऐसे साहित्य का उनके द्वारा सृजन नही हो रहा है, जिसकी उत्कृष्टता सर्वमान्य हो और जो उच्च कोटि के अतर्राष्ट्रीय साहित्य की प्रतिस्पर्द्धा मे ठहर सके।

इससे हमे आश्चर्य-मिश्रित दु ख हुआ। थाईलैण्ड का इतिहास, पर-म्पराए, सस्कृति काफी पुरानी हैं और वहा की भूमि और जन का सौदर्य निराला है, पर उनके अनुरूप वहा का साहित्य नही पनप रहा है। एक स्वतत्र देश मे साहित्य-भण्डार को भरने का जो चहुमुखी प्रयत्न होता है, उसका वहा अभाव है। हम इसके कारणो मे नही जाना चाहते, पर हमारी अपेक्षा है कि साहित्य-निर्माण की ओर वहा के नागरिको तथा शासको का विशेष प्रयास हो।

थाईलैण्ड के पुराने इतिहास को देखने पर मालूम होता है कि वहा के निवासियो को बराबर सघर्ष करना पडा है। सुखोथाई-काल मे उनके सामने राज्य की प्रतिष्ठा को बढ़ाने का प्रश्न रहा और उनका ध्यान और शक्ति उसी दिशा मे लगी रही। इस प्रकार थाई-इतिहास के उस प्रारभिक

काल मे साहित्य का सृजन नही हो पाया ।

पद्रहवी शताब्दी के मध्य मे साहित्य और रगमच के विकास के लिए विधिवत प्रयत्न आरभ हुए। वहाके इतिहास का द्वितीय चरण अर्थात अजुध्या-काल का आरभ हो चुका था। बौद्ध धर्म की जडे मजबूत हो गई थी। हिन्दू धर्म का प्रभाव था ही। अत उस समय के साहित्य मे हिन्दू और बौद्ध धर्म की प्रेरणाए मुखरित हुई। इसके साथ ही थाई लोक-गीतो और लोककथाओ ने भी तत्कालीन साहित्य को प्रभावित किया। किसी भी देश के जीवन मे लोकसाहित्य का अपना महत्त्व होता है। उसमे उसके जन-जीवन, सुख-दु ख, आशा-आकाक्षा आदि की झाकी मिलती है। थाई लोक कथाओ का एक विशाल सग्रह 'स्यामीज़ टेल्स ओल्ड एण्ड न्यू' (स्यामी लोककथाए प्राचीन और अर्वाचीन) के नाम से निकला। इस काल की लोक-कथाओ मे धार्मिक प्रेरणाओ की प्रमुखता थी, जिन्होने थाई-जीवन की बुनियाद का काम किया।

उस समय तक थाई लोगो की अपनी कोई लिपि नही थी। बौद्ध धर्म के प्रति निष्ठा के कारण आवश्यक हो गया कि पाली मे जो बौद्ध-साहित्य उपलब्ध था, उसका अनुवाद वहा के निवासियो के लिए हो। अत सबसे पहले 'खेमर-लिपि' को ग्रहण किया गया और उसके माध्यम से बहुत-सा बौद्ध-साहित्य अनूदित होकर जन-जीवन के लिए सुलभ बना। बौद्ध-साहित्य के व्यापक प्रसार का एक अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि वहाके जीवन पर उसका गहरा प्रभाव पडा और थाई-साहित्य की धारा का प्रवाह धर्म की दिशा मे मुड गया। सच बात यह है कि उस युग मे धर्म के प्रचार और प्रसार के लिए ही साहित्य को प्रोत्साहन मिला और एक प्रकार से थाई-साहित्य का यही से आरभ होता है। इस काल की दो रचनाए विशेषरूप से उल्लेख-योग्य हैं। पहली है 'ट्राइ-भूमिकथा', जिसके रचयिता राजा लु-थाई थे। इस पुस्तक मे पृथ्वी, स्वर्ग, नरक आदि के वर्णन बडी ही आलकारिक भाषा मे दिये गए हैं। दूसरी पुस्तक है 'प्रा प्रथम सम्पत', जिसमे भगवान बुद्ध का जीवन-वृत्त है।

खमेर लिपि ने उस समय अपना काम किया, लेकिन वह थाई-भाषा के विकास मे पूर्ण रूप से मदद नही कर सकी। अत राजा राम कामेग ने

थाई लिपि का आविष्कार किया। इस नई लिपि मे उस यशस्वी राजा ने अनेक शिला-लेख खुदवाये। इन शिला-लेखो का ऐतिहासिक महत्त्व तो है ही, साहित्यिक मूल्य भी है। उनमे आचार-शास्त्र, लोकोक्तिया, सिद्धान्त-सूत्र इत्यादि का अमूल्य प्राचीन भण्डार सुरक्षित है। बैंकाक तथा लवपुरी के सग्रहालयो मे आज भी बहुत-से शिला-लेख मौजूद है।

अजुध्या के भाग्य ने सन १७६७ मे जब पलटा खाया तो थाई-साहित्य को बहुत ही क्षति हुई। वर्मी हमलावरो ने वहा के साहित्य को भी दूसरी चीजो के साथ नष्ट कर डाला। नतीजा यह हुआ कि आज इस वात का ठीक-ठीक पता लगाना वडा कठिन है कि इस समय मे कौन-कौन-से लेखक हुए और उन्होने साहित्य को क्या-क्या दिया।

फिर भी जो साहित्य वचा, उससे अनुमान किया जा सकता है कि उस काल के साहित्य मे सामतवादी तत्त्वो की प्रमुखता रही। उस समय के साहित्य-स्त्रष्टाओ मे या तो राजा थे या राजघराने के लोग। जनता का उसमे विशेष योग नही रहा।

अजुध्याकाल के राजाओ मे राजा 'ट्रैलाक' का नाम स्मरणीय है। उसने चालीस वर्ष तक, सन १४४८ से १४८८ तक राज्य किया। वह उच्च कोटि का कवि था। उसने'फ़ाला' नामक प्रेम-काव्य की रचना की, जिसकी कथावस्तु रोमियो-जूलियट के कथानक से मिलती-जुलती है। यह प्रेम-कथा अव नाटक के रूप मे परिणत हो गई है और देश-विदेश मे मच पर उसका अभिनय वडा लोक प्रिय हुआ है।

ट्रैलाक के वाद राजा राम द्वितीय का नाम आता है। इन्होने ट्रैलाक के शौर्य को अपने काव्य का आधार वनाया। इस पुस्तक मे पाडित्यपूर्ण अन्त कथाओ की भरमार है। ये कथाए मुख्यत हिन्दू आख्यानो से ली गई हैं।

अजुध्या के राजाओ के फ्रास के राजवश के साथ जव घनिष्ट सवध स्थापित हुए तो थाई-साहित्य व्यापक बना। दोनो देशो के राजाओ ने अपने-अपने राज-प्रतिनिधियो को एक-दूसरे के यहा भेजा। इस पारस्परिक आदान-प्रदान का प्रभाव थाई-जीवन पर पडा और उसने थाई-साहित्य को भी अछूता नही छोडा। वहुत-से ईसाई साहित्य का थाई भाषा मे

अनुवाद हुआ । वहा के राजा नराय के दरबार मे कई कवि थे । राजा स्वय बडा कला-प्रेमी था । फलत उस जमाने मे साहित्य को अच्छा प्रोत्साहन मिला । राज-दरबार मे चुटकलो, लघुकथाओ, गीतो आदि का बडा महत्त्व होता है । इनकी पर्याप्त वृद्धि हुई । राजा को समस्या-पूर्ति का बडा शौक था । वह किसी छद की पहली पक्ति बोलता था । दरबारी कवि उसकी पूर्ति करते थे । इस तरह कई कवि उभरे, साहित्य को गति मिली ।

उस समय के कवियो मे पराज नामक कवि की दो कृतिया 'क्लाग कमसुआन' और 'अनिरुद्ध' साहित्यिक दृष्टि से उत्तम मानी जाती हैं । पहली गीति काव्य है और भावो की व्यजना तथा वर्णनो की सजीवता के कारण उसका बडा मान है । दूसरी प्रेमाख्यान है और उसके शब्द-चित्र पाठको को मुग्ध कर देते है ।

अजुध्या-काल के अन्य कवियो मे राजकुमार धर्म धीवट का नाम आता है । उन्होने अपनी एक रचना मे रूपको और उपमाओ के द्वारा एक प्रेमिका की तुलना प्रकृति के सौंदर्य के साथ की है ।

इस सबके साथ-साथ इस काल के थाई-साहित्य मे, विशेषकर काव्य मे, वीररस का परिपाक हुआ है । इन वीर-गाथाओ का नायक कोई राजा या राज-वश का व्यक्ति होता था और वह अपनी अपूर्व वीरता का परिचय देता था । इस तरह, इस काल के थाई काव्यो मे एक ओर वीरता की कहानिया मिलती हैं तो दूसरी ओर प्रेम के आख्यान ।

कहा जाता है कि आज से लगभग दोसौ वर्ष पूर्व अजुध्या के एक राजा की दो रानियो ने जावा के इतिहास मे प्रचलित एक प्रेम-कथा पढी। उन्हें वह इतनी पसन्द आई कि उन्होने उसका नाटकीकरण किया। लेकिन दोनो के अपने-अपने ढग से लिखने के कारण कथा मे थोडा अतर पड गया, शैली भी भिन्न हो गई । अत मूल-कथा एक होते हुए भी वे दो कृतिया हो गई । उनमे से एक का नाम है 'इनाड-याइ' और दूसरी 'इनाड लेक' । थाई भाषा के नाट्य-साहित्य मे इन दोनो नाटको का ऊचा स्थान है ।

सामान्य परिवार के नायक-नायको को जिस रचना मे पहली बार स्थान मिला, वह है 'कुन-चाग-कुनपान' । इस नाटक मे उस समय के लोकजीवन का बडा ही प्राणवान चित्र प्रस्तुत किया गया है ।

अजुध्या-युग का साहित्य मुख्य रूप से काव्य तक सीमित रहा। गद्य-साहित्य का आरभ बैंकाक-युग के आगमन (सन १७८२) के साथ हुआ। सर्वप्रथम बहुत-से चीनी ग्रथो का अनुवाद हुआ। पर भावो को साहित्य का रूप देनेवाले व्यक्तियो मे सबसे पहले व्यक्ति थे राजा योदफा चुलालाक, जो बडे वीर और प्रतिभाशाली कवि थे। इन्होने स्यामी रामायण 'रामकिन' की रचना की। थाई-साहित्य की सुन्दर रचनाओ मे इसकी गणना होती है। 'रामकिन' की लोकप्रियता इतनी है कि शास्त्रीय नाटक 'खोन' मे कथावस्तु केवल इसी कृति से ली जाती है। इसका अगरेजी अनुवाद स्व० स्वामी सत्यानद पुरी द्वारा 'राम कीर्ति' के नाम से किया गया है। उसका हिन्दी रूपान्तर श्री गगाप्रसाद उपाध्याय ने किया है।

बाद के कई लेखको ने 'रामकिन' को और अधिक परिमार्जित करने का प्रयत्न किया। इन लेखको मे राजा ल्योतला की शैली, भाषा आदि बढिया है। इस राजा ने और भी कुछ नाट्य-रचनाए की है।

योदफा और ल्योतला के राज्य-काल मे सन्तार्न-पू काव्य-क्षेत्र मे एक नई शैली के प्रणेता माने जाते हैं। इनके 'फ्रा अफाई' गीत-सग्रह की अपनी महिमा है। इस महाकवि ने अपनी रचनाओ के अधिष्ठान सार्वजनिक जीवन से लिये—वियोगी की पीडा, पश्चात्ताप की आग, सत्य की जय, आदि-आदि। अत उनकी रचनाओ की लोकप्रियता देशकाल की सीमाओ को लाघ गई।

सन्तार्न-पू के परवर्त्ती लेखको मे राजा 'नाग-क्लाड' ने राष्ट्रीय साहित्य का विकास किया। उनकी रचनाओ मे 'सग सिलजै' नामक गीति-काव्य का विशेष महत्त्व है। उनके बाद राजकुमार पेट्रियार्च परमानुचित को उस युग के 'साहित्याकाश का सूर्य' माना जाता है। उनकी तीन पुस्तके—'समूत कोट', 'तालेग-पाई' और 'कृष्ण-उपदेश' विख्यात है। इनमे से पहली मे उन्होने राजा नर-सुआन की बहादुरी का वर्णन किया है। इस कृति ने थाईलैंण्ड मे देश-भक्ति की भावना जाग्रत करने मे बडा काम किया है। तीसरी मे कृष्ण द्वारा सुभद्रा को दिया गया उपदेश थाई नारी-समाज के लिए प्रेरणा का स्रोत रहा है।

राजा चुलालौंग-कर्न का नाम थाई-साहित्य मे बडे आदर के साथ

लिया जाता है। यह राजा विद्वान और उच्च कोटि के लेखक थे। इनकी पत्र-लेखन शैली प्रभावशाली थी। इनके पत्र-सग्रह 'वलेवान' मे उन पत्रो को सकलित किया गया है, जो इन्होने यूरोप के प्रवास मे अपनी पुत्री के नाम लिखे थे। इनके 'स्याम के राजकीय उत्सव' प्रवध के अतिरिक्त निन्नाचक्रीत' और 'निगोप' प्रेम-काव्य भी प्रसिद्ध हैं। गद्य मे इनके निवधो और डायरी का अपना महत्त्व है।

राज वजिर वुद्ध वहुमुखी प्रतिभा के लेखक थे। उनके 'नल' और 'शकुन्तला' थाई-साहित्य के अमर नाटक हैं। उनकी अन्य रचनाओ मे 'फ्रा-सुभाग' नाटक वडा लोकप्रिय है। इसकी रचना राष्ट्रीय नेता राजा राम कमेग के जीवन की घटनाओ के आधार पर की गई है। उनके द्वारा अनूदित नाटको मे शेक्सपियर के 'एज यू लाइक इट', 'मर्चेन्ट ऑव वेनिस' तथा 'रोमियो-जूलियट' हैं। उनके निवधो का सग्रह 'अश्व-वाहु' शैली की दृष्टि से वडा सुन्दर है।

आधुनिक उपन्यास-कला को विकसित करने मे भी इनका अच्छा योगदान रहा। जव वह इगलैण्ड मे पढ रहे थे, उन्होंने थाई अधिकारियो का एक साहित्यिक क्लव स्थापित किया। उन अधिकारियो ने कहानियो, निवध, उपन्यास आदि के द्वारा थाई-साहित्य की अभिवृद्धि की। इस क्लब ने नई प्रतिभाओ को प्रोत्साहन देने की दिशा मे भी अच्छा कार्य किया। क्लव के कुछ सदस्यो ने अगरेजी की विख्यात लेखिका मेरी कारोली के 'वेण्डेटा' नामक उपन्यास का थाई भाषा मे अनुवाद किया।

वाद के साहित्य-सेवियो मे राजकुमार विद्यालकार्न का नाम उल्लेखनीय है। उन्होने 'नल' और 'स्वर्ग नखान' कृतियो के द्वारा थाई पाठको को हास्य तथा व्यग्यात्मक निवधो की ओर उन्मुख किया। निवध-साहित्य के सृजन मे 'क्रोव' का भी योग रहा।

गद्य-लेखन मे फाया-वेमुरिन का अपना स्थान रहा है। 'माए-वान' उपनाम से वह लिखते रहे है। उन्होने कम लिखा है, पर जो लिखा है, वह आधुनिक गद्य साहित्य का एक नमूना माना जाता है।

राजकुमार डाम-रुमाग की गणना अर्वाचीन थाई साहित्य के प्रमुख लेखको मे होती है। उनकी 'स्याम मे वौद्ध स्मारक' वडी महत्त्वपूर्ण

कृति है। इसके अतिरिक्त उन्होंने बर्मा के युद्ध तथा शास्त्रीय नाटक-काल पर भी कुछ निबध लिखे हैं।

इस सारे साहित्य का अपना महत्त्व है, पर थाईलैण्ड के इतिहास और परम्पराओ को देखते हुए यह सब सागर मे बूद के समान है। अपेक्षा है कि साहित्य तथा कला की दृष्टि से ऊचे दर्जे का साहित्य इस भूमि से उपजे, साथ ही विश्व का चुना हुआ साहित्य वहा की भाषा मे अनुवाद द्वारा सुलभ हो।

किसी भी देश के विकास मे साहित्य का बडा हाथ होता है। हम आशा करते है कि विकास की मजिल पर बढते हुए उस देश की प्रतिभाए इस दिशा मे उदासीन नही रहेगी।

: ३० :

बैंकाक में भारतीय और भारतीय संस्थाएं

थाईलैण्ड मे भारतीयो की आवादी करीव वीस हजार है। उनमे से आधे से ज्यादा वैंकाक मे रहते हैं। धधे के हिसाव से उन्हे चार भागो मे वाटा जा सकता है १ व्यापारी, २ दरवान, ३ दूधिया (दूधवाले) और ४. नौकरपेशा। व्यापारियो मे पजावी कपडे का धधा करते है, गुजराती तथा मारवाडी निर्यात एव सोने-चादी का। सख्या के विचार से वहा सवसे अधिक लोग उत्तरप्रदेश के गोरखपुर जिले के है। उनके पूर्वज सैकडो साल पहले ब्रह्मदेश से पैदल चलकर वहा आये थे। उनमे से कुछ दरवान वने और कुछ ने गो-पालन का काम शुरू किया। उनकी यह परम्परा आजतक चली आती है। सरकारी आफिस हो या निजी दफ्तर, वडी फर्म हो या छोटी दूकान, सवके सामने खाकी वर्दी मे खडे अथवा स्टूल पर बैठे आपको 'गोरखपुरी भैया' ही दिखाई देंगे। दरवान के रूप मे वहा भारतीयो की वडी साख है और उस धधे पर एक प्रकार से उन्हीका आधिपत्य है। हमे वताया गया कि कुछ फर्मों ने थाई लोगो को दरवान नियुक्त किया, लेकिन वह प्रयोग उन्हें महगा पडा।

दरवानी से जिन्हे कुछ वचत हो गई, उन्होने दूध का काम जमा लिया। वैंकाक से ६–७ मील पर ये दूधिया रहते है और वहीपर अपनी गायें रखकर घोडागाडी की मदद से अपना कारोवार चलाते हैं। शहर को दूध देने का काम मुख्यरूप से इन्ही लोगो द्वारा होता है।

चौथे वर्ग मे वे लोग आते हैं, जो वहा नौकरियो मे लगे हुए है। भारतीय मित्रो से हमे पता चला कि वहा नौकरी मिलने मे वहुत ज्यादा कठिनाई नही होती और अपढ-से-अपढ आदमी भी दो-ढाईसौ रुपया कमा लेता है। किफायतशारी से रहकर उनके पास कुछ पैसा जमा हो जाता है तो वे कोई धधा चालू कर देते है।

इसमे कोई सन्देह नही कि दो-चार अपवादो को छोडकर प्राय सभी

रतीयो का एक ही लक्ष्य है, यानी कमाई करना। उनमे से कुछेक तो
पति बन गए है, कुछ के हाथ मे बडे-बडे उद्योग है और कुछ धनी बनने
लिए कोशिश कर रहे है। सबके जीवन मे अर्थ-चेतना का प्राधान्य
। दरबानो और उनके रग-ढग को देखकर विष्णुभाई और मुझे बहुत
झुझलाहट होती थी। हम लोग कहते थे कि इतनी दूर आकर इन्हें क्या
र कोई 'इज्जत का' काम नही सूझता! वे लोग 'भैया' कहलाते है,
सका मतलब होता है, नौकर। इस दरबानी पेशे का एक नतीजा यह
ा है कि इन लोगो के लिए इस्तेमाल होनेवाला शब्द 'भैया' भारतीयो
पर्याय बन गया है। अपने मित्रो के सामने जब हमने अपनी बात कही
उन्होने बताया कि भारत से जो लोग वहा आते है उनमे से ज्यादातर
शिक्षित और अनुभवहीन होते है। अत दरबानी के अलावा और किसी
ाम के लिए उनमे क्षमता ही नही होती।

भारतीयो का रहन-सहन ठीक अपने देश जैसा है। जहा उनके कारो-
ार का केन्द्र है, वहा जाने पर ऐसा लगता है, मानो हम भारत के ही किसी
गर मे हैं। धोती, कुर्ता, पाजामा का खूब प्रचलन है; महिलाए साड़ी
हनती हैं।

थाईलैण्ड के निवास-काल मे हमे बहुत-से भारतीयो से अलग-अलग
था सामूहिक रूप मे मिलने का कई बार अवसर मिला। अपने देश का
हा कोई प्रमुख व्यक्ति आता है तो वे उसे सिर-माथे उठा लेते हैं। उसके
नए सब प्रकार की सुविधाए प्रस्तुत करते हैं और उसे पूरा मान देते हैं,
किन जरा-सा मौका मिलने पर वे एक-दूसरे की ऐसे निन्दा करते हैं कि
ुननेवाले को भी शर्म आती है। अनैतिकता के हमे बीसियो किस्से सुनने को
मले। जहा पैसा कमाना ही एकमात्र ध्येय हो, वहा सचाई, ईमानदारी और
ीति-परायणता की अपेक्षा रखना भूल होगी। फिर भी, भारत की सीमा
 बाहर भारतीयो को देखकर सहज इच्छा होती कि अपने देश मे जो उत्तम
, उसका वे प्रतिनिधित्व करे और उनके द्वारा भारतीय सस्कृति का
उज्ज्वल रूप ही विदेशियो के सामने आवे, पर इसान की कमजोरियां
अक्सर उसका पीछा नही छोडती।

जो हो, हमे सबसे अधिक तकलीफ यह देखकर हुई कि वहा के ज्यादा-

सर भारतीय जात-पात का भेदभाव रखते है और थाई लोगो को अछूत-जैसा मानकर न उनसे खुलकर मिलते हैं न उनके साथ खान-पान का व्यवहार रखते हैं। भाई जगदीशसिंह का एक दृष्टात इसके अपवाद स्वरूप हमारे सामने जरूर आया, जिन्होने एक सुशिक्षित भद्र थाई महिला से विवाह किया है। उनके कमला और शकुतला नाम की दो बडी प्यारी लडकिया हैं। थाई-भारत-कल्चरल लॉज के सचालक प० रघुनाथ शर्मा भी अपनी उदार तथा व्यापक दृष्टि के लिए थाई-समाज मे वहुत लोकप्रिय है। हो सकता है, कुछ और भी मिसालें निकल आवे, लेकिन बीस हजार की आबादी मे ये चद मिसालें खास अर्थ नही रखती। ऊच-नीच की इस दूषित मनोवृत्ति का एक अनिवार्य परिणाम यह हुआ है कि पीढियो मे रहने पर भी भारतीयो की जडें वहा बहुत गहरी नही जा सकी हैं और उस भूमि के साथ उनका नाता हृदय का नही, केवल अर्थ और स्वार्थ का है। अपनी भूमि और जन के विदेशियो द्वारा गलत इस्तेमाल किये जाने के विरुद्ध प्रत्येक देश की बढती चेतना को देखते हुए भारतीयो की यह नीति आगे चलकर निश्चय ही विघातक सिद्ध होगी। हमारे कुछ भाई युग के इस सकेत के प्रति सजग हो रहे हैं, यह शुभ बात है।

थाई-भारत कल्चरल लॉज

बैंकाक मे कई भारतीय सस्थाओ को देखने का हमे मौका मिला। 'थाई-भारत-कल्चरल लॉज' मे तो हम ठहरे ही थे। उसकी स्थापना स्वामी सत्यानद पुरी ने भारतीय तथा थाई सस्कृतियो के तुलनात्मक अध्ययन को प्रोत्साहन देने और दोनो देशो के इतिहास एव सस्कृति से जनसामान्य का पारस्परिक परिचय कराने की भावना से सन १९४० मे की थी। वस्तुत लॉज उस 'धर्माश्रम' का विकसित रूप है, जो स्वामीजी द्वारा प्राच्य सस्कृति के प्रसार के उद्देश्य से सन १९३२ मे स्थापित हुआ था। स्वामीजी बडे मेधावी व्यक्ति थे। कलकत्ता विश्वविद्यालय से दर्शन में और काशी विश्वविद्यालय से सस्कृत मे एम०ए० करने के बाद उन्होने कलकत्ता विश्वविद्यालय मे कुछ दिन अध्यापन का कार्य किया, फिर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की प्रेरणा से सन १९३२ मे थाईलैण्ड चले गए। जाने से पहले उन्होने बौद्ध-धर्म की दीक्षा ले ली थी। थाईलैण्ड पहुचकर कुछ

ही दिनो मे उन्होने न सिर्फ थाई भाषा सीख ली, अपितु अपनी साहित्यिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक प्रवृत्तियो से थाई लोगो का हृदय भी जीत लिया। उन्होने 'वॉइस ऑव दी ईस्ट' नामक एक पत्र निकाला और अगरेजी, सस्कृत तथा थाई भाषा मे अनेक पुस्तके लिखी। उनकी 'राम कीर्त्ति' (थाई-रामायण के आधार पर अगरेजी मे रामकथा) तो वहुत ही लोकप्रिय हुई। थाई भाषा की पुस्तको मे गांधीजी की जीवनी, तर्क-सिद्धात्त, प्राच्य-दर्शन आदि पुस्तको ने वडा उपयोगी कार्य किया। ३ मार्च, १९४२ को जापानी अधिकारियो के बुलावे पर स्वामीजी सिगापुर गये और वहा से विमान द्वारा टोकियो के लिए रवाना हुए। यह २४ मार्च की बात है। बाद मे समाचार मिला कि विमान दुर्घटना का शिकार हो गया और स्वामीजी की जीवन-लीला समाप्त हो गई। लेकिन उन्होने 'थाई-भारत-कल्चरल लॉज' के रूप मे जो पौधा लगाया था, वह आज भी उनकी कीर्त्ति-पताका फहरा रहा है।

इस सस्था को वास्तव मे वडा उथल-पुथल का समय देखना पडा। हमे बताया गया कि युद्ध के दिनो मे मित्र-राष्ट्रो की सेनाओ ने इसके साथ बडा ही निन्दनीय व्यवहार किया। उसका विशाल पुस्तकालय तथा दूसरी चीजे आग की भेट कर दी गई या लूट ली गई। स्वामीजी के निधन के बाद लॉज के साथ स्वामीजी की स्मृति के रूप मे 'स्वामी सत्यानन्द पुरी फाउडेशन लाइब्रेरी' जोड दी गई। ३१ मई सन १९४५ को जब नेताजी सुभाषचन्द्र बोस इस सस्था को देखने आये तो पुस्तको के विपुल सग्रह को देखकर उन्हें वडा हर्ष हुआ और उन्होने सस्था की वडी सराहना की। इतना ही नही, उन्होने एक लाख टिकल की सहायता भी इस सस्था को दी। नतीजा यह हुआ कि सन १९४६ मे सस्था की बन्द प्रवृत्तिया फिर से चालू हो गई। आज लॉज का अपना भवन है और वह थाई, सस्कृत तथा हिन्दी के वर्ग चलाने, पुस्तकालय का सम्वर्द्धन करने, विविध सास्कृतिक विषयो पर व्याख्यान कराने, भारतीय इतिहास तथा सस्कृति पर थाई मे और थाई इतिहास एवं सस्कृति पर हिन्दी मे पुस्तकें निकालने, थाइलैण्ड तथा भारत के विद्वानो का विनिमय कराने, थाई भाषा में प्रयुक्त सस्कृत के शब्दो का सग्रह करने आदि की दिशा में अभिनन्दनीय कार्य कर

रहा है। स्वामीजी द्वारा रोपे पौधे को प० रघुनाथ शर्मा ने वडे परिश्रम और निष्ठा से सीचा है और आज भी सीच रहे हैं। स्वामीजी के वाद सस्था के विकास का श्रेय मुख्यत शर्माजी को ही है। उनका वहुत-सा समय लॉज के अभिवर्द्धन के चिंतन और कार्य मे व्यतीत होता है। वाहर से आनेवाले भारतीयो के लिए लॉज के अतिथि-गृह का द्वार सदा खुला रहता है। इसके अलावा मेहमानो को और भी सुविधाए लॉज की ओर से मिल जाती हैं। लॉज के विशाल पुस्तकालय से भारतीय तथा थाई, दोनो समान रूप से लाभ उठाते हैं। पारस्परिक मिलन का भी वह एक महत्त्व-पूर्ण केन्द्र है। सस्था के अध्यक्ष फाया अनुमान रचथौन हैं, जिनसे भेंट की सविस्तार चर्चा हम अन्यत्र कर चुके हैं। सस्था के पदाधिकारियो मे और भी कई सम्माननीय थाई सज्जन हैं। राजनीति से अपने को सर्वथा अलग रखकर इस सस्था ने सेवा के वल पर वहाके लोकजीवन मे अच्छा स्थान बना लिया है। स्वामी शासन रश्मी का भी सहयोग उसे मिल रहा है।

भारतीय विद्यालय

जिस भवन मे लॉज है, उसीके कई कक्षो मे भारतीय विद्यालय के वर्ग चलते है। जिस समय इस विद्यालय का निर्माण हो रहा था, पूरा भारतीय समाज उसके पीछे था, लेकिन दुर्भाग्य से आगे चलकर नाम को लेकर आपस मे मतभेद हो गया। एक पक्ष का कहना था कि उसका नाम भारतीय अथवा गाधी विद्यालय रखा जाय, दूसरे का आग्रह था कि उसका नाम 'गुरुद्वारा हाईस्कूल' हो। दोनो पक्षो मे समझौता कराने का वहुत प्रयत्न किया गया, भारतीय दूतावास भी वीच मे पडा, लेकिन समझौता नही हो सका। नतीजा यह हुआ कि वैकाक की एक सकरी गली मे पाच मजिल की एक इमारत और खडी की गई, जिसका नाम 'गुरुद्वारा हाईस्कूल' रखा गया। इस प्रकार वहा दो भारतीय विद्यालय चल रहे हैं। शिक्षा का माध्यम थाई होते हुए भी इन सस्थाओ मे हिन्दी और अगरेजी शिक्षण की अतिरिक्त व्यवस्था है। भारतीयो की शिक्षा की वहुत वडी कमी की पूर्ति यद्यपि इन विद्यालयो से हो गई है, तथापि भारतीयो की आपसी फूट का ज्वलन्त उदाहरण भी वे प्रस्तुत करते हैं।

हिन्दूसमाज

भवन मे अदर घुसते ही सामने 'हिन्दूसमाज' का बोर्ड लगा दिखाई देता है। यह समाज सत्सग, धार्मिक प्रवचन, पाठ आदि की व्यवस्था करता रहता है, लेकिन छुट्टी के दिनो को छोडकर बाकी के दिनो मे उपस्थिति बहुत थोड़ी रहती है। रविवार के दिन 'समाज' ने विष्णुभाई और मुझे बुलाया। उपस्थिति अच्छी थी। शर्माजी ने सस्था का और हम दोनो का परिचय कराया, फिर हम दोनो के भाषण हुए। हम दोनो ने इस बात पर विशेष जोर दिया कि वहा रहनेवाले भारतीयो को उस देश के और देशवासियो के साथ गहरा सबध स्थापित करना चाहिए।

आर्यसमाज

जहा भारतीय हो, वहा आर्यसमाज न हो, यह कैसे सभव है? आर्यसमाज के अधिकारी हम लोगो के वहां पहुचते ही मिलने आये थे। वे हमे 'समाज' मे ले गए, बडी हार्दिकता से उन्होने हमारा अभिनन्दन किया और ध्यान से हमारी बातें सुनी। विदाई के समय भी वे लोग आये और उन्होंने स्नेहसिक्त उपहारो के साथ हमारे आगे के प्रवास के लिए मंगल-कामनाए की। समाज का अपना भवन है, जिसमे समय-समय पर व्याख्यान आदि प्रवृत्तिया चलती रहती हैं। समाज का छोटा-सा पुस्तकालय भी है।

विष्णुमन्दिर

आर्यसमाज के निकट ही 'विष्णु मदिर' नाम की एक स्वतत्र सस्था है, जहा भजन-कीर्तन की अच्छी व्यवस्था है। भारतीय अतिथियो के ठहरने के लिए कुछ कमरे भी उसमे बनवा दिये गए हैं।

नेताजी प्रसूति-गृह

नेताजी और 'आजाद हिन्द फौज' के साथ थाईलैण्ड के भारतीयो का बड़ा निकट का सबध रहा है। लोगो ने नेताजी पर धन तो बरसाया ही, आजाद हिन्द फौज मे भर्ती होकर भी बहुतो ने भयकर यातनाए सही। बैंकाक के अस्पताल मे प्रसूति के लिए जो भाग सुरक्षित है, वह नेताजी के नाम पर है। नेताजी ने उसके लिए डेढ लाख टिकल दिये थे। उतने ही टिकल उन्होंने विश्वविद्यालय को प्रदान किए थे। उसके व्याज से

छात्र-छात्राओ को छात्रवृत्तिया दी जाती है ।

हर देश की भाति भारतीय राजदूतावास भी वहा है । 'आजाद हिन्द फौज' के कर्नल निरजनसिह गिल हमारे राजदूत है । गिल साहब उधर की हालत से भली भाति परिचित हैं । उनके द्वारा थाईलैण्ड और भारत के बीच अटूट सबध स्थापित हो सकें तो बडे हर्ष की बात होगी ।

इनके अलावा और भी कुछ भारतीय सस्थाए है, लेकिन यहा हमने केवल उन्ही सस्थाओ की चर्चा की है, जिनसे हमारा प्रत्यक्ष सम्पर्क हुआ था ।

: ३१ :

थाईलैण्ड में भारतीय संस्कृति

भारत के पुरातन इतिहास तथा सस्कृति के विशेषज्ञ एक भारतीय विद्वान ने लिखा है, "स्याम (थाईलैण्ड) और कम्बुज (कम्बोडिया) देशो की सस्कृति के विषय मे क्या कहा जाय ! ऐसा प्रतीत होता है, मानो भारतीय महाद्वीप के घूमते हुए सस्कृति-चक्र का ही एक प्राणवत खण्ड किसी समय उससे अलग होकर अभीतक बचा रह गया है। आज भारत मे बहुत-सा पटपरिवर्तन हो चुका है, किन्तु स्याम मे भारत की वह सस्कृति थाई जाति की राष्ट्रीय भावनाओ का सिचन करती हुई आज भी जीवित है। यद्यपि यह उस देश के साचे मे ढल गई है, फिर भी उसका उज्ज्वल भारतीय रूप अपने उद्गम के प्रति सच्चा बना है।"

उपर्युक्त कथन मे थाईलैण्ड मे भारतीय सस्कृति के प्रभाव का बडा ही यथार्थ चित्रण किया गया है। वहा के धर्म, कला, साहित्य और आचार-विचार पर भारतीय सस्कृति की गहरी छाप है। भारत और इन एशियाई देशो के सबध बहुत पुराने समय से रहे हैं। गुप्तकाल से कुछ पूर्व ही कम्बोज देश भारत के प्रभाव मे आ गया था, बल्कि प्राचीन कम्बोज भारत के विशाल महाद्वीप का ही अग समझा जाता था। गुप्तकाल मे भारत का अर्थ व्यापक हो गया और इतिहास बताता है कि उसके नौ भेदो मे मलयद्वीप, यवद्वीप, सुवर्णद्वीप, कम्बुज, वारुण आदि समाविष्ट थे। उस काल मे भारतीय सस्कृति का वहा विशेष प्रचार हुआ। उस समय स्याम देश कम्बोज के ही अन्तर्गत था और वह द्वारवती के नाम से विख्यात था। उसकी राजधानी थी लवपुरी, जहा गुप्तकालीन कला के सौंदर्य से परिपूर्ण सारनाथ, मथुरा तथा अजता जैसी बुद्ध तथा विष्णु की पत्थर एव धातु की मूर्तिया आज भी विद्यमान हैं। तेरहवी शताब्दी के अन्त मे जब स्याम मे सुखोदय साम्राज्य की स्थापना हुई, उस समय सम्राट राम गद्दी पर बैठे। उनके पौत्र हृदयराज ने अर्द्धशताब्दी के उपरान्त अयोध्या नामक स्थान को अपने देश की राजधानी

बनाया। उस काल मे कला की बडी उन्नति हुई। श्री सूर्यवश के राम महा-धर्माधिराज के राज्यकाल मे शिला-पट्टो पर जातक कहानिया उत्कीर्ण की गई। उन शिलापट्टो की भव्यता आज भी देखते ही बनती है।

थाईलैण्ड मे कही भी जाइये, भारतीय सस्कृति और स्थापत्य-कला के बडे ही मूल्यवान प्रतीक मिलते हैं। बौद्ध मन्दिरो की दीवारो पर और उनकी गैलरियो मे रामायण तथा महाभारत के बीसियो प्रसग उत्कीर्ण या चित्रित हैं। बैंकाक, अजुध्या, लवपुरी आदि के सग्रहालयो मे भारतीय देवी-देवताओ की पाषाण एव धातु की प्रतिमाए भरी पडी हैं। उनकी आकृति पर यद्यपि थाई प्रभाव है, तथापि उनका सबध भारतीय धर्म एव सस्कृति से है। ब्रह्मा, लक्ष्मी, विष्णु, गरुड, हनुमान आदि सब अपने वास्तविक नाम से ही जाने जाते हैं। लवपुरी के एक मन्दिर के गर्भ-गृह की वेदी पर यद्यपि आज भगवान बुद्ध की प्रतिमा प्रतिष्ठित है, तथापि वह शिवलिग के नीचे की वेदी है। मदिर की बाहरी दीवारो की खुदाई भारतीय शैली की है और उसके ऊपर के गुम्बद तथा शिखर दक्षिण के मन्दिरो से मिलते-जुलते हैं।

लवपुरी के पास प्राचीन खण्डहर के अवशेषो के बीच एक पुराना वट-वृक्ष टेकरी पर खडा है। लोगो का मानना है कि इस टीले पर हनुमान ने तपस्या की थी। इसलिए उसका नाम 'हनुमान टेकरी' पड गया है और आज भी वह उसी नाम से पुकारा जाता है। जायसी के 'पद्मावत' में हनुमान के सबध मे उल्लेख आता है—"लका छाडि पलगा परा," अर्थात लका को छोडकर हनुमान पलगा मे जा गिरे। मध्यकालीन भूगोल के अध्ययन से पता चलता है कि 'पलगा' से मतलब हिन्द-एशिया के द्वीपो से था।

रामायण के लिए थाईलैण्ड मे असीम श्रद्धा और अनुराग है, यहातक कि वहा के राजा के गद्दी पर बैठने पर उसका नाम बदलकर राम के नाम पर हो जाता है। राम प्रथम, राम द्वितीय इत्यादि। आजकल राम अष्टम गद्दी पर हैं। थाई भाषा मे रामायण और महाभारत दोनो के अनुवाद हुए हैं। रामायण के तो वहा एक से अधिक सस्करण प्रचलित हैं। रामायण के प्रसंग आज भी वहा मचो पर खेले जाते हैं। वस्तुत नाटक का प्रादुर्भाव वहा रामायण से हुआ है। शास्त्रीय नाटको की कथावस्तु रामायण से ही ली गई है। सावित्री-सत्यवान और शकुन्तला के नाटक भी वहा रगमच पर सफलता-

पूर्वक खेले गए है और बहुत पसन्द किये गए हैं। कहते हैं, 'राम-राज्य' चित्र-पट के थाई-सस्करण का वहा इतना स्वागत हुआ कि वह बैंकाक नगर मे छ महीने तक चलता रहा। रगमच तथा पात्रो की वेश-भूषा पर भारतीय परम्परा की छाप रहती है।

रामायण के प्रति थाईलैण्ड के गावो मे भी बडी श्रद्धा है। नाटक-मण्डलिया घूम-घूमकर वहा रामलीला दिखाती है। अनगिनत स्त्री-पुरुष बडी भक्ति-भावना से उसे देखते है। 'खोन' नाट्यशैली मे पात्र नकली चेहरे लगाकर अभिनय करते हैं। सभवत यह कल्पना भारत मे होनेवाली रामलीला से ही ली गई है, जिसमे रावण आदि चेहरे लगाकर सामने आते हैं।

थाईलैण्ड की मूर्तिकला पर भी भारतीय प्रभाव है। वहापर मूर्तिकला का आरभ बुद्ध अथवा अन्य देवताओ की मूर्तिया बनाने या ढालने के निमित्त हुआ था। कहने का तात्पर्य यह कि मूर्तिकला उस देश मे धर्म को पोषण देने के लिए ग्रहण की गई थी और आज भी वहापर उसका यही प्रयोजन है। चित्रकला के साथ भी यही बात है। मूर्ति और चित्र बनाने मे कही-कही तो कलाविदो ने कमाल कर दिखाया है। कुछ मूर्तियो की भाव-भगिमा इतनी सजीव है कि उनपर से निगाह नही हटती।

बहुत-से नगरो के नामो को सुनकर तो ऐसा लगता है, मानो हम भारत में ही हो। नगर प्रथम, अजुध्या, उत्तर दिशि, विष्णु-लोक, लवपुरी आदि दसियो नाम ऐसे हैं, जो भारतीयता का बोध कराते हैं।

यद्यपि थाईलैण्ड के नगरो मे पश्चिम का प्रभाव बडी तेजी से बढ रहा है, तथापि आज भी वहाके व्यवहार मे भारतीयता की झलक मिलती है। हम पहले ही बता चुके है कि वहा कोई भी हाथ नही मिलाता। हाथ जोडकर नमस्कार करते है और विदाई के समय 'स्वस्ति' शब्द का प्रयोग करते है। बौद्ध भिक्षुओ के चरणो मे सिर झुकाने की प्रथा आज भी वहा सर्वत्र प्रचलित है। लोगो के बीच झुककर इधर-से-उधर जाना, घुटने टेककर विनम्रतापूर्वक कोई चीज देना आदि-आदि के पीछे प्राचीन भारतीय आचार-पद्धति की ही प्रेरणा जान पडती है। कुछ समय पहले तक वहा दो लाग की धोती राष्ट्रीय पोशाक के रूप मे पहनी जाती थी। आज भी वहाके देहातो मे नर-नारी

वैसे ही धोती पहने हुए दिखाई दे जाते हैं। धोती और फतूरी पहने देखकर, कभी-कभी भ्रम हो जाता है कि वह व्यक्ति थाई है अथवा भारतीय।

थाई भाषा में आज भी सस्कृत-हिन्दी के ८० प्रतिशत शब्द हैं। शव, आयु, नियम, राष्ट्र, पुरुष, गणित-शास्त्र, बीजगणित, आचार्य, शिक्षा, श्री, शरीर, शत्रु, वार, शरीर, विद्या आदि हजारो शब्द है, जिनका प्रयोग वहा होता है। उच्चारण मे थोडा भेद है, जैसे राष्ट्र को रट, गणित को खनित, आचार्य को आचान, श्रद्धा को सद्धा, श्री को स्री, विद्या को दिथया कहा जाता है, लेकिन लिखा उन्हें शुद्ध रूप मे ही जाता है।

अगरेजी के कुछ शब्दो के हिन्दी-पर्याय उन्होने इतने सुन्दर निकाले हैं कि देखकर चकित रह जाना पडता है। सेंट के लिए सताग (शताग), टेलीविजन के लिए दूरदर्शक, बैंक के लिए धनागार, कलेंडर के लिए प्रतिदिन, फोटोग्राफर के लिए छाया-चित्रकार, इजीनियर के लिए विश्वक, वर्थ-सर्टीफिकेट के लिए सूतिपत्र, सी० आई० डी० के लिए शातिपाल आदि-आदि सैकडो शब्द उन्होने हिन्दी-सस्कृत से लिये हैं और उनका सारे देश मे उपयोग होता है।

वहाके उत्सव और पर्वों मे भी कई-एक भारतीय त्योहारो से मिलते-जुलते है। वहाका जलोत्सव होली का ही एक रूप है।

हमारे यहाकी तरह बालक के जन्म पर वहा भी सस्कार होता है। यद्यपि विवाह की पद्धति वहा की अपनी है, तथापि उस अवसर पर मण्डपो का वहा भी निर्माण होता है।

बौद्ध-धर्म भारत से ही थाईलैण्ड मे गया था। वहा उसकी जडे इतनी गहरी जम गई हैं कि आज वहा के धर्मों मे उसीकी प्रधानता है। बौद्ध-मदिर और बौद्ध भिक्षुओ की गिनती करना मुश्किल है। वहाके लोकजीवन पर भगवान बुद्ध के आदर्शों का प्रभाव साफ दिखाई देता है। स्त्री-पुरुष बडी भक्ति-भावना से मदिरो में जाते है। वहा के मन्दिरो के पास हमारे यहा के मदिरो की तरह विपुल सपत्ति है, फिर भी वहाके जन-सामान्य के जीवन मे अपरिग्रह के प्रति निष्ठा दिखाई देती है। हम बता चुके हैं कि ज्यादातर लोग वर्तमान की चिन्ता करते हैं, यानी अच्छी तरह खाते-पीते हैं, पहनते-ओढते हैं, विगत अथवा भविष्य की चिन्ता में अकारण नही घुलते।

इस तरह थाईलैण्ड की सस्कृति की बुनियाद मे भारतीय सस्कृति का योगदान बडा महत्त्वपूर्ण है। लेकिन जैसाकि हमने आरभ मे कहा, वहा के निवासियो ने भारतीय सस्कृति को अपना जामा पहना लिया है। वे स्वीकार करते है कि उनपर भारतीय सस्कृति का भारी ऋण है, वे यह भी मानते है कि भारतीय सस्कृति को उन्होने भारतवासियो से भी अधिक अच्छी तरह सुरक्षित रखा है, लेकिन यदि कोई भारतीय ऐसा दावा करने की भूल करता है तो उनके स्वाभिमान को बड़ी चोट लगती है। इसलिए वहा जाकर थाई-समाज के बीच किसी भी भारतीय को अपनी सस्कृति की डीग नही मारनी चाहिए।

: ३२ :

कुछ रंग-बिरंगे चित्र

११ मई को हम बैंकाक पहुचे थे और १८ मई को वहासे कम्बोडिया के लिए रवाना हुए। इन दिनो में थाईलैण्ड के कई नगरो मे घूमे। दर्शनीय स्थान देखे, लोगो से मिले, जन-जीवन की घटनाए सामने से गुजरी। उस सबका स्मरण करता हू तो कई चित्र आखो के सामने उभर आते हैं।

अपने मेजबान प० रघुनाथ शर्मा के घर पर एक दिन हम भोजन कर रहे थे। उनकी पत्नी हमारे पास बैठी थी। चर्चा चल रही थी कि पीढियो से रहते हुए भी हिन्दू लोग वहाके निवासियो को अछूत-जैसा मानते हैं, यहातक कि उनके हाथ का छुआ खाने से भी आपत्ति करते हैं। मैंने जिज्ञासावश योही शर्माजी की पत्नी से पूछा, "क्या आप भी थाई स्त्रियो से छूत-छात का भाव रखती हैं?"

मेरे इस सवाल पर वह थोडी ठिठकी, फिर मुस्कराकर बोली, "हा, रखती तो हू। पर कुछ दिन पहले हमारी दूकान पर एक स्यामी लडकी काम करती थी। वह बडी भोली थी, बडी सीधी। हजार समझाओ, पर समझ नही पाती थी कि उसकी छुई चीजो को खाने से किसीको परहेज हो सकता है। झट चीजो को छू लेती थी। उससे कुछ कहते थे तो भोलेपन से उन चीजो को देखती थी कि कहीं वे सचमुच खराव तो नही हो गई, फिर छोटे बच्चे की तरह कह देती थी कि नही, वे विगडी नहीं हैं। आप देख लो। उसकी सरलता और भोलेपन को देखकर उन चीजो को खाने मे वुरा नही लगता था।"

उनके यह सुनाते-सुनाते शर्माजी को एक घटना याद आ आई। बोले, "जापानी लोग जब बर्मा से यहा आये तो अक्याव से एक वालक को पकड लाये। उसे उन्होंने साथ रखा। लेकिन जब यहा से जाने लगे तो समस्या हुई कि उस वालक को कहा छोडें। कुछ लोगो ने सलाह दी कि हमारे यहा छोड जाय। सो वालक हमारे घर आ गया और घर के बच्चे की तरह रहने लगा।

अपने ही बर्तनो मे खाता-पीता। एक दिन उसे बुखार आ गया। बुखार मियादी हो गया। उन्ही दिनो अचानक पता चला कि वह मुसलमान है। उसका नाम अहमद है। हमें इनसे (पत्नी से) डर हुआ, पर इनके चेहरे पर शिकन तक नही आई। बोली, 'मुसलमान है तो क्या हुआ! अपने बालक की तरह घर मे रहा है। अब भी रहेगा।' उसका नाम सबीर रख दिया गया। उसकी उन्होने ठीक वैसे ही देखभाल की, जैसे अपने बच्चो की करती हैं। वह कोई तीन महीने रहा। बाद मे उसके घरवालो को पता लग गया तो उसे उसके घर भेज दिया।"

मैं सोचने लगा, हमारे सस्कार कुछ भी हो, पर हर किसीके अंदर इसान होता है, जो आदमी आदमी के बीच के फासले को नही मानता।

मुनीश्वरसिंह, जिन्होने हमे भाई का-सा स्नेह दिया, किसी समय वहाके बहुत बडे व्यापारी थे, पर पता नही, क्या हुआ कि उनका व्यापार गिर गया। उनके नाते-रिश्तेदार वहा थे, पर वह अकेले रहते थे। हमे अपने यहा भोजन कराने ले गए। जब हम मेज पर बैठे और सामने खाना आया तो उसे देखकर अचरज हुआ। अपने घर का-सा भोजन था। पूछा, किसने बनाया है? पता चला कि उनके यहा एक स्यामी स्त्री काम करती है। वह स्त्री सामने आई। बडे प्यार से उसने खाना खिलाया। खीर बनाई थी, वह हमे आग्रह करके खिलाई।

खाना खाते-खाते मुनीश्वरसिंह ने बताया कि उस स्त्री का अपना घर है, पति हैं, बच्चे है। सबेरे जल्दी उठकर अपने घर का काम करती है। पति काम पर चले जाते हैं, बच्चे स्कूल चले जाते हैं। यह यहा आ जाती है। उन्हे खाने के लिए कभी देर हो जाती है तो यह बडी नाराज होती है। कहती है, खाना वक्त पर खाना चाहिए। घर की बहुत अच्छी तरह से सार-सभाल रखती है।

खाना खाकर हम चले आए। उस स्त्री से मिलने की एक बार फिर इच्छा हुई, पर भागदौड मे समय नही मिला।

जिस दिन सबेरे हम बेंकाक से चलनेवाले थे, उसकी पिछली रात को मुनीश्वरसिंह आये उनके हाथ मे एक पैकेट था। उसे हमें देते हुए बोले,

"यह उस स्यामी औरत ने भेजा है।"

हमने पैकेट खोला। देखा तो देखते रह गए। उसने खूब घी डालकर हम लोगो के खाने के लिए हलुवा बनाकर भेजा था। मुनीश्वरसिंह बोले, "उसने कहा है, मुझे हलुवा बनाना नही आता। अच्छा न बना हो तो वे लोग बुरा न मानें।"

हम लोग स्तब्ध रह गए। उस स्त्री का वात्सल्य से छलछलाता चेहरा आखो के सामने आ गया। मातृत्व की रेखाए और भी गहरी हो उठी।

कहने की आवश्यकता नही कि हलुवा बहुत अच्छा बना था और कई दिन तक हमारे काम आया।

• •

एक दिन फूब्राआ थॉंग पर वाट सिरी सकेत अर्थात बौद्ध-मदिर देखकर लौट रहे थे। रात के कोई आठ बजे होगे। सोचा कि मण्डी से कुछ फल लेते चलें। कार को बाहर रुकवाकर मण्डी मे गये। साथ में मुनीश्वरसिंह थे। आम देखने लगे। थाईलैण्ड के फलो मे आम और पपीते बहुत अच्छे होते हैं। दो-तीन दूकानो पर देखकर हमने आम खरीदे। जैसे ही चलने लगे कि एक स्यामी महिला पास की दूकान मे उठकर हाथ मे तीन आम लिये आई और हमारे निकट आकर स्यामी भाषा मे कुछ कहने लगी। मुनीश्वरसिंह ने बताया कि वह उन आमो को हमें देना चाहती है। हमने उस देहाती दुकानदारिन की ओर देखा, उसके हाथ के आमो को देखा। छोटे-छोटे आम और शक्ल में बडे अजीब-से। उन्हें लेने मे झिझक हुई। हमारी झिझक देखकर उसने कहा, "ये फल बहुत अच्छे पेड के हैं। मैं चाहती हूं कि परदेशी इन्हें खाय और देखें कि यहा कितना बढिया आम होता है।"

उसका आग्रह देखकर हमने आम ले लिये। मुनीश्वरसिंह ने पैसे देने चाहे तो उसने नही लिये। बोली, "ये मैंने भेंट में दिये हैं। इनका दाम कैसे ले सकती हू।"

इतना कहकर वह अपनी दूकान की ओर बढ गई। हम घर चले आए स्त्री की बात पर विश्वास नही हुआ। पर जब उन आमो को काटा और खाया। तो अपने मन की खोट पर लज्जित और स्त्री की सदाशयता पर मुग्ध रह गए। आम सचमुच बहुत ही बढिया थे। उनमे मिश्री जैसी मिठास तो

थी ही, ऐसी महक भी थी, जो दूसरे आमों मे मुश्किल से मिलती है।

. . . . . .

वैंकाक मे जितने दिन रहे, वहाके भारतीय आ-आकर बरावर मिलते रहे। उनमे से अधिकाश व्यापारी थे, कुछ नौकरपेशे भी थे। जव जिसको एकान्त मे वात करने का मौका मिलता, वह भारतीयो की वेईमानी और धोखेधडी के किस्से जरूर सुनाता। एक ने वताया, "लाखो रुपये का सोना यहासे चोरी से हिन्दुस्तान जाता हे। हिन्दुस्तान से पिछले साल (१६५६ मे) पद्रह लाख रुपये के नोट यहा आये थे। कस्टम मे पकडे गए। जब्त हो गए। और तो और, लोग पकौडियो मे भरकर सोना भेजते हैं। यहा का एक तोला सोना हिन्दुस्तान के १। तोले के वरावर होता है। यहा १०० रुपये तोले का भाव है, हिन्दुस्तान मे १३५ रुपये।"

हमने कहा, "सरकारी अफसर निगाह नही रखते ?"

वह वोले, "उन्हे इन लोगो ने साथ मिला रखा है। पैसे देते है और अपने लिए रास्ता निकाल लेते हैं।"

एक दूसरे सज्जन ने वताया कि हिन्दुस्तान मे अपने घर पैसा भेजने मे भी वडी चालाकी होती है। सही ढग से तो वहुत थोडे पैसे भेजे जा सकते हैं। यहा कमाई अच्छी हो जाती है। इससे ज्यादा पैसा भेजने की इच्छा होती है। सो अधिकारियों को साथ मिलाकर ऐसा प्रबध कर लिया गया है कि पाचसौ भेजना चाहते हो तो हजार दो। इस तरह कानून की आख मे धूल झोककर पैस भेजा जाता है।"

एक गभीर सज्जन ने वडे दु ख के साथ कहा, "हम आपसे क्या कहे! इन लोगो ने सारे हिन्दुस्तानियो के नाम पर वट्टा लगा दिया है। जव कभी कोई वेईमानी या धोखे का मामला पकडा जाता है तो यहाके लोग कहते है—'वह आदमी जरूर हिन्दुस्तानी होगा।' वेईमानी और भारतीय एक-दूसरे के पर्यायवाची वन गए हैं।"

. . . . .

वैंकाक के एक उच्चाधिकारी से वात हो रही थी। उन्होने कहा, "आप कहते हैं, भगवान राम भारत मे पैदा हुए थे। यहाके लोग मानते हैं कि राम तो यहा पैदा हुए थे।"

हमने पूछा, "सो कैसे ?"

वह बोले, "ये लोग कहते हैं, यहा जो अजुध्या है, वहा राम का जन्म हुआ था। राम को यहा लोग जितना मानते हैं, उतना भारत मे नही। यहाके राजा के गद्दी पर बैठते ही उसका नाम बदल कर राम के नाम पर हो जाता है। भारत मे कही ऐसा हुआ है ? यहा के एमराल्ड बुद्ध के मदिर की एक मील की गैलरी में पूरी रामायण बडे-बडे रगीन चित्रो में अकित है। भारत मे कही है ऐसा ? यहाके सग्रहालय के प्रवेश-द्वार के सामने धनुष-बाण लिये आदमी की एक विशाल मूर्ति है। भारत मे कही है इस तरह की मूर्ति ? रामायण का यहा इतना प्रचार है कि कोई भी पर्व और अनुष्ठान तबतक पूरा नही माना जाता जबतक कि रामायण में से कोई प्रसग मच पर खेला न जाता हो। है भारत मे रामायण की इतनी मानता ? इन्ही सब कारणो से ये लोग दावा करते हैं कि राम इस देश में उत्पन्न हुए थे।"

• •

विष्णुभाई की तबीयत कुछ खराब हो गई थी। उन्हें दिखाने के लिए एक डाक्टर के पास ले गए। वह डाक्टर भारतीय थे और प० रघुनाथ शर्मा के परिचित थे। जिस समय हम उनके यहा पहुचे, वह कही गये हुए थे। उनकी स्यामी सेविका वहा थी। उसने बडे आदर से हमारा स्वागत किया और हमें अन्दर ले जाकर डाक्टर के कमरे मे बिठा दिया। बोली, "डाक्टर पास ही किसी मरीज को देखने गये हैं। अभी थोडी देर मे आ जायग।"

इतना कहकर वह कमरे के बाहर चली गई। थोडी देर में-देखते क्या हैं कि दरवाजे का पर्दा हटा। हम समझे, डाक्टर आ गए। पर जो अदर आया वह डाक्टर नही थे, वही स्यामी सेविका थी। उसके हाथ मे ट्रे थी, जिसमे स्क्वैश की तीन बोतलें थी। वह हमारे सामने आकर घुटनो के बल बैठ गई और ट्रे को हमारी ओर बढा दिया। बोली, "बडी गर्मी है। आप लोग प्यासे होगे। लीजिये, यह पी लीजिये।"

आतिथ्य में माधुर्य होता है, पर जो मिठास उस दिन के आतिथ्य मे आया, वह पहले कभी शायद ही अनुभव हुआ हो।

: ३३ :

कम्बोडिया में

थाईलैण्ड के बाद हमारा कार्यक्रम लाओस जाने का था। हमारे मित्र वहा के तत्कालीन भारतीय राजदूत श्री पी० रतनम् की पत्नी श्रीमती कमलाजी का बहुत दिनो से आग्रह था कि उस प्रवास मे हम लाओस न छोडे और वहा की राजधानी व्यनत्यान में कुछ समय उनके साथ अवश्य व्यतीत करे। हमने भी सोचा कि बार-बार तो घर से निकलना होता नही है, इसलिए उधर के जितने देश देख सके, देख लेने चाहिए। फिर जब हमें मालूम हुआ कि बैंकाक से व्यनत्यान ज्यादा दूर नही है तो हमने उसे अपनी यात्रा मे शामिल करके दिल्ली से चलते समय वहा के वीसा की व्यवस्था करली और टिकट के लिए भी प्रवास-एजेंसी को कह दिया। रगून पहुचकर हमने कमला जी को पत्र लिखकर पूछा कि उनका कही जाने का कार्यक्रम तो नही है, पर लम्बी प्रतीक्षा के बाद भी उत्तर न मिला। दूसरा पत्र भेजा और उत्तर तार से बैंकाक के पते पर मागा। वहा भी जवाब न आया तो आशका हुई कि कही वे लोग बाहर न हो। उधर थाईलैण्ड का वीसा बढवाने के लिए अगले स्थान को जाने की तिथि का निश्चय और टिकट का होना जरूरी था। हम द्विविधा मे पडे। बैंकाक से व्यनत्यान की दैनिक हवाई-सर्विस नही थी। हमने आने-जानेवाले जहाजो के हिसाब से अदाज किया तो पता लगा कि एक सप्ताह लग जायगा। फिर भी दो दिन और प्रतीक्षा की, लेकिन बेकार। आखिर लाचार होकर कम्बोडिया के सियमरीयप नगर तथा अन्य देशो का बुकिग करा लिया, नामपेन और जहा-जहा के पते हमारे पास थे, वहा-वहा सूचना दे दी। घर आये तो कमलाजी का तार मिला, हम आ सकते हैं। अगले दिन चिट्ठी मिली। मालूम हुआ कि उन्होने रगून के पते पर दो चिट्ठिया भेजी थी और बैंकाक तार किया था। लेकिन थाई-भारत-कल्चरल लॉज का तार का पता रजिस्टर्ड न होने के कारण तार वापस चला गया। फिर उन्होने लॉज का पूरा पता मालूम करके दूसरा तार भेजा। पर अब क्या हो सकता था?

हम सियमरीयप, नामपेन (कम्बोडिया की राजधानी), सैगाव (दक्षिण वियतनाम की राजधानी) और सिंगापुर का वुकिंग करा चुके थे और उसमे परिवर्तन का मतलव होता था सारी व्यवस्था में हेर-फेर करना। उसके अलावा समय की तगी थी ही। इसलिए थोडे सोच-विचार के वाद हमने अनिच्छा-पूर्वक लाओस को छोडने का ही निश्चय किया।

१८ मई को प्रात ८-३० पर रायल एयर कम्बोज से कम्बोडिया की ओर रवाना हुए। कस्टम की दृष्टि से हमारे मन पर थाईलैण्ड की सवसे अच्छी छाप पडी। आते समय और अव जाते समय अधिकारियो ने पासपोर्ट और वीसा देखे, टिकट जाचे, सामान तुलवाया, पर जव सामान दिखाने की वात आई तो उन्होने उसे खोलने का मौका नही दिया। हल्की मुस्कराहट के साथ हमारी ओर देखकर उन्होने सारी चीजो को विना देखे ही पास कर दिया।

विमान मे ३२ सीटें थी, पर यात्री कुल २७ थे। उनमे मैक्सिको की एक टोली थी, जो सैगाव जा रही थी। ज्यादातर मुसाफिर कम्बोडिया के महान कला-केन्द्र अकारवाट को देखने की इच्छा से पहले पडाव सियमरीयप पर रुकने वाले थे। एक अमरीकी दल के प्रवास की व्यवस्था किसी एजेंसी के द्वारा हुई थी। उस दल मे महिलाए अधिक थी। दल का सरक्षक एक अधेड उमर का व्यक्ति था, वडा ही हँसमुख और जानदार। हमारे पूछने पर कि वे लोग कहा जा रहे हैं, उसने वडे ही मनोरंजक ढग से उत्तर दिया, "अपने हरम को मैं अकोरवाट दिखाने ले जा रहा हू।" 'हरम' शब्द को सुनकर विष्णु-भाई और मैं खिल-खिलाकर हँस पडे। दल की सारी देवियो ने भी उस विनोद में रस लिया।

बैंकाक से निकलते ही पहले नदियो और नहरो का जाल विछा दिखाई दिया, फिर वन-पर्वत आये, अनन्तर रुई के फायो की भाति वादल छा गए। पता भी नही चला कि कव थाईलैण्ड की सीमा समाप्त हो गई और कम्वोडिया की भूमि आरम्भ हो गई। उडान के अन्तिम चरण मे मौसम साफ हो जाने से मैदान मे नदियो और नहरो का फैलाव वडा आकर्षक लगा। सियमरीयप के हवाई अड्डे पर उतरने से पहले नीचे मैदान मे जगह-जगह पर पानी को देखकर अनुमान हुआ कि वहा वर्षा हुई है।

कोई डेढ घटे की उडान के वाद सियमरीयप के छोटे-से हवाई अड्डे पर उतरे। अकोरवाट के लिए हवाई मार्ग से यही आना होता है। खिलौने-जैसा एक और छोटा-सा विमान वहा आया हुआ था। किसीने वताया कि वह अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन का है।

कस्टम आदि की खानापूरी से पौन घटे मे छुट्टी मिली। छुट्टी मिलने पर हवाई अड्डे की वस से शहर की ओर रवाना हुए। सारे विदेशी यात्री वहा के ग्राड होटल मे ठहरनेवाले थे, पर वह बहुत ही महगा था और हमारे पास उतने पैसे कहा थे! वैकाक मे हमे मालूम हुआ कि शहर मे एक भारतीय सज्जन रहते है, अत सोचा कि उन्हीको खोजना चाहिए। शहर तक का ७ मील का मामूली रास्ता तय करके हमारी बस सीधी ग्राड-होटल पर पहुची। होटल की कई मजिल की आलीशान इमारत फ्रेंच सरकार ने वनवाई थी। वाद मे वह कम्बोडियन सरकार को दे दी गई। होटल अच्छा, साफ-सुथरा था, पर एक आदमी के एक दिन के रहने और खाने-पीने के करीब ३२० रीयल अर्थात चालीस रुपये लगते थे। पर हमारी पूजी तो वहुत ही सीमित थी और हमे अभी और कई देशो मे जाना था।

वस रुकने पर इस आशा मे कि शहर मे रहनेवाले उस भारतीय का पता शायद किसीसे लग जाय, हम होटल मे गये। अन्दर घुसते ही उसकी शान-शौकत ने हमारा ध्यान अपनी ओर खीचा। वहा आनेवाले यात्रियो मे अधिकाश साधन-सपन्न व्यक्ति होते हैं, अत वहा वैभव इठलाता था तो वह स्वाभाविक ही था। प्रवेश-द्वार के ठीक सामने सूचना-विभाग का कार्यालय था, जहा बोर्ड पर अकोरवाट तथा अन्य स्थानो के चित्र लगे थे और एक कम्बोडियन लडकी काउन्टर पर खडी, तस्वीरे तथा दूसरी चीजे वेच रही थी। दाई ओर को हवाई बुकिग आदि के दफ्तर थे। उन सवपर निगाह डालते समय अचानक हमे एक सज्जन दिखाई दिए, जो शक्ल-सूरत तथा रूप-रग से भारतीय मालूम पडे। हम उनके पास गये। वह काम मे लगे थे। हमारे यह पूछने पर कि क्या वह भारतीय हैं, उन्होने हमारी ओर देखा और सक्षेप मे उतर दिया, "हा," और हमे जरा रुकने का इशारा करके मुद्रा-विनिमय का अपना काम निवटाने लगे। काम निवटने के वाद उन्होंने हमारे पास आकर अपना परिचय देते हुए वताया कि वह कारीकल (भारत) के

रहनेवाले हैं। कई वर्ष से यहा हैं। इसके बाद उन्होंने हमारे बारे मे पूछ-ताछ की। हमने कहा, "क्या आपही वह भारतीय है, जो यहा रहते हैं ?"

उन्होंने उत्तर दिया, "जी नही, यहा शहर मे एक तमिल सज्जन हैं चेट्टियार। बाजार मे उनकी दूकान है। बडे भले आदमी हैं। मैं वहा जाने की व्यवस्था किये देता हूं। वह आपके ठहरने आदि का अच्छा और सस्ता प्रबंध कर देंगे।"

इतना कहकर वह भाई हमे साथ लेकर बाहर आये और एक मोटर-साइकिल रिक्शा १० रीयल मे तय करके उसके ड्राइवर को कम्बोडियन भाषा मे समझा दिया कि वह हमे अमुक जगह पर पहुचा दे। उसे सूचना देने के पश्चात उन्होने होटल के नौकर से हमारा सामान रिक्शा मे रखवा दिया। रिक्शा-ड्राइवर को देने के लिए उन्होने हमारी कुछ थाई मुद्रा यानी टिकल कम्बोडियन नोट दे दिए। हमने उनका आभार माना और शहर की ओर प्रस्थान किया।

होटल से शहर की बस्ती सटी हुई थी, पर बाजार कोई मील-भर रहा होगा। रास्ता नदी के किनारे-किनारे था। थोडे-थोडे फासले पर नदी को पार करने के लिए पुल बने थे। पानी बहुत गहरा नही था और न उसके बहाव मे तेजी थी। जगह-जगह पर मर्द-औरतें-बच्चे स्नान कर रहे थे। बस्ती अधिक बडी नही थी।

बाजार मे पहुचकर हमे भटकना नही पडा। रिक्शेवाले ने सीधा ठीक जगह पर पहुचा दिया। सामने दूकान मे श्याम वर्ण और सुगठित शरीर के एक सज्जन बैठे थे। उन्हें देखते ही हम समझ गए कि यही चेट्टियार हैं। हमने उन्हें नमस्कार किया। उन्होंने हाथ जोडकर हमारा अभिवादन किया। सामने अगरेजी मे लिखा था—पी०ए० तिरुपति चेट्टि। यह निश्चय करके कि वही चेट्टियार हैं, हमने उन्हें बताया कि हम भारत के रहने-वाले हैं, बर्मा और थाईलैण्ड होते हुए यहा आये हैं, अकोरवाट देखकर नामपेन जायगे और फिलहाल दो रात ठहरने की सस्ती व्यवस्था चाहते हैं। उन्होने चुपचाप हमारी बात सुनी, पर कोई उत्तर नही दिया, उनकी गभीर भाव-भगिमा से ऐसा लगता था, जैसे वह सोच मे हो। कुछ ठहरकर उन्होने कहा, "आई एम इगलिश लिटिल, तमिल-फ्रेंच-कम्बोडि-

यन यस ।" यानी मैं अगरेजी कम जानता हू, तमिल, फ्रेंच, कम्बोडियन खूब जानता हू । अब समझ मे आया कि वह हमारी बातो का तत्काल और उत्साह से उत्तर क्यो नही दे रहे थे । अपनी टूटी-फूटी अगरेजी मे उन्होने हमे समझाया कि हम चिन्ता न करे । उनके पास तो ठहरने लायक जगह है नही, पर वह बहुत सस्ते मे हमारी व्यवस्था कर देंगे ।

इसके उपरान्त उन्होने अपनी बूढी पर बेहद फुर्तीली सेविका से कम्बोडियन मे कुछ कहा । सुनकर वह चली गई और थोडी देर मे एक युवक को साथ लेकर लौटी । चेट्टियार ने उससे बाते करके हमसे कहा, "यह 'सियमरीयप होटल' का आदमी है । इसके होटल मे छोटे-बडे सब तरह के कमरे हैं । आप जाकर देख ले । छोटा कमरा लेंगे तो एक रात के यह ६५ रीयल लेगा और २५ रीयल फी आदमी टैक्स । सीधे बात करने पर तो यह आप लोगो से बहुत ज्यादा लेता, पर मेरे कहने से इतने पर राजी हो गया है ।"

हमने हिसाब लगाया, दो दिन के दो आदमियो के कोई तीसेक रुपये हुए । इससे सस्ता प्रबन्ध और कहा हो सकता था ! हम उस आदमी के साथ होटल मे गये, जो दूकान से कुछ ही कदम पर था । ऊपर की मजिल मे रहने के कमरे थे, वे देखे और अन्त मे एक छोटा कमरा पसन्द किया । उसमे एक ही पलग था, पर वह इतना बडा था कि दो आदमी आराम से उसपर सो सकते थे । उस कमरे को पक्का करके हम चेट्टियार की दूकान पर गये । जब सामान उठाने लगे तो उन्होने कहा, "यू फूड ?" पहले तो उनकी बात हमारी समझ मे नही आई, लेकिन बाद मे उन्होने जब कहा, "आई एम फूड," तो हम समझ गए कि वह पूछ रहे हैं कि आप लोगो ने खाना खाया या नही ? यदि नही खाया तो मेरे साथ खा लीजिये ।

हमने उन्हे धन्यवाद देते हुए कहा, "हमने भोजन तो नही किया, पर आप कष्ट न करें ।"

चेट्टियार ने पुन अगरेजी का एक-एक शब्द बोलकर हमे समझाया कि उन्हें कोई कष्ट नही होने वाला । वह अकेले हैं । उनकी पत्नी और लडकी नामपेन गये है । वह अपने लिए खाना पकाते ही हैं, हमारे लिए भी बना लेंगे । बोले, "आप लोग नहा-धोकर आ जाइये, तबतक खाना

तैयार हो जायगा ।"

इन दाक्षिणात्य सज्जन का नाम पहले से सुना था, पर उनकी आत्मीयता को देखकर विष्णुभाई और मैं दोनो गद्गद् हो गए । होटल आये । कमरे मे सामान जमाया, मुनीश्वरसिंह की थाई सेविका ने जो हलुवा बनाकर हमारे साथ रखवा दिया था, स्नान आदि से छुट्टी पाकर वह थोडा-सा खाया, फिर कुछ देर आराम करके दूकान पर गये । भोजन तैयार था और चेट्टियार हमारी राह देख रहे थे । उन्होंने अन्दर मेज पर प्लेटें लगा दी । गरम-गरम चावल, दाल और साग पाकर लगा, मानो अपने देश मे हो । चैट्टियार ने खाना खिलाते समय ऐसे स्नेह का परिचय दिया कि हम दोनो द्रवित हो गए ।

भोजन कर चुकने पर वह बोले, "आप लोग अभी अकोरवाट और समय रहे तो अकोर थॉम हो आवें । यहा देखने की बहुत-सी चीज़ें हैं और आप लोगो के पास वक्त बहुत थोडा है ।"

हमने आपस मे सलाह की । विष्णुभाई बोले, "इनका कहना ठीक है । एक बात यह भी है कि बादल हो रहे हैं । अगर बारिश आ गई तो निकलना मुश्किल हो जायगा । इसलिए अभी चले चलें ।"

जाने के लिए हमारी रजामदी मालूम होते ही उन्होने एक मोटर-साईकिल रिक्शे वाले को बुलाकर ७० रीयल मे तय किया । बोले, "यू सैविन्टी रीयल, अदर टू हण्ड्रेड ।" उनकी भाषा अब हमारी समझ मे आने लगी थी । हमने समझ लिया कि वह कह रहे हैं, यह रिक्शा आप लोगो के लिए ७० रीयल मे किया है । दूसरे से तो यह दोसौ रीयल ले लेता ।

: ३४ :

कला के अद्भुत देवालय—१

अकोरवाट

जिस प्रकार हमारे देश मे तीर्थ प्राय रमणीक स्थानो पर पाये जाते है, उसी प्रकार अकोरवाट भी बड़े ही सुन्दर दृश्यो के बीच अवस्थित है। सियमरीयप से वहातक का लगभग ४ मील का रास्ता घने जगल मे होकर जाता है। ऐसा जान पडता है, मानो हम किसी वन-वासी तपस्वी के आश्रम की यात्रा करने जा रहे हो।

कम्बोडिया और भारत के सबध बहुत पुराने समय से रहे है। गुप्त-काल के कुछ पहले से कम्बोज देश पर भारत का प्रभाव पडने लगा और गुप्तकाल मे तो वहा भारतीय सस्कृति और सभ्यता का बोलबाला हो गया। नवी से लेकर बारहवी शताब्दी तक उस देश मे खमेर-राज्य का प्रभुत्व रहा। 'खमेर' का उल्लेख सस्कृत-साहित्य मे 'कमलपुर' के नाम से हुआ है और अरबी के भूगोल-लेखको ने उसे 'कमर' की सज्ञा दी है। उस काल मे कला को असामान्य प्रोत्साहन मिला और ऐसे मन्दिरो का निर्माण हुआ, जो स्थापत्य की दृष्टि से एशिया के अद्वितीय मदिर माने जाते है। खमेर-राज्य के यशस्वी राजाओ मे सूर्यवर्मा द्वितीय (१११५–११४५) ने ११२५ ई० के आसपास यशोधरपुर नामक राजधानी मे एक ब्राह्मण मन्दिर का निर्माण कराया। वही आगे चलकर अकोरवाट के नाम से सारे ससार मे विख्यात हुआ। 'अकोर' कहते हैं नगर को, 'वाट' का मत-लब होता है मन्दिर। अकोरवाट माने नगर का मदिर। स्थापत्य-कला के मर्मज्ञो का कहना है कि इस मन्दिर की शिल्प-सामग्री जावा के बोरो-बुदूर स्तूप पर उत्कीर्ण शिला-पट्टों से भी अधिक प्रभावपूर्ण है।

पक्की साफ-सुथरी सडक पर आगे बढते गए। मोटर साइकिल रिक्शावाला एक कम्बोडियन नौजवान था, जो फ्रेंच तो अच्छी तरह से बोल लेता था, लेकिन अगरेजी का उसका ज्ञान दो-चार शब्दो तक ही सीमित

था। जब हम उससे कोई बात पूछते थे तो वह उसे समझ नही पाता था और हमारी ओर देखकर मुस्करा उठता था।

आगे चलकर सडक पर रोक लगी देखकर हम समझ गए कि वह चौकी है। रिक्शेवाला गाडी को एक ओर खडी करके चौकी के दफ्तर मे गया और शायद दस रीयल देकर परमिट ले आया। बियावान जगल के बीच बनी वह चौकी वहा के लिए शायद अच्छी आमदनी कर देती होगी, कारण कि दुनिया-भर के देशो के लोग पूरे साल वहा आते-जाते रहते हैं।

चुगी को पार करने के बाद जो दृश्य दिखाई दिया, उससे हृदय प्रफुल्लित हो उठा। अकोरवाट का चित्र हम पहले देख चुके थे। इसलिए यह समझते देर न लगी कि हम उस कला-केन्द्र पर पहुच गए हैं, जिसे देखने के लिए इतनी दूर की यात्रा करके आये थे। हमारे चारो ओर हरियाली-ही-हरियाली थी और ऊपर बादलो ने अपनी चादर तानकर छाया कर दी थी। उस सारे वातावरण मे वह स्थान बहुत ही रोमाचकारी लगा।

मदिर के प्रवेश-द्वार के सामने सडक पर रिक्शा रुका और हम बड़ी उमग से उसमे से उतरे। यात्रियो की सुविधा के लिए वहा दो-तीन छोटी-छोटी दूकानें थी। हमारे उतरते ही तस्वीर बेचनेवालो ने हमे घेर लिया, पर हमारा ध्यान तो मदिर मे पडा था और हमारी आखें उसकी भव्यता को देख रही थी।

सडक से एक चौडा रास्ता मदिर को जाता है, जिसके दोनो ओर बडे-बडे जलाशय है। किसी जमाने मे सुरक्षा के लिए मदिर के चारो ओर खाई थी। वह अब सूखी पडी है। जलाशयो को देखकर खाई का आभास होता है। रास्ता किसी समय मे पुल रहा होगा, पर अब तो उस सबका रूप ही बदल गया है। जलाशयो से आगे एक द्वार आता है, जिसमे घुसते ही मदिर का प्रागण आरम्भ हो जाता है। इस द्वार से मदिर तक के कई गज के रास्ते मे पत्थर की पट्टिया बिछी हैं और दोनो ओर पक्की ओट लगी है, जिस-मे स्थान-स्थान पर फनधारी नागो की विशाल आकृतियां बनी हैं। हमारे देश मे नागो की पूजा प्राचीनकाल से होती आई है। सभव है, उस भारतीय परम्परा के प्रभाव के कारण ही वहा नागो को इतना महत्त्व मिला हो।

प्रवेश-द्वार से अदर जाते ही कोई आधा मील की एक गैलरी है, जिसमे

विष्णु और यम से संबंधित बहुत-से चित्र अंकित हैं। यह प्रदक्षिणापथ मंदिर की बाहरी परिधि का प्रथम भाग है। द्वार पर ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़िया बनी हुई है।

मंदिर के प्रांगण मे बाईं ओर को बौद्ध भिक्षुओ के निवास-स्थान है, जिनका निर्माण हाल ही मे हुआ है। सामने मंदिर के शिखर दिखाई देते हैं। शिखरो को देखकर पहली छाप मन पर यह पड़ती है कि हम दक्षिण भारत के किसी मंदिर के सामने हैं। शिखरो पर कैसी खुदाई हो रही है, यह दूर से साफ दिखाई नही देता, लेकिन उनकी बनावट से मन खिंचकर सहज ही दक्षिण भारत के मंदिरो की कल्पना को साकार कर देता है।

उस विशाल प्रागण को पार करने पर कुछ सीढ़िया आती हैं, जिनके दोनो ओर उछाल-मुद्रा मे सिंहो की दो प्रतिमाए यात्रियो का स्वागत करती है। सीढ़ियो पर चढ़कर ऊपर पहुचने पर पुन सिंहो की दो प्रतिमाए इधर-उधर मिलती हैं। दाईं ओर को तीन ताड़ वृक्ष प्रहरी की भांति खड़े दिखाई देते हैं। यहा से मंदिर की इमारत शुरू हो जाती है। दोनो ओर को समानान्तर पंक्ति मे अनेक कक्ष बने हैं, जिनकी दीवारो पर बड़े ही सूक्ष्म चित्र उत्कीर्ण हैं। जगह-जगह पर अप्सराओ की मूर्तिया हैं। ये मूर्तियां चार मुद्राओ की हैं। एक मे दाया हाथ कुहनी पर से ऊपर को उठा है और बाया कटि की मेखला पर टिका है। दूसरी मे दायां हाथ नाभि की ओर है, बाया कमल लिये ऊपर को है। तीसरी मे दाया हाथ सिर के ऊपर उठा है, बाया कटि-मेखला को संभाले हुए है। चौथी मे दाया हाथ वक्ष की ओर है, बाया कंधे की ओर। सबकी कटि मे मेखलाए हैं और सिर पर विभिन्न प्रकार के किरीट। मूर्तिया इतनी सजीव है, मानो अभी बोल पड़ेंगी। इन मूर्तियो के नीचे अलंकरणो का कटाव इतना बारीक और सुडौल है कि दर्शक आश्चर्य-चकित होकर देखते रह जाते हैं। कक्षो की दीवारो के स्तम्भो की बनावट तो अद्भुत है। एक ही पत्थर को स्तम्भ के रूप मे लम्बा काटकर उसे कलापूर्ण बनाया गया है। भित्ति-चित्र भारतीय प्रसंगो पर आधारित हैं।

पहले परकोटे के बाद पुन एक छोटा-सा प्रांगण आता है, फिर दूसरा

परकोटा। उसके कक्षो की दीवारो और खभो पर उसी प्रकार की सूक्ष्म कारीगरी की गई है। फिर छोटे से प्रागण को लाघकर मुख्य परकोटे पर पहुचते है। उसके कक्षो मे भी पहले दो परकोटो के कक्षो की भाति भित्ति-चित्र मिलते है। इस परकोटे के अन्दर पाच शिखर हैं। एक मध्य मे और चार चारो कोनो पर। बीच का शिखर शेप चार से कुछ बड़ा है। यहा आकर पता चलता है कि दूर से जो कगूरे-जैसे दिखाई देते थे वे वास्तव मे कगूरे नही हैं, बल्कि मूर्तिया हैं, जो बडे ही कलात्मक ढग से ऊपर सजाई गई है। अचरज होता है कि लगभग आठसौ वर्ष से वे पाषाण-खण्ड वहा कैसे टिके है! इस लम्बी अवधि मे न जाने कितने तूफान आये होगे, आधियां आई होगी, वर्षा हुई होगी, लेकिन वे प्रतिमाए अपने स्थान पर अचल हैं।

मदिर धरती से २०० फुट की ऊचाई पर है। शिखरो पर चढने के लिए सीढिया हैं। उनपर होकर हम ऊपर गये। उनकी दीवारो पर भी बडे ही मनोहारी चित्र और सजीव मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। एक कक्ष मे भगवान बुद्ध की बहुत-सी मूर्तियो का सग्रह था। उनमे कुछ मूर्तिया काठ की थी। कईएक को दीमको ने खा डाला है। कुछ प्रतिमाओ मे बुद्ध, भगवान महावीर की भाति पद्मासन मुद्रा मे हाथ-पर-हाथ रखे हैं। मदिर के शिखर नौ भागो मे हैं। उन्हें एक-दूसरे से तथा मुख्य देवालय से मिलाने के लिए गैलरिया है।

घूमते हुए जब हम बाहर के एक कक्ष मे आये तो वहा अष्टबाहु प्रतिमा दिखाई दी। बड़ी विशाल थी वह। इस प्रतिमा को भगवान बुद्ध की प्रतिमा माना जाता है।

अकोरवाट वास्तव मे स्थापत्य तथा शिल्पकला का अनुपम केन्द्र है। उसकी दीवारो पर उत्कीर्ण चित्र, मूर्तिया, मदिर की आकृति, सबसे ऐसा जान पडता है, मानो उनके निर्माता और कलाविद भारतीय सस्कृति के अनन्य उपासक रहे होगे। रेखाओ द्वारा भावना की अभिव्यक्ति बडी कठिन होती है, लेकिन इस कार्य को उन वास्तु-शास्त्र-विशारदो ने बडी निपुणता से सम्पन्न किया है।

दीवारो पर खुदे हुए चित्रो मे कई चित्र तो भूले नही जा सकते। बाण-शैया पर पडे भीष्म का युधिष्ठिर को उपदेश देना, सूर्य और चद्र का

राहु के विरुद्ध अमृत चुराने का सदेश लेकर जाना, शेषनाग की रस्सी बनाकर देवताओ तथा असुरो द्वारा समुद्र-मथन करना और शिव का कामदेव को भस्म करना, ये तथा ऐसे ही कुछ अन्य चित्र तो बार-बार आंखो के सामने आते हैं। गैलरियो मे कृष्ण-लीला तथा विष्णु से सबधित बहुत-सी कथाए मिलती हैं।

मदिर ढाई मील के घेरे मे है। उसकी विशालता एव भव्यता को देखकर जहा हृदय गद्‌गद्‌ होता है, वहा उसकी कला-कारीगरी को देखकर मन विस्मित हुए बिना नही रहता।

बड़े दु.ख की बात है कि इस महान कला-केन्द्र की सुरक्षा जितनी सावधानी से होनी चाहिए, नही हो रही है। कई कक्षो की छतें चूती है और पानी के कारण भित्ति-चित्र नष्ट होते जा रहे है। अदर के कमरो मे इतनी दुर्गन्ध आती है कि वहा खडा होना मुश्किल हो जाता है। इस अमूल्य निधि की रक्षा पूरी तरह से होनी चाहिए।

अकोरथॉम

खमेर राज्य के एक दूसरे महान शासक जयवर्मा सप्तम (११८१–१२१८) ने अकोरवाट के एक शती बाद अकोरथॉम की स्थापना की, जो अकोरवाट से लगभग ३ मील की दूरी पर है। इस स्थान को अनेक वर्ष तक वहा की राजधानी रहने का सुयोग मिला। लेकिन एक बार मिकाग नदी मे बडे जोर की बाढ आई। उसका मुहाना रुक गया। नतीजा यह हुआ कि पूरा-का-पूरा नगर ही नष्ट हो गया। पर वहा का मदिर, बेयोन, आज भी ससार के कला-प्रेमियो के लिए आकर्षण का केन्द्र है।

अकोरवाट देखने के उपरान्त हम अकोरथॉम की ओर बढे। वन अब और घना हो गया था। हमारा ध्यान अकोरवाट की बारीक रेखाओ मे उलझा था। अचानक एक विशाल द्वार आया, जिसके दोनो ओर नागराज के फैले हुए शरीर को देव और असुर साधे हुए दिखाई दिए। यह था अकोरथॉम का पूर्वी द्वार, जिसे 'विजय पौर' कहा जाता था। उसके ऊपरी भाग पर सुन्दर कटाव हो रहा था, जिसके बीच मे चौमुखी अवलोकतेश्वर की प्रतिमा उत्कीर्ण थी। अवलोकतेश्वर प्राचीन खमेरो के

कुल-देवता थे और उनकी प्रतिमाए वहा जगह-जगह पर दिखाई देती हैं।

अकोर का इतिहास एक प्रकार से उस समय से आरभ होता है, जबकि जयवर्मा सप्तम ने कम्बोज की राजधानी के लिए उस स्थान को चुना था और वहापर एक नगर का निर्माण किया था। उसके वाद कई शताब्दियो तक जो भी राजा गद्दी पर वैठे, वे छोटे-वडे नगर वहा वसाते गए। फलत आज जहा अकोरथॉम है, उससे थोडे फासले पर कई नगर उठ खडे हुए। अकोर कई नगरो का केन्द्र वन गया।

प्राचीन नगर के चारो ओर परकोटा तथा खाई थी। उनकी लम्वाई प्रत्येक दिशा मे कोई ३३०० गज थी। खाई और चहारदीवारी के वीच लगभग सौ गज का फासला था। खाई को पार करने के लिए पाच पुल और पाच फाटक थे। 'विजय पौर' उन्हीमे से एक था। फाटको के ऊपर ७०–७० फुट ऊचे शिखर थे। मुख्य देवालय नगर के वीचोवीच था।

लगभग आधा मील चलने पर वेयोन का मदिर आ गया। सचमुच किसी जमाने मे वह उस नगरी का विलक्षण केन्द्र रहा होगा। उसका वाहरी परकोटा वहुत-कुछ गिर गया है, छते वैठ गई हैं और कई दीवारें नगी खडी है। ऐसा जान पडता है, राजधानी के भग्न होने के साथ-साथ इस मदिर के भी दिन फिर गए। अव उसके खण्डहर वरगद, पीपल, चन्दन, अजीर, वतूल तथा वास के पेडो के जगल वने हुए हैं। भग्नावशेषो को देखकर पता चलता है कि यह मदिर अकोरवाट जितना विशाल भले ही न रहा हो, पर किसी समय मे उसका अपना अनोखा गौरव रहा होगा।

कहा जाता है, इस मदिर का निर्माण पहले वौद्धो के दया-देवता के लिए किया गया था, परन्तु वाद मे वह शिव को समर्पित कर दिया गया। इसे 'तीन पिरामिडो का मदिर' भी कहा जाता है। उसमे कुल मिलाकर ५४ शिखरे हैं। इन शिखरो के निर्माण मे किसी प्रकार के चूने का प्रयोग नही हुआ। प्रत्येक शिखर पर चतुर्मुखी तथा त्रिनेत्री देवता अलवलोकतेश्वर का सिर है। इन छ फुट के चेहरो की सबसे वडी विशेषता यह है कि विभिन्न स्थानो से देखने पर वे पृथक-पृथक भावो को व्यक्त करते हैं। कभी आनन्द, कभी विषाद, कभी सन्तोष, कभी क्षोभ, आदि-आदि।

उनके कानो मे कुण्डल है, सिर पर किरीट, नेत्रो मे मस्ती। निस्सन्देह वे वडे ही भावपूर्ण हैं। वहा जगल मे रहनेवाले लोगो की मानता है कि वे देवता रात के समय आपस मे बाते करते हैं।

मदिर का अधिकाश भाग खण्डित हो चुका है। उसकी दीवारो पर अनगिनत मूर्तिया खुदी हुई हैं। बाहरी और अन्दर की दीवारो के जो भाग बचे हैं, उनपर एक-से-एक बढकर मूर्तिया उत्कीर्ण है। इन भित्ति-चित्रो मे जीवन का शायद ही कोई अग छूटा हो। अकोरवाट के प्रसग धर्म-कथाओ पर आधारित हैं, लेकिन बेयोन के चित्र मानव-हृदय के स्पन्दन से युक्त हैं। उनमे मानवीयता ओतप्रोत है। मानव के हर्ष, शोक, सघर्ष तथा जीवन की दैनिक घटनाओ को दीवार पर उतार दिया गया है। सम्पूर्ण खमेर-समाज उन भित्ति-चित्रो मे मूर्तिमान हो उठा है।

मदिर की मूर्तियो तथा भित्ति-चित्रों मे कही भी अश्लीलता नही है। यद्यपि तत्रवाद उस देश मे अच्छी तरह विकसित हुआ, तथापि वहा की कला धार्मिक भावना से प्रभावित रही। वस्तुत वहा की शिल्पकला का विकास ही धार्मिक भावना को प्रसारित करने तथा मदिरो को अलकृत करने के लिए हुआ। बेयोन के अलकरण के लिए रामायण, महाभारत तथा पुराणो की कथाओ का आश्रय लिया गया। रामायण के प्रसगो में मारीच का आखेट, सीता-हरण, वालि-सुग्रीव-युद्ध, अशोक वाटिका मे सीता, हनुमान का वाटिका मे प्रवेश, राम और सुग्रीव की मित्रता, रावण का रथ पर चढकर आना, राम-रावण का युद्ध आदि प्रमुख हैं। साथ ही, जैसाकि हम बता चुके हैं, वहा के लोकजीवन को भी अकित किया गया है। कही कुछ लोग नौका-विहार कर रहे हैं तो कही मछलिया और मगर-मच्छ जल मे क्रीडा कर रहे है, कही मछलिया पकडी जा रही हैं तो कही वडे-वडे पक्षी उड रहे हैं। कुछ चित्र तो बहुत ही आकर्षक हैं। हाट मे बहगी लेकर एक आदमी किसी दूकानदार के सामने आता है, पीछे मुडकर कई आदमियो को आपस मे मोल-भाव करते देखता है। एक चित्र मे मुर्गों की लडाई दिखाई गई है। एक चित्र मे राजा जयवर्मा हाथी पर सवार होकर आता है। उसके हाथ मे धनुष-वाण हैं। उसकी सेना आगे वढ रही है। राज-महल, किसानो की कुटिया, धान के लहलहाते खेत, हाट

को जाती हुई ग्राम-वधुए, भाति-भाति के खेल दिखाते हुए जादूगर, भवनो का निर्माण करते हुए कारीगर, गोद मे सिर रखकर लेटे पति के सिर को दवाती तरुणी, वाघ के डर से भागता हुआ साधु, हाथियो, रथो और अश्वो की सहायता से होनेवाला भीषण युद्ध आदि-आदि बहुत-से चित्र वहा देखे जा सकते हैं ।

कम्बुज देश के कलाकारो ने स्थानीय प्रभावो का ध्यान रखा है, लेकिन इसमे सन्देह नही कि भारतीय धार्मिक परम्परा की उनपर गहरी छाप रही है। यही कारण है कि उन्होंने वहुत-सी ब्राह्मण तथा वौद्ध मूर्तियो का निर्माण किया है और भारतीय धर्म-ग्रथो के प्रसग दीवारो पर खोदे हैं।

दीवारो पर खुदे दृश्यो की लम्वाई कोई दो फर्लांग है, उनमे ११ हजार प्रकार की मनुष्यो तथा पशुओ की आकृतिया हैं और दृश्यो की सख्या ४६ हजार के लगभग है । मदिर के वाह्य अधिष्ठान का क्षेत्रफल डेढ़ लाख वर्गफुट है और वह वर्गाकार स्तभो पर आधारित है। प्रत्येक स्तभ छ फुट मोटा है ।

अकोर थॉम तथा उसके देवालय को देखकर जव वाहर आये तो विष्णुभाई और मैं, दोनो मौन थे । जाने क्या-क्या विचार हमारे मन में उठ रहे थे ।

छः सौ कला-केन्द्र

हमे मालूम हुआ था कि अकोर थॉम के आसपास कुछ ही मील के घेरे मे लगभग छ सौ कला-केन्द्र हैं। उनमे से कई वडे महत्त्वपूर्ण हैं। उन सवको देखना तो सभव नही हो सकता था, लेकिन लौटते समय सडक के आसपास के कुछ स्थान देखे ।

चाऊ साई मे शिव का छोटा-सा मदिर था । उसके ऊपरी भाग मे आठ शिखर बने हुए हैं, जो सभवत शिव के आठ नामो अथवा स्वरूपो के प्रतीक हैं। तामनॉन में विष्णु के मदिर मे गये। उसमे वानरो की मूर्तिया भी देखी। वहापर खुदाई हो रही थी और अन्वेषण का कार्य चल रहा था ।ताकयो पहुचे, जो शिव का स्थान है।अनन्तर प्रोम गये, जो ब्रह्मा की भूमि मानी जाती है । वेतई कडई मे किसी जमाने मे न्यायालय था, स्रा स्राग मे विशाल जलाशय। उसके पक्के घाटो को देखकर अनुमान हुआ

कि उसमे लोग जल-विहार करते होगे। बाद मे मालूम हुआ कि हमारा अनुमान ठीक था। 'स्रा' का अर्थ होता है सरोवर और 'स्राग' कहते हैं स्नान को। क्रेवान मे वावन अवतार का मदिर था।

यद्यपि ये तया अन्य स्थान आकार मे वहुत छोटे थे, तथापि उनके अवशेषो को देखकर मालूम होता है कि उनके निर्माण मे भी निर्माताओ की दृष्टि कला की ओर उन्मुख थी। प्रकृति के मनोहारी वातावरण मे नीरस व्यक्ति भी गुनगुना उठता है, फिर खमेर-शासक तो कला-देवी के परम उपासक थे। कला मानो उनके जीवन की प्राण थी।

: ३५ :

कला के अद्भुत देवालय—२

सियमरीयप लौटते-लौटते शाम हो गई। पर अभी बीस-पच्चीस किलोमीटर के घेरे मे कुछ दर्शनीय स्थान देखने को और रह गए थे। चेट्टियार ने आग्रह किया कि उन स्थानो को अवश्य देखें। उन्होने सौ रीयल मे उसी रिक्शेवाले को तय कर दिया और रिक्शेवाले से कह दिया कि वह अगले दिन सवेरे ही आ जाय। हम अपने होटल मे चले आए। रात को एक दक्षिण भारतीय युवक मिलने आया। उसने कहा, "मुझे चेट्टियार ने आपके पास भेजा है। उन्होने बताया कि आप सवेरे उन स्थानो को देखने जा रहे हैं, जिन्हे देखने की हम लोगो ने योजना बनाई है। हम तीन जने हैं। एक भाई, उनकी पत्नी हैं और मैं हू। हमने एक जीप किराये पर ले ली है। फी आदमी सौ रीयल लगेंगे। अगर आप लोग चाहें तो साथ चलिये।"

उनके इस प्रस्ताव के लिए हमने उन्हें धन्यवाद दिया और बताया कि हमारे पास पैसे की कमी है। यह भी कहा कि हमारे लिए चेट्टियार ने कुल सौ रीयल मे सवारी का इतजाम कर दिया है। अगर आप उतना लेने को तैयार हो तो हमे साथ चलने मे बडी खुशी होगी।

नौजवान ने कहा, "देख लीजिये। इसमे आपको भी फायदा है और हमे भी। जीप से आपका आराम से और जल्दी घूमना हो जायगा, हमारा किराये का बोझ कम हो जायगा।"

"आपकी बात ठीक है। अगर हमारे पास पैसे की तगी न होती तो सौ-सौ रीयल देने मे हमे जरा भी आपत्ति न होती।"

"अच्छी बात है। मैं अपने साथियो से सलाह करके आपको कल सवेरे जवाब दूगा।"

इतना कहकर वह चला गया। हम लोगो का मन द्विविधा मे पडा। एक ओर साथ मिल जाने का लालच था, दूसरी ओर पैसे का सवाल था।

कुछ देर चर्चा के बाद हमने तय किया कि सबेरे जैसा होगा देखा जायगा।

अपने कार्यक्रम के अनुसार जल्दी उठे, नहा-धोकर तैयार हुए, पर वह नौजवान नही आया। सात बजे चेट्टियार की दूकान पर पहुचे। कॉफी तैयार थी। पीने बैठे कि वह आ गया। उसके साथ दो अन्य व्यक्ति थे—वेंकट रमन और उनकी पत्नी भारती। परिचय होते ही वेंकट रमन ने कहा कि साथ चलिये, पैसे की ऐसी कोई बात नही, जो चाहे, दे दीजिये।

बाद मे हमने अनुभव किया कि जीप से जाना अच्छा ही हुआ। रास्ता इतना विकट था कि मोटर-साइकिल-रिक्शा सब जगह नही जा सकती थी। फिर हम लोग अकेले उन स्थानो का आनद भी नही ले सकते थे। इन तीनो का साथ अच्छा रहा। वेंकट रमन और भारती ने तो बड़ी आत्मीयता दिखाई। सबसे बडी बात यह हुई कि चेट्टियार का मेहनत से तमिल मे लिखा उन स्थानो का विस्तृत वृत्तान्त वेंकट रमन साथ ले गए, जिससे हम उन जगहो को, उनके मदिरो को तथा उनकी मूर्तियो एवं दृश्यो को, अच्छी तरह समझ सके।

८॥ बजे एक चीना (चीनी) जीप लेकर आ गया। उससे रवाना हुए। सबसे पहले बेंतई समरे गये, जो वहा से १९ किलोमीटर था। अकोर वाट तक तो राजमार्ग रहा, बाद मे ऐसा ऊबड-खाबड कच्चा रास्ता मिला कि हमारी जीप उछल-उछल पडती थी। पर चीना ड्राइवर बडा कुशल था। कही-कही पर लकडी के अस्थायी और डगमगाते पुलो को पार करते समय जब हमारा दिल दहल उठता था, वह मजे मे गाडी निकाल ले जाता था। सारा रास्ता घने सुनसान जगल मे होकर था।

बेंतई समरे पहुचने पर वहा के मदिरो को देखकर दक्षिण भारत के महाबलीपुरम के मदिर की याद आ गई। उनकी शिखरें दक्षिण के मदिरो से मिलती-जुलती हैं और प्रत्येक मदिर के द्वारपट्ट पर बड़ी सुन्दर भारतीय मूर्तिया हैं। सबसे पहले ध्यान गया प्रवेश-द्वार की मूर्ति पर, जिसके मध्य मे शिव हैं, दाए पार्श्व मे विष्णु और बाए मे गरुड। एक द्वार के पट्ट पर अमृत-मथन का दृश्य अकित है, दूसरे पर ब्रह्मा, सरस्वती, नारायण, लक्ष्मी, शिव और पार्वती की मूर्तिया हैं। एक पट्ट पर नरसिंह-अवतार दिखाया गया है। एक अन्य पट्ट पर शेषशायी महाविष्णु हैं,

दूसरे पर राम-हनुमान । एक पर महालक्ष्मी, महाब्रह्मा आदि हैं । सारे मदिर मे इतनी अधिक मूर्तिया हैं और इतनी सुन्दर कि दर्शक दातो तले उगली दबा लेता है। कितनी धर्म-प्रभावना रही होगी उनके निर्माताओ मे और कितना अवकाश रहा होगा उनका निर्माण करनेवाले कलाकारो के पास ! मूर्तियो की सुडौलता, भावो की अभिव्यक्ति, सूक्ष्म-से-सूक्ष्म रेखाओ की प्रभावोत्पादकता को देखकर ऐसा जान पडता है कि वे पाषाण-खण्ड निर्जीव नही हैं। उनका निर्माण एक हजार वर्ष मे पूर्व हुआ है, लेकिन लगता है, कल ही बनकर तैयार हुई हो। इतनी ताज़गी है उनमे । प्रकृति का प्रकोप उनका कुछ भी नही विगाड सका और काल तो जैसे उनसे पराभूत हो गया है ।

वेंतई समरे से वेंतई सिरी की ओर रवाना हुए, जो वहा से कोई बीस किलोमीटर पर था। वहा जाने के लिए भी वैसे कच्ची सडक थी, लेकिन इतनी खराव कि जरा से चूके और गये। पूरा रास्ता घने जगल में होकर है । थोडी-थोडी दूरी पर वन्य जातियो के घर मिले और घरो मे तथा खेतो मे काम करते स्त्री-पुरुष दिखाई दिए । वेंतई सिरी पहुचे । वहा के मदिर भी दक्षिण भारत की शैली के हैं और हर मदिर के द्वार पर मूर्तिया हैं। इस स्थान का प्राचीन नाम शिवपुरी था और वहा के मदिर 'महालक्ष्मी के मदिर' कहलाते हैं। वस्तुत उस स्थान के नाम का अर्थ ही है 'देवी का दुर्ग ।' वहा के मदिर सन ६६८ मे पूर्ण हुए थे और उसी समय उनकी प्रतिष्ठा हुई थी ।

कम्बुज की कला की दृष्टि से यहा के गोपुरम का वडा महत्त्व है। इसका निर्माण इद्रवर्मा के गुरु ने सन १३०४ मे कराया था। इसमे एक अधिष्ठान पर तीन मदिर बनाये गए, जिनमे शिवलिग की स्थापना की गई। इनके चारो ओर परकोटा है, जिसमे एक ओर को दक्षिण भारत के मदिरो की भाति गोपुरम है । प्रवेश-द्वार की तरह तीन ओर दरवाजे हैं । शिल्प-कला के कारण इन मदिरो का अपना स्थान है।

सबसे पहले द्वार पर लक्ष्मी की मूर्ति है । दो गज सूड उठाये उसका अभिषेक कर रहे हैं। दूसरे द्वार पर शिव का नृत्य हो रहा है। एक आदमी मृदंग वजा रहा है । एक कृपकाय स्त्री, जिसके शरीर की एक-एक हड्डी

गिनी जा सकती है, बडी भक्ति से शिव का नृत्य देख रही है। एक द्वार पर महाविष्णु के अवतार का दृश्य दिखाया गया है।

सबसे भावपूर्ण चित्रण एक मुहावटी पर अकित है। शिव और पार्वती कैलास पर्वत पर बैठे हैं। उनके साथ उनके गण और जटाधारी यति दिखाये गए हैं। गणेश हाथ जोडे बैठे हैं। यति आपस मे कुछ सलाह कर रहे हैं। नीचे दस सिर वाला रावण कैलास को उठाने का प्रयत्न कर रहा है। पर्वत की गुफाओ मे शेर, हाथी, हिरन भयभीत होकर भागते हुए दीख पड़ते हैं। सारा वातावरण क्षुब्ध जान पडता है। शिल्पकारो ने लताओ को भी बड़ी कुशलता से अकित किया है। इसी प्रकार का एक दृश्य हमने एलोरा के कैलास-मदिर मे देखा था, लेकिन शिल्पकार ने यहा अपनी कला को चरम सीमा पर पहुचा दिया है। एक चित्र मे दो व्यक्ति एक स्त्री के लिए लड़ रहे हैं। दोनो का एक-एक हाथ एक-दूसरे के हाथ मे है और दूसरे से वे स्त्री के हाथ पकडे हुए हैं। दोनो ओर दो-दो व्यक्ति खडे उस नज्जारे को देख रहे हैं। एक चित्र मे इन्द्र तीन हाथियो पर सवार है। हाथियो के सिर दिखाये गए हैं। एक अन्य फलक पर शिव, पार्वती, नन्दी हैं, एक मे मोर पर आसीन कार्तिकेय। एक पट्ट पर शिव तपस्या मे लीन है और रति एव मन्मथ उनकी तपस्या को भग करने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। उसी दृश्य मे बहुत-से ऋषि-मुनि भी अकित किये गए है।

सबसे प्रभावशाली दृश्य मुझे लगा वाली-सुग्रीव के युद्ध का। राम धनुष-बाण हाथ मे लिये बडी उत्सुकता से उन्हे लडते देख रहे हैं। लक्ष्मण उनके पास बैठे हैं। दो वानर वहा उपस्थित हैं, जो युद्ध के परिणाम के सबध मे बडे चिंतित जान पडते हैं। एक चित्र मे रावण सीता को हरकर ले जाते दिखाया गया है। एक मे नरसिंह अवतार। एक अन्य पट्ट पर कृष्ण और कंस का युद्ध दिखाया गया है। उसका वातावरण बडा प्रभावशाली है। रथ, धनुर्धारी सैनिक आदि बडी उत्तेजित मुद्रा में अकित किये गए हैं।

एक फलक पर पुष्प-लताओ के बीच हस पर आरूढ ब्रह्मा की मूर्ति है। ऐसे दस-बीस नही, पचासो शिलापट्ट हैं, जिनपर भारतीय देवी-देवताओं और पौराणिक प्रसगो को दिखाया गया है। उनके अलकरण तो

बहुत ही आकर्षक हैं। कई द्वारो पर द्वारपाल के रूप मे अत्यन्त रूपवती रमणिया अकित की गई हैं। कलाइयो पर दो-दो ककण, कानो मे कुण्डल, कटि मे मेखला तथा पैरो मे दो-दो कडे, चेहरे पर हास्य।

मदिरो के गर्भ-गृह खाली पडे है। एक मे खडित नन्दी दिखाई दिया। उसकी आकृति से पता चलता था, जैसे वह गिर पडा हो और उठने का प्रयास कर रहा हो। सभव है, अन्य मदिरो मे भी मूर्तिया रही हो और बाद मे वे इधर-उधर हो गई हो।

ये मदिर इतनी सुनसान जगह पर हैं और उनमें इतनी निस्तब्धता छाई रहती है कि वहा खडे होने और उसके कक्षो मे जाने पर डर मालूम होता है। घने वन के बीच होने के कारण जगली जानवर सहज ही उन्हें अपना आवास बना सकते हैं। बनाते भी होगे। एक मदिर पर जगली जाति के कुछ बालक मिले, जिनमे से एक के हाथ मे तीर-कमान थी। तीर-कमान का वे आज भी उपयोग करते हैं। वेंकट रमन ने तीर छोडने का सकेत किया तो उस बालक ने फौरन कमान को ऊपर तानकर तीर छोडा। तीर इतने वेग से ऊपर गया कि दिखाई ही न दिया। वे लोग अब भी तीर चलाने की कला मे बहुत निपुण हैं।

मदिरो को देख-देखकर आश्चर्य होता था कि छैनी से कैसे उन पत्थरो मे जान डाली गई होगी! ऐसे घने जगल मे, जहा किसी तरह का कोई रास्ता न था, किस तरह मदिरो का सामान लाया गया होगा। जाने कहा-कहा से कलाकार आये होगे और इस काम को आरभ करने से पहले न जाने कितने समय तक उन्हें भारतीय देवी-देवताओ की आकृतियो तथा पौराणिक आख्यानो का अध्ययन करना पडा होगा!

भारत से इतनी दूर भारतीय कला और सस्कृति के इन अनमोल अवशेषो को देखकर हम सबका चित्त आनदित हो उठा। रास्ते मे जब जलपान के लिए एक नदी के किनारे पर रुके तो हम सबकी आखें मुड़-मुडकर पीछे के दृश्यो को देख रही थी।

: ३६ :

चेट्टियार के साथ

घूमने के अलावा हमारे पास जितना समय बचा, वह हमने चेट्टियार की दुकान पर बिताया। दूकान सियमरीयप के मुख्य बाजार में थी। अत चेट्टियार से जहा बाते करने का मौका मिला, वहा बाजार मे लोकजीवन की धारा के प्रवाह को भी देखने की सुविधा हुई। चेट्टियार अकेले भारतीय हैं, जो उस नगरी मे वर्षों से रह रहे हैं। उनका जन्म सन १९०१ मे दक्षिण भारत के रामनाद जिले के अन्तर्गत चेट्टिनाद नामक स्थान पर हुआ था। उनके पिता कम्बोडिया की राजधानी नामपेन में बेकर थे। सन १९१४ मे चेट्टियार जन्मभूमि को छोडकर अपने पिता के पास आ गए और २७ वर्ष नामपेन मे रहकर सन १९४१ में सियमरीयप में आकर बस गए। बीच-बीच मे कुछ समय के लिए भारत आते रहे। भारत में उन्होने विवाह किया। भारतीय पत्नी से एक लडकी और लडका है, जिनका विवाह हो चुका है।

भारतीय पत्नी वहा कभी नही आई, पर उनका लड़का नामपेन मे व्यापार करता है। सन १९३४ में उन्होने चीनी मिश्रित रक्त की एक कम्बोडियन महिला से फिर विवाह कर लिया, जो अब उनके साथ रहती है। उससे एक लडकी है। बाए हाथ की कन्नी और उसके पास की अगुलियो के एक-एक इच से भी बडे नाखूनो को देखकर जब मैंने कौतूहलवश उनके बारे में पूछा तो उन्होने बडी गम्भीरता से उत्तर दिया, "फादर डाइड नाइन्टीन नाइन्टीन, दिस स्टाप्ड।" अर्थात सन १९१९ मे पिताजी की मृत्यु होने पर कन्नी उगली का नाखून काटना बन्द कर दिया और सन १९२८ में मां के मरने पर उसके पास की उंगली का।

५९ वर्ष की अवस्था मे भी चेट्टियार बडे स्फूर्तिवान हैं। बेंत जैसी रोतन नाम की घास की भाति-भाति की टोकरिया आदि चीजें वहा बहुत सुन्दर बनती हैं। चेट्टियार की दुकान में उनके अतिरिक्त कपडा तथा और भी कुछ चीजे हैं। जो भी भारतीय वहा आता है, उसकी बड़े उल्लास से सेवा

करते है। सन १९५४ मे प० जवाहरलाल नेहरू वहा गये तो उन्होने उनके लिए चायपार्टी की। १२ हजार रीयल खर्च करके व्यवस्था की। तीन वर्ष वाद डा० राधाकृष्णन और सन १९५९ में राजेन्द्रवावू गये तो उन्होंने उनके आतिथ्य में भी कोई कसर न उठा रखी। राजेन्द्रवावू के भोजन की व्यवस्था स्वय की। भारतीय नेताओ के साथ चित्र और उनके पत्र उन्होने वडी साव-धानी से सभाल करके रखे है। राजेन्द्रवावू ने तो अपना एक चित्र हस्ताक्षर करके उन्हें भेट-स्वरूप भेजा था, जिसे दिखाते हुए उनकी आखे आज भी चमक उठती हैं। "आप राष्ट्रपति से मिले तो उन्हे मेरा नमस्कार कह दीजिये।" ये शब्द हमसे कहते-कहते उनकी आखें डवडवा आई। उन्होंने वताया कि इन तथा अन्य भारतीय नेताओ के आने के वाद से अव साल मे कोई दो सौ भारतीय पर्यटक उधर आ जाते हैं। पाकिस्तान से भी लोग आते हैं। पर मैं आदमी-आदमी के वीच भेद नही करता। कौन किस जाति का है, इसकी मुझे चिन्ता नही। ब्राह्मण, ईसाई, मुसलमान, स्यामी, कम्वो-डियन, सव मेरे लिए वरावर हैं और सवके लिए मेरे घर का द्वार खुला है। मैं यहा खुश हू। अव तो इतने साल रहते हुए हो गए, काम-धधा भी यही है। देश मे घरवाली है, उसे वरावर रुपये भेजता रहता हू। नागरिकता मेरी अव भी भारतीय है। सन १९५२ में भारत गया। अव देखिये, कव जाना होता है!

चेट्टियार केवल दूकानदार नही है, फ्रेंच सरकार के समय में शाही पार्टी के विरोधी दल के विरुद्ध सहायता करने के उपलक्ष्य मे तत्कालीन सरकार से एक तमगा और दस हजार पियास्टर प्राप्त कर चुके हैं। दो तमगे कम्वोडियन सरकार से। पहला कम्वोज की डिफेंस नेशनेल की ओर से सन १९५५ मे मिला, जो औपचारिक रूप से २८ जून, १९५९ को दिया गया। दूसरा उसी वर्ष मे वहादुरी के लिए मिला। एक वार वह कही जा रहे थे। रास्ते में डाकुओ से मुठभेड हो गई। उन अकेले ने दो डाकुओ को वही मार डाला और वाकी पाच को गहरी चोटें दी। यह तमगा उन्हें समारोहपूर्वक १७ मार्च, १९५९ को दिया गया।

हालाकि चेट्टियार अव उस देश मे वस गए है और सालो वहा रहते हो गए हैं, फिर भी अपने देश को और अपने देशवासियो को भूले नही हैं। उनके

कमरे मे आज भी भारत के राष्ट्रीय नेताओ गाधीजी, राजेन्द्रबाबू, नेहरूजी, सरदार पटेल, मौलाना आजाद, राजाजी, पट्टाभि सीतारमैया तथा श्रीमती सरोजिनी नायडू के चित्र लगे हैं। ऊपरी मजिल के पूजाघर मे विभिन्न धर्मों के प्रवर्त्तको के चित्रो के बीच गाधीजी का चित्र लगा है। पर उस व्यक्ति की अनुशासनप्रियता देखकर हम दग रह गये। सवेरे के जैसे ही सात बजे कि चेट्टियार एकदम उठकर सैनिक की भाति सावधान की मुद्रा मे खडे हो गए। थोडी देर बाद बैठते हुए उन्होने बताया कि यहा के राजा नोरोदोम सुरामरिथ की मृत्यु के कारण रोज शाम को ५। बजे झडा नीचे कर दिया जाता है और सवेरे ७ बजे ऊपर चढा दिया जाता है। राष्ट्रीय बैण्ड बजते ही दोनो समय सारा काम रुक जाता है और जबतक बैण्ड की ध्वनि समाप्त नही होती, कोई आदमी अपनी जगह से हिलता तक नही। भारत की नागरिकता होने से चैट्टियार वहा के रीति-रिवाज मानने के लिए बाध्य नही हैं, पर जीविका देनेवाली भूमि के प्रति स्वेछा से अगीकृत दायित्व को निभाने में वह पूरी तरह सजग है।

दूकान से अन्दर जाते हुए एक ओर को एक अलमारी रखी थी, जिसके खानो में बहुत-सा सामान भरा था। एक दिन शाम को बातचीत मे बोले, "यू टाइगर ? आई एम टाइगर।" हम नही समझ पाये कि वह क्या कह रहे हैं। एकाध सवाल करके खुलासा कराया तो मालूम हुआ कि वह पूछ रहे थे, "आप लोगो ने चीता देखा ? मेरे पास है।" हमने विस्मय से उनकी ओर देखा। मुस्कराते हुए चैट्टियार उठे और उस अलमारी के नीचे के खाने मे हाथ डाला। हमे लगा, वह टार्च या मोमवती ढूढ रहे है। लेकिन वह जो लाये, वह सात दिन का चीते का बच्चा था। हमने कहा, "इसे खिलाते क्या है ?" बोले, "मेरी बिल्ली ने दो बच्चे दिए हैं। यह उन्हीके साथ रहता है और बिल्ली का दूध पीता है।"

कम्बोडिया की मौजूदा हालत पर प्रकाश डालते हुए चेट्टियार ने बताया कि कम्बोडियन स्वभाव से शातिप्रिय और सतोषी लोग है। फ्रेंच सरकार ने उन्हें नौकरियो की ओर खीचकर परावलम्बी बना दिया है। अपना व्यवसाय करने की उनमे क्षमता नही रही। नतीजा यह कि यहा का ज्यादातर व्यापार चीनियो के हाथ मे चला गया है। पच्छिम की हवा यहा

तेजी से आ रही है और लोगो के रहन-सहन, आचार-विचार आदि पर गहरा असर डाल रही है। पहले यहा औरते लम्बे बाल रखती थी, फिर शादी के बाद कटवाने लगी और अब तो फैशन का ऐसा भूत सवार हुआ है कि छोटी उमर से ही बालो को कटवाकर घुघरूदार करा लेती हैं।

उन्होंने यह भी बताया कि थाईलैण्ड की भाति यहा भी मुर्दों को कुछ समय रखने के बाद जलाने की प्रथा है। घर मे गमी होने पर कुछ लोग सिर के बाल मुडवा लेते हैं। शोक के दिनो मे सफेद कपडे पहनने का रिवाज़ है। बौद्ध भिक्षुणिया भी सफेद पोशाक पहनती हैं। जब हमें यह बात मालूम हुई तो हम समझे कि हमारे सफेद कपडो को लोग आखें गडाकर क्यो देखते थे।

साहित्य के प्रति चेट्टियार की अन्वेषक की रुचि देखकर हमें बडा ताज्जुब हुआ। वह कई भाषाए जानते हैं और उन्हें अच्छी तरह से बोल भी लेते हैं। बातचीत मे उन्होने बताया कि कम्बोडियन भाषा में २५ प्रतिशत तमिल के और ३५ प्रतिशत सस्कृत के शब्द हैं। उच्चारण मे थोडा भेद अवश्य है, लेकिन उनका मूल उद्गम सस्कृत और तमिल है। वीथि को कम्बोडियन में 'विथाई' कहते हैं, मनुष्य को मनु, पुरुष को पुरो, विद्यालय को विद्यशाला, मन्त्री को मन्त्रे, आचार्य को आचान, स्त्री को सिरई (श्री), कुमार-कुमारी को कुमार-कुमारई, भार्या को पियरीय, कार्यालय को कार्या-लय, पडित को पडित, राजकुमार को क्षत्री आदि-आदि। उन्हें सैकडो शब्द याद थे। यदि कोई भाषा-शास्त्री उधर की भाषाओ का तुलनात्मक अध्ययन विधिवत् रूप से करे तो वास्तव में बडा उपयोगी कार्य हो।

हम जब अकोर वाट, अकोर थाम, बैंतई समरे तथा बैंतई सिरई देखने जा रहे थे तो हमने चेट्टियार से कहा था कि इन ऐतिहासिक स्थानो के सम्बन्ध में कुछ साहित्य हो तो हमे दे दें। वह बोले, "अगरेजी में तो बहुत-सी पुस्तकें निकली हैं, किन्तु भारतीय सस्कृति के महान केन्द्र होते हुए भी भार-तीय भाषाओ मे इनपर विस्तार से कुछ भी नही निकला है। मैंने इस दिशा मे थोडी-सी कोशिश की है। महीनो लगाकर मैंने हर स्थान का तमिल मे विस्तृत परिचय तैयार किया है।"

इतना कहकर उन्होने कई कापिया निकालकर हमारे सामने रख दी। मोती जैसे अक्षरो में उस व्यक्ति ने उन सब स्थानो का इतिहास ही नही

लिखा, उनकी एक-एक चीज़ का परिचय भी दिया है। जैसाकि हम बता चुके हैं, बैंतई समरे और बैंतई सिरई के प्रवास मे तमिल-भाषी वेंकटरमन और उनकी पत्नी उस सामग्री का उपयोग करते रहे। हमें यह देखकर अचरज हुआ और हर्ष भी कि बारीक-से-बारीक रेखाओं तथा छोटे-से-छोटे दृश्यो तक का उन्होने परिचय दिया है। यदि वे कापिया हमारे साथ न होतीं और वेंकट रमन अथवा उनकी पत्नी उन्हें पढ-पढकर न सुनाते जाते तो हम बहुत-सी जानकारी से वचित रह जाते। लौटकर हमने चेट्टियार का आभार मानते हुए उनसे कहा, "ये पुस्तकें जल्दी-से-जल्दी छप जानी चाहिए। इतना ही नही, सारी भारतीय भाषाओ मे इनके अनुवाद भी होने चाहिए।"

चेट्टियार गम्भीर होकर बोले, "मैं स्वयं चाहता हू कि ये छप जाय, जिससे यहा आनेवालो को अपनी सस्कृति के इतने मूल्यवान अवशेषो की अच्छी तरह से जानकारी मिल जाय। लेकिन हमारे लोगो मे उत्साह की बडी कमी है। वे इन स्थानो के महत्व को नही समझते। नेहरूजी जब यहां आये तो अकोर वाट और अंकोर थॉम तो उन्हें दिखा दिए, लेकिन बैंतई समरे और बैंतई सिरई के लिए कह दिया कि वहां जाना ठीक नही होगा, क्योंकि रास्ता बहुत ही खराब है। पर नेहरूजी कहा मानने वाले थे! वह वहा गये और उन जगहो को देखकर बडे खुश हुए। भारत से और दूसरे देशो से लोग इन स्थानो को देखने जायगे तो ये बचे रहेंगे, नही तो गिर-गिराकर बराबर हो जायगे और बियावान जगल मे उनका पता भी नही चलेगा।"

उनकी बात मे कितनी सचाई थी, उसे उन जगहो को देखने के बाद हम अच्छी तरह समझ सके। एक भी स्थान ऐसा नहीं है, जो अखडित रूप मे हो। बहुत-सी दीवारो, जिनपर बडे ही मूल्यवान पौराणिक आदि दृश्य अकित है, गिर चुकी हैं और शेष गिरती जा रही हैं। कुछ ही सालो में वे ईंट-पत्थर का ढेर रह जायगी। चेट्टियार की चिन्ता के पीछे भारतीय सस्कृति के प्रति उनकी अनन्य निष्ठा देखकर हम लोगो का हृदय गदगद हो उठा।

"आप लोगो के पास समय की कमी है।" उन्होने कहा, "लेकिन सच बात यह है कि ये सास्कृतिक और ऐतिहासिक स्थल भाग-दौड मे देखने के नही हैं। एक-एक जगह पर कई-कई दिन ठहरकर अच्छी तरह देखने पर असली आनन्द आता है। एक-एक रेखा का महत्त्व है। कलाकारो ने एक भी

दृश्य अकारण नही रखा ।"

फिर कुछ रुककर बोले, "आप भारत - सरकार से कहें कि वह यहा भारतीय इतिहास और भारतीय सस्कृति के विद्वानों को भेजे, जो यहा आकर दो-चार साल रहे और गहराई स इन चीजो का अध्ययन करे । विदेशी लोगो की इनमे इतनी दिलचस्पी है कि उनके विद्वानो ने सालो अध्ययन-निरीक्षण करके वहुत-सा साहित्य रच डाला है । उस साहित्य का भी उपयोग किया जा सकता है । उसमे वहुत-सी वाते काम की है । लेकिन कुछ चीजें उन्होंने गलत भी लिख डाली है । फ्रेंच लोगो ने, जिन्हे अवलोकितेश्वर वताया है, वे वास्तव मे या तो ब्रह्मा है या शिव । इस वारे मे अच्छी तरह से खोज होनी चाहिए ।"

अपनी वाह्याकृति से रूखे लगनेवाले चेट्टियार की सहृदयता वास्तव मे दुर्लभ थी । सस्कृति की वात करते-करते वह द्रवित हो उठे और जव वेंकट रमन और उनकी पत्नी को उन्होने विदा किया तो उनकी आखो मे आसू झलक आए ।

उस छोटी-सी नगरी मे चेट्टियार का वडा मान है । देहातो से टोकरिया आदि सामान लेकर उसे वेचने जव ग्रमीण युवतिया अथवा वृद्धाएँ उनकी दुकान पर आती हैं तो उनके प्रति वडा आदर-भाव व्यक्त करती है । हमारे सामने ही दो-तीन वार उन्होंने सामान खरीदकर पैसे दिये तो सामान बेचने वाली महिलाओ ने घुटने के वल धरती पर वैठकर, सिर झुकाकर, उन्हें प्रणाम किया ।

चलने से पहले चेट्टियार ने हमें नामपेन के लिए एक पता दिया और सेगाव के लिए एक पत्र । उस पत्र मे उन्होने अपने मित्र को इतना तक लिख दिया कि वह हमारे ठहरने की ही नही, खाने-पीने और घुमाने की भी व्यवस्था कर दे ।

तीसरे दिन उनसे विदा लेते समय विष्णुभाई ने कहा, "हमारे योग्य कोई सेवा हो तो वताइये ।"

वह वोले, "हिन्दुस्तान पहुचकर मुझे भूलिये नही । पत्र लिखिये । वस, इतना ही मैं चाहता हू । मौका मिले तो यहा फिर आइये ।"

वह हमें रिक्शे तक पहुचाने आए । हमने नमस्कार किया तो उन्होंने

भी हाथ जोडकर सिर झुका दिया। हमने देखा, उनकी आखे डबडबा रही थी, जैसे अपने किसी प्रियजन को विदा करते समय उनका हृदय विह्वल हो रहा हो। सियमरीयप से हमे कम्बोडिया की राजधानी नामपेन जाना था। दिन के १० बजे के विमान से वहा के लिए प्रस्थान किया।

: ३७ :

कम्बोडिया की राजधानी में

सियमरीयप से नामपेन तक की एक घटे की यात्रा में कोई विशेष बात नही हुई। मौसम साफ रहा, इसलिए नीचे की दृश्यावली दिखाई देती रही। ११ बजे नामपेन पर उतरे और कस्टम की खानापूरी आधे घटे में निबटाकर बाहर पहुचे तो सबसे बडी समस्या सामने आई कि ठहरें कहा। अपने राजदूत श्री नायर को मैंने एक पत्र रगून से लिखा था, पर उसमे वहा पहुचने की निश्चित तिथि नही दी थी। दूसरी चिट्ठी तारीख तय हो जाने पर उसकी सूचना देते हुए बेंकाक से लिखी थी। पर बाहर पूछताछ करने पर जब उनका कोई आदमी न मिला तो हम परेशानी में पडे। सोचने लगे, अब क्या हो! इतने में एक सरदारजी लपकते हुए आते दिखाई दिए। लगा, वह अपने दूतावास के ही होगे, लेकिन पूछने पर बडी निराशा हुई। उन्होने न सिर्फ यह कहा कि वह भारतीय दूतावास के नही हैं, बल्कि अपनी बातचीत से हमें डरा भी दिया। बोले, "आप यहा की भाषा जानते हैं?" हमारे इन्कार करने पर उन्होने सवाल किया, "आप लोगो के ठहरने का कोई इतजाम है?" हमने जवाब दिया, "नही।" बोले, "आप लोग भी अजीब हैं। बिना कोई इतजाम किये चले आए है और यहा की भाषा जानते नही! बडी परेशानी में पडेंगे।" इसके बाद यह कहकर कि उन्हें बहुत जल्दी है, वह चले गए। थोडी देर मे एक और भारतीय आये और वह भी उसी तरह टालकर और हमारी हैरानी को बढाकर चले गए। अब? उस समय की हमारी मनोदशा की कल्पना नहीं की जा सकती। अचानक एक कम्बोडियन नौजवान आया। वह सियमरीयप से जहाज मे हमारे साथ आया था। हमें उदास देखकर अगरेजी मे बोला, "आपके पास शहर का कोई ठिकाना हो तो मैं आपको वहा पहुचा दूगा।" चेट्टियार ने जो पता दिया था, वह हमने उसे दिखा दिया। उसने कहा, "ठीक है, मैं आपको इस पते पर पहुचा दूगा।"

थोडी देर मे हवाई अड्डे की गाडी आ गई, उससे हम लोग शहर की ओर रवाना हुए। उस युवक ने ड्राइवर को समझा दिया कि वह हमे अमुक स्थान पर पहुंचा दे। फिर हमारे पास बैठकर बोला, "मैं अकोर वाट मुआयने के लिए गया था। लेकिन कल तार मिला कि जापे के लिए स्त्री को अस्पताल मे भर्ती होना है। सो लौट आया।"

उस तरुण ने हम लोगो की जो मदद की, वह भूली नही जा सकती। उसने न केवल हमे हमारे बताये पते पर पहुंचाया, बल्कि गाड़ी को उस समय तक रोके रखा, जबतक हमारे ठहरने का पक्का न हो गया। फिर उसने सामान उतारने मे हमारी मदद की और अत मे बडी आत्मीयता से नमस्कार करके चला गया।

जिन सज्जन की दूकान पर हम उतरे थे वह मणिलालभाई आनगाव गये थे और अगले दिन लौटनेवाले थे। उनकी पत्नी अजनबियो को ठहराने में हिचकी। उन्होने थोड़े सोच-विचार के बाद एक भाई को बुलाने के लिए अपने लडके को भेजा, पर वह घर नही मिले। और कोई चारा न देखकर उन्होंने हमारा सामान दूकान मे रखवा लिया। हमने सोचा, उन्हें परेशानी से बचाना चाहिए। इसलिए सामान छोडकर उनके लडके को साथ ले सीधे भारतीय दूतावास पहुचे। सयोग से हमारे राजदूत मिल गए। उन्हें हमने सारा हाल सुनाया तो उन्होने कहा, "रगून से भेजा एक पत्र श्री लालजी भाई (बर्मा के तत्कालीन भारतीय राजदूत) का मिला था कि आप लोग आ रहे है। ५ मई का वह पत्र १६ मई को मिला। आपकी एक भी चिट्ठी नही मिली। लेकिन कोई बात नही। मैं आपके लिए सारा बन्दोबस्त कराये देता हू।"

इसके बाद उन्होने अपने द्वितीय सचिव श्री ओमप्रकाशजी को बुलाकर बात की। ओमप्रकाशजी ने वहा की हिन्दुस्तानी एसोसियेशन के मत्री श्री रामचन्द्र को बुलाया। वह आये और हमे बडी खुशी से अपनी कार मे लेकर मणिलालभाई की दुकान पर गये। वहा से हमारा सामान लिया और हमे मंदिर में ले जाकर ठहरा दिया। ठहरने की वहा अच्छी व्यवस्था थी। हाथ-मुह धोने के बाद वह हमें ओमप्रकाशजी के यहा ले गये, जहा हम भोजन के लिए आमंत्रित थे। ओमप्रकाशजी और उनकी पत्नी पास बैठकर बातें करने

लगी। वातचीत में पता लगा कि ओमप्रकाशजी पाडिचेरी के श्री अरविन्द आश्रम के हमारे अग्रज-तुल्य डा० इन्द्रसेन की पत्नी के भाई हैं और जब उन्हें मालूम हुआ कि इन्द्रसेनजी के साथ हमारे वहुत ही निकट के सवध हैं तव तो सारी स्थिति ही वदल गई। हमारा सामान मदिर से उठवाकर वह घर ले आए और हमे, जवतक उस शहर मे रहे, परिवार का-सा वातावरण मिलता रहा।

नामपेन कम्वोडिया की राजधानी है। चार लाख की आवादी का छोटा-सा नगर है, लेकिन है वडा ही साफ-सुथरा और सुन्दर। सौ के करीव भारतीय वहा रहते हैं और व्यापार करते हैं।

ओमप्रकाशजी और उनकी पत्नी हमे सवसे पहले वहा का सग्रहालय दिखाने ले गये।। उसमे हमारा ध्यान विशेप रूप से हिन्दू देवी-देवताओ की मूर्तियो की ओर गया, जिनकी वहा वहुतायत थी। शिव-पार्वती, ब्रह्मा, विष्णु, लक्ष्मी, गरुड, लोकेश्वर, हरिहर, नवग्रह, गणेश, नरसिह, वाली-सुग्रीव का युद्ध आदि-आदि की प्रतिमाए चारो ओर रखी थी। शिव और विष्णु के मुह पर वडी-वडी मूछे और सिर पर पारसियो की-सी टोपी देखकर वडा विचित्र-सा लगता था। वुद्ध की भी कई मूर्तिया थी। इनके अतिरिक्त पोशाको, वाद्य-यन्त्रो, रथो, शिलालेखो, इत्यादि का अच्छा सग्रह था।

वहा से नगर का चक्कर लगाते हुए उस स्थान पर पहुचे, जो राजधानी का सवसे वडा आकर्षण-केन्द्र है। वहा पर तीन नदियो का सगम है। ये तीनो उस देश की वडी नदिया हैं और उनके मिलने से एक विशाल झील का निर्माण होता है। मिकाग नदी उधर से कई देशो मे वहती है। शेप दो सहायक नदिया हैं, वसाक और टौनलेसेप। इनमें टौनलेसेप की विशेपता यह है कि स्याम की खाडी के पानी के उतार-चढाव के हिसाव से साल में छ महीने उसकी धारा उल्टी दिशा में वहती है। सव नदिया मिलकर चौथी दिशा में चली जाती हैं। जगह वास्तव मे वडी सुन्दर है। सुवह-शाम वहा काफी भीड हो जाती है। पास में पार्क था। इसमें घूमकर स्विमिग पूल गये और यहा कुछ देर रुककर वहा के फनाम पे नामक वाट (मदिर) देखने गए, जिसके नाम पर उस नगर का नामकरण हुआ है। उधर के लोग नामपेन को इसी नाम से पुकारते हैं। शायद इसलिए कि अगरेजी मे वह इसी भाति लिखा

जाता है। मदिर ऊचाई पर है। सामने की दीवार पर अकोर थाम जैसी मूर्त्तिया बनाई गई हैं, पर असली और नकली मे जो अतर होता है, वही उनमे दिखाई देता है। वाट ठोस है, अर्थात उसमे गर्भगृह नही है। कहते हैं, फ्नाम पे नाम की एक स्त्री थी, जिसे एक दिन नदी में एक पेड बहता हुआ दिखाई दिया। उसने उसे निकाल लिया। देखती क्या है, उसके तने मे कुछ पात्र रखे है। उन्हें खोला तो उनमे भगवान बुद्ध के अवशेष थे। उसने पहाडी पर मदिर बनवाकर उसमे उन अवशेषो को प्रतिष्ठित करा दिया।

वाट देखने के वाद डा० मनमोहन घोष से मिलने गए, जो वहा के बौद्ध विश्वविद्यायल मे सस्कृत पढाते है। उनसे अपने देश की तथा वहा की राजनीति के बारे मे चर्चा होती रही।

अगले दिन सबमे पहले बाजार घूमने गए। वहा का म्यूनिसपल मार्केट बडा अच्छा है और उसका निर्माण इस प्रकार किया है कि चारो ओर से सडकें आकर वहा मिलती हैं। उसे बाजार क्या, विभिन्न वस्तुओ का भण्डार कहना चाहिए। सारा बाजार एक ही विशाल इमारत में है।

श्री नायर ने हमे अपने घर आने का न्यौता दिया था, उनके यहा गये। वह और उनकी पत्नी बहुत देर तक बातें करते रहे। चर्चा चलने पर राष्ट्र-भाषा हिन्दी के बारे में उन्हे अपने विचार बताये। उनका कहना था कि राष्ट्रभाषा के रूप मे हिन्दी का प्रचलन बिना किसी दबाव के और पूरी तैयारी के साथ होना चाहिए। उनकी पत्नी हिन्दी की विशेष प्रेमी जान पडी।

नामपेन के एक वडे भारतीय व्यापारी श्री लछमनदास ने अपने यहा भोजन करने बुलाया। उस मौके पर प्राय सभी भारतीय व्यापारियो को उन्होने अपने यहा इकट्ठा कर लिया। बातचीत मे भारत के बारे मे उन लोगो की जानकारी बडी कम मालूम हुई। हिन्दुस्तान की उत्तरी सरहद पर चीन के भारतीय भूमि के अनधिकृत कब्जे के सबध मे उन्होने बहुत-से सवाल पूछे। अतमे उन्होने कहा कि हमे सबसे वडी परेशानी इस बात की है कि वहा पर बच्चो की पढाई की अच्छी व्यवस्था नही है। अत हमे अपने बच्चो को पढने के लिए भारत भेजना पडता है।

डा० मनमोहन घोष को साथ लेकर बौद्ध विश्वविद्यालय देखने गए। उधर के देशो में बौद्ध भिक्षुओ के लिए शिक्षण की पृथक व्यवस्था है। हाई-

स्कूल के चार वर्ष के पाठ्यक्रम मे सारे विषय पढाये जाते हैं। उसके पश्चात चार साल का विश्वविद्यालय का पाठ्यक्रम है। उसमे उत्तीर्ण होने पर प्रमाण-पत्र मिलते हैं। विश्वविद्यालय के विशाल भवन को दिखाते हुए डा० घोष ने बताया कि इस समय यहा प्रथम दो वर्ष के छात्र हैं, क्योकि विश्वविद्यालय का आरम्भ केवल दो साल पहले हुआ है। उस समय कुल ८० छात्र थे। बौद्ध भिक्षु ही उसमें प्रवेश पा सकते हैं।

विश्वविद्यालय के वाइसचासलर से भेंट हुई, जो बौद्ध भिक्षु थे। उन्होंने इस बात पर बडी प्रसन्नता प्रकट की कि हम लोग उस देश में आये। उन्होंने कहा, "यहा आता कौन है! यूरोप और अमरीका की तडक-भडक लोगों को उधर ही खीच ले जाती हैं। आपने देखा, भारतीय सस्कृति से सबधित कितनी मूल्यवान सामग्री यहा है। अपनी सरकार से कहिये कि वह भारत के विद्वानो और साहित्यकारो को यहा भेजे।"

विश्वविद्यालय मे कोच कैलग नामक एक कम्बोडियन प्रोफेसर मिले, जो सात बरस दिल्ली मे रहे और वहा के विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि प्राप्त की। इस विश्वविद्यालय का पुस्तकालय बडा समृद्ध था, पर उसमे अधिकाश पुस्तकें फ्रेंच भाषा में थी।

विश्वविद्यालय के बाद राज-महल देखने गए। वहा प्रवेश अनुमति-पत्र लेकर होता है। अनुमति प्राप्त कर ली गई थी। अन्दर महल वाट की शैली का बना है, बडा सुन्दर और आकर्षक। उसके एक भाग मे वहा का राजा रहता है। वर्तमान राजा की मृत्यु हो गई थी, जैसाकि चेट्टियार ने बताया था। उनका शव महल के एक हिस्से मे रखा था, जिसकी अन्त्येष्टि बाद मे होनेवाली थी। महल के प्रागण मे सिनेमाघर, मच आदि हैं। एक कक्ष मे राजा-रानी के मुकुट, अगूठिया, तलवार आदि का मूल्यवान सग्रह है। उसीमें कुछ भारतीय मूर्तिया भी हैं। हमें बताया गया कि राजा का जब राजतिलक होता है तो उसके एक हाथ मे शिव और दूसरे मे विष्णु की मूर्तिया होती हैं। पुजारी शख से उसपर जल छिडकता है।

महल के अन्दर एक शाही मदिर है, जिसमे सोने के ऊचे सिंहासन पर बुद्ध की स्वर्ण प्रतिमा विराजमान है। उसके सामने मण्डप मे दीवारो पर रामायण, महाभारत तथा बुद्ध के जीवन के अनेक प्रसग चित्रित हैं।

महल का दरबार हॉल सबसे अधिक वैभवशाली है। उसका फर्श चादी से जडा है और दीवारो पर भी सोने-चादी का काम हो रहा है। मूल्यवान सिहासन के साथ बहुत-सी रत्न-जडित वस्तुए रखी है। महल के सामने का उद्यान भी दर्शनीय है।

महल के पास ही एक विशाल बौद्ध मदिर है, जिसके चारो ओर दीवारो पर बुद्ध के जीवन-प्रसग अकित है। इस वाट मे एक फुट ऊची मरकत की बुद्ध-प्रतिमा रत्न-जडित सिहासन पर आसीन है। मूर्ति हरे रग की है और कहते है, यह पत्थर मरकत से भी अधिक मूल्यवान होता है। उसके सामने बुद्ध की ९० किलोग्राम के वजन की मूर्ति अभय मुद्रा मे है। मूर्ति के दाई ओर एक शीशे के बक्स मे बुद्ध के जन्म का प्रसग दिखाया गया है। बुद्ध चार पग चल रहे हैं। पास मे एक ओर बुद्ध की मूर्ति है, बोधिवृक्ष के नीचे, पास मे रानी महामाया और राजा शुद्धोधन हैं। बाईं ओर की अलमारी मे बुद्ध की आठ मूर्तिया हैं, जिनके बीच एक मूर्ति स्फटिक की है। गर्भगृह के एक कक्ष मे चादी की चीजे रखी है। मन्दिर विशाल है और उसमे विपुल धन है। पर उसमे वह सौंदर्य नही दिखाई दिया, जो बैंक के एमराल्ड बुद्ध के मदिर मे दिखाई दिया था।

वहासे चलकर वह संग्रहालय देखा, जिसमे राजा को समय-समय पर भेंट में मिली वस्तुए संगृहीत हैं। पर वह बडा सामान्य लगा।

शाम को मणिलालभाई से मिलने गए। वह बाहर से लौट आए थे। अपने साथ ले जाकर उन्होने हमें प्रमुख भारतीयो से मिलाया। अन्य देशों की भाति यहा के भारतीय भी कमाई मे लगे हैं।

कम्बोडिया की राजधानी विकसित हो रही है। कुछ साल पहले तक हिन्द-चीन के अन्तर्गत तीन राज्य थे—कम्बोडिया, लाओस और वियतनाम। उनमे फ्रेंच शासन था, पर अब ये तीनो ही स्वतत्र हो गए है। वियतनाम उत्तर, दक्षिण दो भागो में बट गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये देश अभी स्वावलम्बी नही हैं। उनके विकास मे बाहर का पैसा लग रहा है। वहा के शासको का प्रयत्न है कि उनका देश अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति मे तटस्थ रहे। पर अन्य देशो से पैसा लेकर तटस्थ रहना आसान काम नहीं है।

पड़ोसी देशो, विशेषकर थाईलैण्ड और दक्षिण वियतनाम के साथ कम्बोडिया के सबध अच्छे नही है। अक्सर अप्रिय घटनाए होती रहती हैं। पूरे देश की आबादी कुल पचास लाख के लगभग है। वहा के निवासी खमेर भाषा बोलते हैं और उनकी लिपि का मूल उद्गम भारतीय है। राज्य का धर्म बौद्ध धर्म है—हीनयान ।

कम्बोडिया कृषि-प्रधान देश है। वहा चावल बडे परिमाण मे उत्पन्न होता है और दूसरे देशो को उसका निर्यात किया जाता है।

शहर मे खूब घूमे और सभी देखने योग्य चीज़ें ओमप्रकाशजी ने हमे दिखा दी। तीसरे दिन शाम को अपने राजदूत नायरजी से विदा लेने गए तो उन्होने कहा, "मुझे बडा खेद है कि आपको शुरू-शुरू मे इतनी असुविधा हुई। अगर मुझे आपका पत्र मिल गया होता तो मैं सारा प्रबध पहले से ही कर रखता। आप बुरा न मानें।"

ओमप्रकाशजी और उनकी पत्नी का हमें विदा करते समय दिल भर आया। तीन दिन तक बराबर साथ रहे थे। उनकी पत्नी बार-बार कहती थी, "आप लोगो के आने से ऐसा लगता था कि हम अपने देश मे हैं। पता नही, हमे कबतक यहा रहना होगा। अपने देश के लिए जी तरस जाता है।"

: ३८ :

सैगांव पहुंचे

हवाई अड्डे पहुंचाने के लिए लछमनदासजी तथा मणिलालभाई कार लेकर आ गए। दोपहर बाद ४ ३५ पर रवाना हुए। हवाई अड्डे का कुल १० किलोमीटर का फासला था, लेकिन रास्ते को चौड़ा करने के लिए लाग लगी थी। इसलिए धीरे-धीरे धूल के अम्बार को पार करते हुए कोई बीस मिनट में पहुचे। नियम के अनुसार पासपोर्ट आदि देखे गए, पर सामान तुलवाकर छोड दिया गया, खुलवाकर देखा नही। इस सबसे छुट्टी पाकर मणिलालभाई और हम बातें करते रहे। उन्होने बताया कि वह कब और कैसे यहा आये थे और किस तरह बस गए। उनके सारे रिश्तेदार भारत मे हैं। दो-चार साल मे वह चक्कर लगा लेते हैं, पर कुल मिलाकर वहा आराम मे हैं। हमने कहा कि आप लोग यहा भारतीय सस्कृति के लिए कुछ कीजिये। यह अच्छी बात नही है कि हमारी संस्कृति और धर्म का इतना बड़ा केन्द्र अकोर वाट पास मे होते हुए भी आपमे से बहुतो ने उसे नही देखा है और उस तथा वहाके दूसरे स्थानो के बारे मे भारतीय भाषाओ मे कोई पुस्तक नही है। उन्होने कहा, "आपकी बात ठीक है, पर यहा-पर जितने हिन्दुस्तानी हैं, वे सब व्यापारी है। सवेरे मे लेकर शाम तक अपने धधे मे लगे रहते हैं। हा, अपने त्योहार जरूर मनाते रहते हैं।" हमने कहा, "यह तो अच्छा है, पर अपनी संस्कृति की पुरानी चीजो मे भी तो आप लोग दिलचस्पी लीजिये। आप सब भारत के प्रतिनिधि के रूप मे हैं।" उन्होने इस कथन से अपनी सहमति जतलाई।

५ ३५ पर वियतनामी जहाज से रवाना हुए। जहाज अच्छा था। ३२ सीटे थी। मुसाफिर कुल २७ थे। दूसरे जहाजो से इस जहाज मे एक भिन्नता थी। इसमे सूचनाए और ही ढग से मिलती थी। मिसाल के तौर पर जब पेटी बाधने की हिदायत दी जाती थी तो सामने पट्ट पर बिजली से अक्षर नही उभरते थे, बल्कि सीट और पेटी का चित्र दीख पडता था।

इसी तरह सिगरेट न पीने की बात कही जाती थी तो सिगरेट को कैंची काटती हुई दिखाई जाती थी।

एक घटे की उस उडान मे जमीन और मौसम के वदलते रूप दिखाई देते रहे। कही-कही रुई-से वादल विखरे रहे। पर इस सवसे परे मन रास्ते-भर पुराने इतिहास के पन्ने पलटता रहा। हमारी आजादी की लडाई के दिनो मे वर्लिन और सैंगाव के रेडियो-केन्द्र करोडो भारतीयो के लिए जवरदस्त आकर्षण थे। वहा से जब नेताजी सुभाषचन्द्र वोस की आवाज सुनाई देती थी तो लोगो के दिल पुलक उठते थे और उमग से उछलने लगते थे। सैंगाव रेडियो की तो भारत मे ही नही, सारे ससार मे घूम मच गई थी। नेताजी तथा 'आजाद हिन्द फौज' के समाचारो का वह एक वडा ही शक्तिशाली माध्यम वन गया था। यह सच है कि हमारे सामने सैंगाव जाने का यह पुरानी स्मृति ही एकमात्र प्रलोभन थी।

विचारो मे डूवते-उतराते रास्ता कव तय हो गया, पता भी न चला। ६.३५ पर विमान सैंगाव के हवाई अड्डे पर उतरा। उस समय वहाकी घडी मे ७ वजकर ३५ मिनट हुए थे, अर्थात वहाका समय कम्बोडिया से एक घटा आगे था। हालाकि अभी शाम ही हुई थी, पर चारो ओर अघेरा छा गया था। ऐसा लगता था, काफी रात हो गई है।

पासपोर्ट तथा सामान आदि की जाच की खाना-पूरी मे आघ-पौन घटा लग गया। उसके वाद वाहर आये। नामपेन से जहाज मे हमारे साथ दो भारतीय आये थे। हमे आशा थी कि वे हमे लछमनदासजी के भाई के यहा पहुचा देंगे। रास्ते मे कुछ इस तरह का सकेत भी उन्हें कर दिया गया था, लेकिन जव कस्टम से पोर्टर हमारा सामान लाया और वाहर खडी उनकी कार मे रखने को हुआ तो उनमे से एक महाशय ने उसे हवाई अड्डे की बस मे रखने को कहा। हम सामान के साथ थे, इसलिए इस शक की भी गुजाइश न थी कि वह सामान किसका है। हमने कहा, "हमे लछमनदासजी के भाई के यहा जाना है।" पर उन्होंने हमारी वात सुनी-अनसुनी कर दी।

हम थोडा परेशान हुए। वूदें पड रही थी और इतना गहरा अघेरा फैला था कि हाथ भी नही सूझता था। पर हम क्या कर सकते थे? वहा

के लिए हम नये आदमी हैं और समय तथा मौसम बडा अजीब है, यह उन सज्जन के देखने की बात थी । जो हो, हम चुपचाप खडे रहे । सामान अपने पास रखवा लिया । कोई पाच मिनट इस अनिश्चय की अवस्था मे बीते होगे कि इतने मे एक अन्य भारतीय आये और हमारे पास आकर उन्होने पूछा, "आप लोग कहा जायगे ?" हमारे बताने पर उन्होने कहा, "चलिए, मैं आपको पहुचा दूगा ।" इतना कहकर उन्होने पोर्टर से हमारा सामान अपनी कार मे रखने का इशारा किया । जान-मे-जान आ गई । इन सज्जन का नाम था श्री चड़ूमल । वह सैंगाव मे कपडे के बडे व्यापारी थे । उनके साथ हम शहर की ओर रवाना हुए ।

चार मील का रास्ता बडा सुनसान था । यो सैंगाव बडा शहर है, उसकी आबादी कोई बीस लाख है, पर हवाई अड्डे से शहर तक ऐसी निस्तब्धता रहती है कि देखकर डर लगता है । मालूम हुआ कि रात के समय वहा अक्सर वारदातें हो जाती हैं । इसलिए जबतक बहुत ही जरूरी न हो, अधेरा होने के बाद शायद ही कोई उस रास्ते आता-जाता है ।

चड़ूमलजी बहुत खुले हुए व्यक्ति थे । हमारे पूछने पर कि शहर मे कितने भारतीय हैं, उन्होंने बताया कि कोई हजार के करीब घर होगें । ज्यादातर यहा सिंधी, मुसलमान और चेट्टियार हैं । सिंधी मुख्य रूप से कपडे का व्यापार करते है, मुसलमान तम्बाकू का और चेट्टियार रुपये के लेन-देन का । "लेकिन", चड़ूमलजी बोले, "यहा एक बात अच्छी है । हम लोगो की इधर के और मुल्को की-सी समस्याए नही हैं । सब काम-धधे मे लगे रहते हैं । आपस मे धार्मिक या और किसी तरह के तनाव नही हैं । यो व्यापार मे थोडी-बहुत खीचतान हो जाती हो तो हो जाती हो, पर कुल मिलाकर आपस मे सुमति है । थोडे लोग हैं न ?"

बाते करते हुए शहर पहुचे । सीधे मोहनजी के घर गये । दरवाजे पर घटी अधेरे मे दिखाई नही दी तो आवाज दी । कोई नही बोला, फिर पुकारा । कुछ देर मे ऊपर मुडेल पर एक सिर झाका, जो किसी महिला का था । उसकी आवाज से मालूम हुआ कि वह हिन्दुस्तानी नही है । चड़ूमलजी ने उससे बात करके हमे बताया कि मोहनजी घर के लोगो के साथ शहर से बाहर घूमने गए हैं । उन्हे अबतक लौट तो आना चाहिए था,

लेकिन देर हो गई । घर पर बस यह नौकरानी थी । "खैर, कोई बात नही । आप मेरे घर चलिए । इससे कहे देते हैं कि मोहनजी आकर फोन कर लें ।"

नौकरानी को सूचना देकर वह हमे अपने घर ले गये, जो पास मे ही था । उन्होने हमारा सामान कार मे ही रहने दिया और हमे ऊपर की मजिल मे ले गए । ड्राइग रूम मे विठाकर उन्होंने नौकर को खाने के बारे मे सूचना दी और फिर बैठकर बातें करने लगे । बातचीत मे जब उन्हें मालूम हुआ कि मैं रूस हो आया हू तो वह साम्यवाद और रूसी आचार-विचार की आलोचना करने लगे । मैंने कहा, "इधर के देशों में भारतीयो का जो रवैया हमने देखा है, उससे रूसियो के आचार-विचार के बारे मे कुछ कहना हिमाकत मालूम होती है । इधर के ज्यादातर भारतीय शराब पीते हैं, मास खाते हैं और यहा के लोगो के साथ अछूतो का-सा व्यवहार करते हैं ।"

"इससे क्या हुआ !" वह बोले, "ये सब तो ऊपरी चीजें हैं । इनका धर्म के साथ कोई ताल्लुक नही है । यह सब करते हुए भी हम हिन्दू हैं और हिन्दू ही रहेंगे ।"

मैंने कहा, "हिन्दुत्व तो बहुत बडी चीज है । उसमे किसी के साथ बिलगाव नही है । उसमे सब बराबर हैं ।" गाधीजी का एक उद्धरण देते हुए मैंने आगे कहा, "गाधीजी ने लिखा है, 'मैं अपने घर के सब दरवाजे और खिडकिया खुली रक्खूगा, जिससे बाहर की ताजी हवा अदर आती रहे । पर मैं अपने पैर इतने मजबूत बनाये रखूगा कि कोई भी हवा मुझे उडा न सके ।' यह था सच्चा हिन्दूपन ।"

बहस आगे चलती कि नौकर ने सूचना दी, मेज पर खाना लग गया है । विष्णुभाई और मैं शाम को खाना नही खाते, पर उनके साथ मेज पर जा बैठे और कुछ हल्की चीजें ले ली । खाने-पीने मे चर्चा का विषय बदल गया । हमारी यात्रा के उद्देश्य, किन-किन देशो मे हम हो आए हैं, आगे कहा-कहा जायगे, सैगाव में कबतक रहेंगे, आदि-आदि के बारे मे बातें होती रही ।

कोई घटे-भर में खाना समाप्त हुआ । फिर ड्राइग रूम मे आ बैठे

और गपशप करने लगे। थोडी देर मे मोहनजी का फोन आ गया। चडूमलजी को धन्यवाद देकर मोहनजी के घर आये। मोहनजी मिले। उन्हे इस बात का बडा मलाल था कि हमे उनके लिए इतनी प्रतीक्षा करनी पडी। "यहा से कोई साठ किलोमीटर पर एक बडी सुन्दर जगह है। वहा जाने का बहुत दिनो से विचार हो रहा था। आज छुट्टी थी, सो निकल पडे। अगर आपने नामपेन से केबिल करा दिया होता तो हम लोग या तो जाते नही, अगर गये भी होते तो जल्दी लौट आते।"

विष्णुभाई ने कहा, "इसमे अफसोस की कोई बात नही है। हम लोग चडूमलजी के यहा बडे आराम से रहे।

कुछ देर इधर-उधर की बातें करने के बाद अगले दिन का कार्यक्रम बनाया। कौन-कौनसी जगहें देखनी है, सबेरे क्या-क्या देखेगे, शाम को क्या-क्या, यह सब तय करने मे रात के बारह बज गए।

हमारे ठहरने की व्यवस्था उन्होने अपने फ्लैट के पीछे के कमरे मे कर दी थी। बिस्तर हमारे साथ थे। उन्हे पलग पर लगवाकर सो गए।

: ३९ :

नगर की झांकी

सबेरे आराम से उठे, तैयार हुए और जलपान करके घूमने निकल पड़े। सबसे पहले पान अमेरिकन एयरवेज़ के आफिस मे जाकर सिगापुर की टिकट का पक्का कराया। उसके बाद शहर का चक्कर लगाते हुए वहा के अजायबघर को देखने गए। नगर के विशाल उद्यान (जार्डिन बुटानिक) मे अजायबघर और चिडियाघर हैं। उस दिन (सोमवार) छुट्टी होने के कारण अजायबघर बद था। इसलिए हम लोग सीधे चिडिया-घर पहुचे। चिडियाघर काफी बडा था, लेकिन काली गिलहरी और चौमोख आदि दो-चार जानवरो को छोडकर कोई विशेष चीज उसमे दिखाई नही दी। वही शेर, चीते, भालू, तोते, मोर, हाथी आदि-आदि। पर वहा हरियाली खूब थी। एक छोटे-से सरोवर मे रक्तवर्णी कमल खिले थे।

चिडियाघर से लौट रहे थे कि अचानक देखते क्या हैं, बगीचे मे आम रास्ते मे थोडा हटकर एक वियतनामी लडकी स्टैण्ड के स[illegible] खडी कोई चित्र बना रही है। पास पहुचने पर मोहनजी ने बताया कि वह यहा की बहुत बडी कलाकार है। इसकी बनाई डिजाइनें यहा की डाक-टिकटो पर छपी हैं। इतना कहकर उन्होने अपनी जेब टटोली तो उसमे कुछ टिकटें निकल आई। उनमे से एक पर उसी कलाकार की बनाई डिजाइन थी। उसे लेकर हम उस तरुणी के पास गये। वह एक प्राकृतिक दृश्य बनाने में लीन थी। उसकी बगल मे तिपाई पर बहुत-से रग रखे थे। बडे शात भाव से वह सामने पटल पर अपनी तूलिका का उपयोग कर रही थी। मोहनजी ने उसे वह टिकट दिखाई और वियनतामी भाषा मे पूछा, "क्या इस टिकट की डिजाइन आपकी ही बनाई हुई है ?"

युवती का हाथ रुक गया। उसने सरसरी निगाह से टिकट की ओर देखा, मुस्कराई और सिर के इशारे से स्वीकृति व्यक्त करके अपने

काम मे लग गई ।

उस जगह से थोडा आगे दाईं ओर को अजायबघर का विशाल भवन था । सोचा, अधिकारी से मिलकर एक वार कोशिश करें कि वह उसे खुलवा दे । अत वहा जाकर मोहनजी ने चौकीदार से कहा कि हम भारत से आये है और उसी दिन शाम को चले जाने वाले हैं। अगर अधिकारी अदर आने की इजाजत दे दे तो बडा अच्छा हो । चौकीदार अदर गया । थोडी देर मे लौटकर उसने वताया कि अधिकारी ने हमे अदर आने की अनुमति दे दी है । अदर गये । सग्रहालय की इमारत जितनी शानदार थी, उतना संग्रह समृद्ध नही था । अन्य वस्तुओ के साथ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गरुड, लक्ष्मी, लोकेश्वर, गणेश आदि की दर्जनो मूर्तिया थी । बुद्ध, मैत्रेय, बोधिसत्व आदि की प्रतिमाए भी काफी थी । चीनी के भाति-भाति के वर्तन, पुराने हथियार, मिट्टी के पात्र, मोहरें आदि का सग्रह अच्छा था ।

सैंगाव दक्षिण वियतनाम की राजधानी है । पूरी नगरी मिकाग नदी के दोनो तटो पर बसी है । यह वही नदी है, जो हमे नामपेन मे मिली थी । नदी का पाट वहुत चौडा है । हम पहले ही बता चुके हैं कि यह नदी उधर के कई देशो की रीढ है । सैंगाव मे उसके किनारों पर कई जेटिया हैं और उसके बन्दरगाह से फ्रास, जापान आदि देशो को जहाज आते-जाते रहते हैं। नदी के किनारे-किनारे दूर तक पक्की सडक है । उसपर हम लोगो ने चक्कर लगाया । शहर का विस्तार देखा । सडकें बहुत चौड़ी हैं और उनके बीच की भूमि पर तथा इधर-उधर हरे-भरे पेड है । शहर की सफाई देखकर तबीयत खुश हो जाती है ।

घूमते-घामते गी दिन फूयो की बस्ती मे पहुचे और वहा का सुविख्यात वौद्ध मदिर देखा । अच्छा लगा, पर जो वात वर्मा के पगोडाओ मे और थाईलैण्ड के वाटो मे थी, वह यहा दिखाई नही दी । पूजा और वदना के साथ-साथ कई लोग अपना भाग्य आजमा रहे थे । इधर के लगभग सभी देशो मे लोग बडे भाग्यवादी हैं। सामुद्रिक शास्त्र पर वहा के वाजारो मे छोटी-वड़ी दर्जनो पुस्तकें दिखाई देती हैं और मदिरो मे वेदी के सामने घुटनो बैठे स्त्री-पुरुष-बच्चे हाथ मे वास के एक मोटे और लम्बे खोल मे

बास की तीलियो को हिलाते हुए दीख पडते हैं। हिलाते-हिलाते एक तीली बाहर निकल पडती है। उसपर जो नम्बर होता है, उसका फल एक परचे पर लिखा रहता है। यह परचा पास के काउण्टर से पैसे देकर ले लिया जाता है। इस फल से वहा का लोकमानस बहुत ही प्रभावित होता है। असल मे यह और कुछ नही, आमदनी का एक साधन है। इसी तरह इधर के देशो मे लाटरिया खूब चलती हैं। उनके बेचने का काम छटी हुई सुन्दर लडकियो से लिया जाता है। कहते हैं, आजाद होने के बाद कम्बोडिया की सरकार ने लाटरी की टिकटें बेचने का काम बद कर दिया था, लेकिन आमदनी मे भारी कमी हो जाने से उसे फिर चालू कर देना पडा। हजारो लोग टिकटे खरीदते है, पर इनाम एक-दो को ही मिलता है।

नगर पर चीनियो का प्रभाव साफ दिखाई देता है। उनकी एक पूरी बस्ती है, जो 'चोलोन' कहलाती है। वहा का बहुत-सा व्यापार चीनियो के हाथ मे है।

उस बस्ती को देखते हुए फूनियन डाकाओ पहुचे, जो वहाका सबसे बडा बाजार है। कहने की आवश्यकता नही कि उसकी शानदार दूकानो मे अमरीका का वैभव इठलाता है, उसकी सजावट और उसमे भरे हुए सामान को देखकर ऐसा जान पडता है, हम किसी खुशहाल नगर मे हैं। बडे-बडे व्यापारियो की दूकाने इसी बाजार मे हैं।

पास ही मे एक और बाजार है, जिसे मामूली हैसियत के लोगो का बाजार कहा जा सकता है। उसमे समानान्तर पक्तियो मे सब तरह के सामान की दूकाने है। खाने की चीजो से लेकर कपडे-खिलौने तक सब चीजें उसमे मिल जाती हैं। इस बाजार से हमने काठ की एक छोटी-सी सदूकची यादगार के रूप में खरीदी। ११० पियास्टर यानी सातेक रुपये मे मिली।

बाजार घूमने के बाद चेट्टियार के दो मदिर देखे। एक विष्णु का था, दूसरा शिव का। शिव का मदिर हाल ही मे बना था और उसके ऊपर दक्षिण भारत के मदिरो की शैली का शिखर और मूर्तिया थी। चेट्टियारो की सख्या वहापर काफी है। उनके एक रेस्ट्रा मे जाकर कॉफी पी तो ऐसा लगा, जैसे मद्रास में हो।

कुछ समय पहले तक सैगाव अलग-अलग बस्तियो मे बटा था और हरेक बस्ती का स्वतत्र अस्तित्व था। लेकिन आजादी के बाद वे सब बस्तिया मिलकर एक इकाई बन गई।

नगर की सुन्दर इमारतो मे वहा के असेम्बली भवन की भी गणना की जाती है। पर वह विशेष बडा तो नही है, उसकी बनावट जरूर आकर्षक है।

शहर का चक्कर लगाकर अपनी कौसलेट मे गये। वहा के प्रमुख अधिकारियो मे श्री सेठी मिले। उनसे कुछ देर तक इधर-उधर की बाते होती रही। हमारा तो एक ही चीज़ पर जोर था और वह यह कि इन सब देशो के साथ हमारे सास्कृतिक सबध अधिक गहरे होने चाहिए और अनुवाद द्वारा साहित्य का आदान-प्रदान होना चाहिए। विष्णुभाई ने और मैंने यही बात उनके सामने रखी, पर हम जानते थे कि हमारे दूतावासो की सीमाए हैं। उनके लिए राजनैतिक सबधो का विशेष महत्त्व है, बाकी चीज़े गौण है।

नेताजी की स्मृति से जुडी कोई भी चीज़ हमे उस नगर मे नही दिखाई दी। न यहा के भारतीयो मे नेताजी के प्रति किसी प्रकार का उत्साह दिखाई दिया। थाईलैण्ड मे एक भी भारतीय ऐसा नही मिला, जिसकी आखे नेताजी की चर्चा करते समय चमक न आई हो, पर यहा तो किसीने उनका नाम तक नही लिया। बात यह है कि यहा का भारतीय समाज कमाई के विचार से यहा आया है और सब अपने-अपने धधो मे लगे हैं। एक कारण शायद यह भी है कि बर्मा, थाईलैण्ड और सिगापुर नेताजी के जितने प्रमुख कार्य-क्षेत्र रहे, उतना यह देश नही रहा।

: ४० :

पुराना देश : नया इंसान

वियतनाम वैसे छोटा-सा देश है। उत्तर और दक्षिण दोनो भागो को मिलाकर उसका क्षेत्रफल मुश्किल से फ्रास का तीन-चौथाई होगा। आबादी ढाई करोड के लगभग। लेकिन इतना छोटा होने पर भी उसका इतिहास बडा पुराना और सघर्ष से भरा हुआ है।

सन १९५४ मे आजाद होने से पहले वह हिन्दचीन का एक भाग था और उसका भाग्य कम्बोडिया तथा लाओस के साथ बधा हुआ था। ये तीनो देश फ्रास के अधीन थे। लेकिन वहा के निवासियो ने आजादी के लिए निरतर सघर्ष किया और अन्त मे वे स्वतन्त्र होकर ही रहे।

वियतनाम के इतिहास को देखने से पता चलता है कि उसपर सदा पडोसी देशो की निगाह रही है और इसका कारण यह है कि वहा की भूमि बहुत उपजाऊ है। वहा अन्न इतना पैदा होता है कि देश का नाम ही अनम या अन्ननिक पड गया। वास्तव मे वह किसी जमाने मे तीन भागो मे बटा था। उत्तरी भाग टोगकिंग कहलाता था, मध्य भाग अनम और दक्षिणी भाग कोचीन चीन। सारा देश अनम के राजा के आधिपत्य मे था। परतु वियतनामियो को कभी चैन की सास लेने का मौका नही मिला। कभी चीन ने उस पर हमला करके वहा अपना राज्य स्थापित किया तो कभी चम्पा और कम्बोडिया ने उसे हडपने की कोशिश की। इस तरह वियतनाम का इतिहास सघर्षों की लम्बी कहानी है। चीन की वर्षों की गुलामी उसे भुगतनी पडी। चम्पा और कम्बोडिया के हमलो का सामना करना पडा। लेकिन सबसे दुखद बात तो यह है कि उसके बार-बार टुकडे किये गए। इसके बावजूद कई मरतबा देश एक और अखड बना। परन्तु आगे चलकर वह उत्तर और दक्षिण, दो भागो मे ऐसा बटा कि अबतक एक नही हो सका। उत्तर वियतनाम में सन १९४५ मे वियतनामी दल के नेता होची-मिन्ह की सरकार बनी। दक्षिण वियतनाम में, यो कहने को सन १९५०

मे राष्ट्रीय सरकार स्थापित हो गई, लेकिन उसे वास्तविक आजादी मिली सन १९५४ मे। विभिन्न देशो की अप्रैल, १९५४ मे जेनेवा में कान्फ्रेंस हुई, जिसके प्रस्तावो के अनुसार सत्तरहवी पैरलल पर उत्तरदक्षिण का बटवारा हो गया, अर्थात लाल नदी की घाटी मे उत्तर वियतनाम और मिकाग नदी के दोआबे मे दक्षिण वियतनाम। इस तरह एक देश के दो स्वतत्र खण्ड हो गए और उत्तर वियतनाम को जनवादी चीन आदि देशो की तथा दक्षिण वियतनाम को अमरीका आदि की मान्यता प्राप्त हुई। जिस देश ने तेरहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे कुबलाई खान के छक्के छुडा दिये थे और चीनियो तथा फ्रासीसियो की गुलामी के जुए को उतार फेंका था, उसका गृह-कलह से यो दो टुकडो मे कट जाना बडे दु:ख और दुर्भाग्य की बात है। इससे भी बडा दुर्भाग्य यह है कि दोनो भागो में आएदिन झगडे होते रहते है, जिसमे जान-माल का काफी नुकसान हो जाता है।

दक्षिण वियतनाम की आबादी कोई सवा करोड है। वहा चावल की अच्छी पैदावार होती है। विदेशी सहायता से देश का तेजी से विकास हो रहा है, लेकिन उसकी जड मजबूत तब होगी, जबकि वह अपने पैरो पर खडा होगा। विदेशी शासको ने उसके हौसले और जीवनीशक्ति को बहुत ही कुण्ठित कर दिया है। जरूरत इस बात की है कि वहा के निवासी अपने अदर नई ताकत पैदा करे और स्वतत्र देश के नागरिक के नाते जो मजबूती चाहिए, वह अपने अदर लावें। अभी तो हालत यह है कि देश के दोनो खण्ड कहने को स्वतत्र हैं, और अपने-अपने स्वतत्र सविधान के अनुसार शासन करते है, पर वास्तविकता यह है कि उत्तरी भाग पर रूस का हाथ है और दक्षिणी पर अमरीका का।

पर देश के स्वतत्र होने के बाद जो बडे काम हुए है, उनमे दो का उल्लेख करना आवश्यक है। एक तो यह कि जुआ खेलना बन्द कर दिया गया है। दूसरे, वेश्याओ के चकले खत्म हो गए हैं। गुलामी के दिनो मे ये दोनो ही बीमारिया भयकर रूप से फैली थी। गली-गली मे जुए के अड्डे और वेश्याओ के चकले बन गए थे।

उधर के दूसरे देशो की भाति वहाके लोग भी आराम से जीवन-यापन करनेवाले प्राणी हैं। खर्च के लायक पैसा मिल जाय, यही उनके लिए

वहुत है । जोड-जोडकर पैसा रखने की उनकी आदत नही है । अच्छा खाते हैं, अच्छा पहनते हैं । "यहा की नारी विनोद मे जगत-माता कही जाती है ।" एक मित्र ने कहा, "जानते हैं, क्यो ?" हमारे पूछने पर उन्होने बताया, "इनमे जात-पात का कोई वधन नही है । देश का भी बधन नही है । सो यहा की लडकिया पैसे की सुविधा देखकर किसी भी देश के व्यक्ति से विवाह कर लेती है । इस तरह दुनिया के वहुत-से देशो के लोगो से इनकी शादिया हुई हैं । इसीसे इन्हे यह नाम दिया गया है ।"

यहा की स्त्रियो की पोशाक बडी आकर्षक होती है । वहुत नीचा कुर्ता पहनती हैं, जिसे औयायी कहते है । यह कमर से सटा रहता है, पर दाए-वाए कमर पर से नीचे तक खुला रहता है । सलवार की जगह पाजामा-जैसी चीज़ पहनती है, जिसे वुग कहते हैं । दूकानो पर ज्यादा-तर लडकिया काम करती हैं । उनमे फुर्ती अवश्य है, पर फ्रेंच शासन-काल मे उनमे से वहुतो मे पेरिस की-सी नजाकत और विलासिता आ गई है । वे अपनी सजावट और सौदर्य के वारे मे वरावर सजग दिखाई देती हैं । दुबले-पतले वदन पर घुघराले बाल और मुह पर पाउडर तथा लिपस्टिक के विना हजार पीछे एक लडकी मुश्किल से मिलेगी ।

कम्बोडिया मे नियम है कि नौकरो मे दो-तिहाई कम्बोडियन होने चाहिए । ऐसा कोई भी प्रतिवध दक्षिण वियतनाम मे नही है । फिर भी लोग जहातक वनता है, चीनी और वियतनामी नौकर ही रखते हैं । मोहनजी के घर मे रसोई वनानेवाली और चौका वर्तन करनेवाली, दोनो वियतनामी थी । चौका-वर्तन करनेवाली लडकी के वाल इतने लबे थे कि एडी को छूते थे । काम करते समय वह वीच-बीच मे कोई किताव या अखवार लेकर पढने लगती थी ।

वहा का मिक्का पियास्टर कहलाता है । पन्द्रह पियास्टर हमारे एक रुपये के वरावर होते हैं । वहा के वेतनो को देखकर ऐसा लगता है कि मामूली-से-मामूली काम करनेवाला भी वहुत पाता है । मोहनजी ने बताया कि वह रसोई वनानेवाली वियतनामी महिला को प्रति मास एक हजार पियास्टर देते हैं, चौका-वर्तन करनेवाली को आठसौ, ड्राइवर को एक हजार । ये रकमे कितनी वडी लगती है, पर वास्तविकता यह है कि

हजार पियास्टर पाने वाले को हमारे यहा के सत्तर रुपये से भी कम मिलते है ।

इसमे शक नही कि सैगाव बडा सुन्दर नगर है । उसमे पुराने और नये का समन्वय है । देश पुराना है, पर वहा इन्सान नये रहन-सहन, नये-आचार-विचार, नई शान-शौकत का प्रेमी है । पुरुषो की वेशभूषा , स्त्रियो की पोशाक, बालो की सजावट, घरो की बनावट, और उनकी साज-सज्जा, सबपर पश्चिम का प्रभाव साफ दिखाई देता है ।

अविकसित अथवा अर्द्ध-विकसित देशो मे गरीबी का होना कोई आश्चर्य की बात नही है, लेकिन मानना होगा कि वह गरीबी वहा सतह पर दिखाई नही देती । लोग साफ-सुथरे कपड़े पहनते हैं, सफाई के साथ रहते है, खाने-पीने मे कजूसी नही करते । फिर भी कुल मिलाकर वहा का लोकजीवन आर्थिक दृष्टि से समृद्ध नही है ।

ईस समय तो जो हालत वहाँ हो रही है, वह बडी ही दुखद है ।

: ४१ :

सिंगापुर की ओर

दिन-भर वर्षा होती रही, पर कार की सुविधा होने के कारण घूमने-फिरने मे कोई कठिनाई नही हुई । कई जगह मोहनजी स्वय साथ रहे और कई जगह उनके सहयोगी । बडे-बडे भारतीय व्यापारियो से बाजार मे घूमते हुए भेंट हो गई । शाम को सिंगापुर के लिए रवाना होना था । लौटकर घर आये तो मोहनजी और उनकी पत्नी ने दो-एक दिन रुक जाने का बहुत आग्रह किया, पर हमारा आगे का कार्यक्रम निश्चित हो चुका था और उसकी सूचना हम सिंगापुर दे चुके थे। इसलिए अनिच्छापूर्वक विदा लेकर हवाई अड्डे की ओर रवाना हुए । हमारे मना करते-करते मोहनजी पहुचाने आए ।

शहर से निकलते ही मोहनजी ने एक पुल की ओर इशारा करके बताया कि यहा से सैंगाव की वस्ती समाप्त हो जाती है और यादिन प्रान्त की सीमा आरम्भ हो जाती है । यही जगह है, जहा हथियारबन्द लोग आकर अक्सर आने-जानेवाले मुसाफिरो को लूट लेते हैं या मार डालते हैं। मौजूदा सरकार के आदेश से यह रास्ता रात को ८ बजे से लेकर सवेरे तक बन्द रहता है । अगर किसीको जाना ही पडता है तो विशेष अनुमति लेनी होती है ।

पानी अब भी पड रहा था । सडक बहुत ही रपटीली हो रही थी । इसलिए चार मील का रास्ता पच्चीस मिनट मे तय करके ६।। बजे तन सन नत हवाई अड्डे पर पहुचे । कस्टम की खानापूरी ने आधा घटा ले लिया । सात बजे के लगभग पान अमेरिकन एयरवेज के वैभवशाली विमान से सिंगापुर की ओर रवाना हुए ।

रास्ते-भर पानी पडता रहा । जबतक दिन की रोशनी रही, बादलो का तमाशा दिखाई देता रहा । जब-तब बादल फट जाते थे तो उनके झरोखो से नीचे नदियो और हरियाली के दृश्य दिखाई दे जाते थे, पर

थोड़ी देर मे रात हो जाने पर बाहर सबकुछ अधेरे मे ढक गया। दो-एक को छोड़कर बाकी सब मुसाफिर ऊघने लगे। जहाज के ऊपर-नीचे होने से बराबर अनुभव होता रहा कि प्रकृति का प्रकोप शान्त नही हुआ है। ८। बजे खाना मिला। वही डवल रोटी, मक्खन, आलू आदि। खा-पीकर लोग फिर ऊघने लगे।

अबतक के सारे सफर मे यह सफर सबसे लम्बा रहा। बिना कही रुके २ घटे २५ मिनट तक उडते रहे। पर बादलो की वजह से यात्रा अधिक सुविधाजनक नही रही।

सिंगापुर पहुचते-पहुचते आसमान साफ हो गया। विमान ने उतरने से पहले शहर के ऊपर चक्कर लगाया। जगमगाती रोशनी वडी सुहावनी लगी। यह भी पता चला कि नगर काफी वडा है और दूर-दूर तक फैला है।

हवाई अड्डे पर उतरे उस समय सैंगाव के हिसाब से ६।। और सिंगापुर के हिसाब से ६ बजे थे।

जहाज से उतरने पर हमे सबसे पहले इमीग्रेशन आफिस मे ले जाया गया। सिंगापुर और मलाया के लिए वीसा की जरूरत नही होती। इमीग्रेशन विभाग ही आवश्यकतानुसार अनुमति दे देता है। हमारी परिचारिका ने विमान मे ही हमारे पासपोर्ट हमसे लेकर इकट्ठे कर लिये थे। वे उसने इमीग्रेशन आफिस मे पहुचा दिए। एक-एक यात्री का नाम पुकारा जाने लगा, जैसे अध्यापक छात्रो की हाजिरी लेते समय पुकारता है। हमे यह देखकर वड़ा बुरा लगा कि पहले गोरी चमड़ी के मुसाफिर बुलाये गए, बाद मे भारतीयो की बारी आई। मेरा और विष्णुभाई का नाम सबसे आखिर मे पुकारा गया। यह और भी अखरा। जब मैं अधिकारी के सामने पहुचा तो मैंने उसे बड़ी गभीर मुद्रा मे पाया। उसने मेरी ओर बहुत ही विचित्र ढग से देखा, फिर जैसे कुछ सोचते हुए अगरेजी मे पूछा, "आप रूस हो आए है ?"

मैंने कहा, "जीहा।"

"आप वहा कोई धधा करने गये थे ?"

"जी नही, मैं व्यापारी नही हूं। मैं तो लिखने का काम करता हूं।"

"तो आप वहा लिखने के लिए गए थे ?"

"जी नही, घूमने गया था। लिखने का भी यह है कि मन होता है तो लिखता हू, नही होता तो नही लिखता।"

"तो आप लेखक और पत्रकार हैं ?"

लम्बे सफर के बाद इन बेतुके सवालो को सुनकर मुझे कुछ झुझलाहट हो आई। मैंने कहा, "आपने मेरे पासपोर्ट मे व्यवसाय का खाना नही देखा ?"

इतने मे विष्णुभाई ने, जो मेरे पास ही खडे थे, कहा, "यह एक मासिक पत्र के सम्पादक हैं।"

"पत्र का क्या नाम है ?"

मैंने कहा, "जीवन साहित्य।"

उसने एक कागज पर यह नाम लिख लिया।

इस सारी चर्चा मे अधिकारी की आखें मुझपर गडी रही और उसकी उगलिया मेरे पासपोर्ट के पन्ने पलटती रही। मैं नही समझ पाया कि यह सब क्यो पूछा जा रहा है, पर बाद मे पता चला कि वह यह देखना चाहता था कि कही मैं कम्यूनिस्ट तो नही हू। यह भी मालूम हुआ कि मेरे सन १९५७ मे रूस हो आने के समाचार से उन लोगो ने हमारे दूतावास से मेरे बारे मे काफी पूछताछ की थी।

बहुत देर तक मगजपच्ची करने के बाद उसने मेरे पासपोर्ट के एक कोरे पन्ने पर ठप्पा लगा दिया। बोला, "सिगापुर मे कबतक रहेंगे ?"

मैंने कहा, "कोई एक सप्ताह।"

"फिर कहा जायगे ?"

"मलाया होकर रगून।"

उसने दोहराया, "रगून।"

"जीहा।"

उसने ठप्पे मे खाली जगह पर एक सप्ताह लिख दिया। फिर बोला, "यहा से सीधे रगून जायगे ?"

हम लोगो का धैर्य समाप्त हो चला था। मैंने कहा, "आपने सुना नही। मैंने कहा था, मलाया होकर रगून! यहा से क्वालालामपुर, फिर

पिनाग, तब रगून ।"

बोला, "अच्छा-अच्छा, सिंगापुर और मलाया एक ही बात है ।"

विष्णुभाई ने कहा, "तो एक सप्ताह की जगह दो सप्ताह कर दो ।"

उसने काटकर एक की जगह दो कर दिया । हमे उस समय पता चला कि सिंगापुर और मलाया की अनुमति एक ही जगह से मिलती है ।

विष्णुभाई को उसने अधिक हैरान नही किया । यह जानकर कि हम दोनो साथ है, उसने उनके पासपोर्ट पर दो सप्ताह की अनुमति दे दी ।

इस चक्कर से छूटकर हमने चैन की सास ली । कस्टम मे आये । वहा के अधिकारी ने एक छपी सूची सामने करके कहा, "इसमे की कोई चीज तो आपके पास नही है ?" हमने सूची देखी तो वह दवाइयो, हथियारो आदि वर्जित चीजो की थी । हमारे इन्कार करने पर वह सामान की ओर बढा । सूटकेस खुलवाकर देखा । उसमे दो छोटे-छोटे पैकिटो को टटोलकर पूछा, "इनमे क्या है ?"

मैंने कहा, "एक मे फिल्मे हैं, दूसरे मे कपडे धोने का साबुन ।"

कपडे धोने के साबुन की बात पर वह मुस्करा उठा और बाकी का सामान उसने योही पास कर दिया ।

जिस समय हम कस्टम मे थे, एक भारतीय सज्जन आये और हम लोगो को नमस्कार करके बोले, "क्या आप ही लोग विष्णु प्रभाकरजी और यशपालजी है ?"

चलो, हमारी खैर-खबर लेने वाला मिला, इससे हमे कुछ सतोष हुआ । उन सज्जन ने कहा, "आपके लिए बाहर कई मित्र राह देख रहे हैं ।"

हमारा सामान तबतक देखा जा चुका था । उन भाई के साथ हम बाहर आये । कई मित्र हमे लेने आए थे । उनमे नेताजी के साथी प० शिवप्रसाद शर्मा, आर्यसमाज के प्रधान-मत्री श्री श्रीधर पाठक आदि अनेक महानुभाव थे । सैगाव मे जिन लोगो से परिचय हुआ था, उनमे से भी एक-दो व्यापारी साथ आये थे । जिस समय हमारा परिचय हो रहा था, वे हमारे पास आये और बोले, "हमारी गाडिया आई हैं । आप लोगो को शहर मे कही जाना हो तो हम छोड देगे ।"

हमने उन्हे धन्यवाद दिया और कह दिया कि हमारे मित्र हमें लेने आ गये हैं ।

सामान के बाहर आने पर मित्रो के साथ शहर की ओर रवाना हुए । शहर अधिक दूर नही था । कोई चार मील था, पर हम चक्कर लगाकर शहर की चहल-पहल और समुद्र के किनारे की रौनक देखते हुए, आलमीडा स्ट्रीट पहुचे, जहा हमारे ठहरने की व्यवस्था की गई थी ।

रात को १२।। बजे तक सब जने बैठे बाते करते रहे । उन्होने सिंगापुर मे रहनेवाले भारतीय समाज के बारे मे बहुत-सी बातें बताई । उन्हें इस बात की बडी शिकायत थी कि भारत से समय-समय पर शिष्ट-मण्डल आदि के रूप मे जो लोग आते हैं, उनका रवैया बडा असतोषजनक होता है । पिछले दिनो सागर-दर्शन के लिए चारसौ भारतीयो का एक प्रतिनिधि मण्डल वहा गया था । इन लोगो ने सागर-दर्शन जो किया सो किया, पर उससे अधिक शॉप-दर्शन किया । बाजार मे सामान खरीदने में इतने घिरे रहे कि उनके लिए यहा जो कार्यक्रम रखे गए थे, उनमे दस-पाच आदमियो को छोडकर कोई भी हिस्सा नही ले सका ।

उन लोगो ने बडे दु ख के साथ कहा, "इससे भारत की प्रतिष्ठा को बडा धक्का लगा । यहा की सरकार ने उस प्रतिनिधि-मण्डल की बड़ी सहायता की, यहातक कि स्वय प्रधानमत्री प्रतिनिधियो का स्वागत करने के लिए बदरगाह पर मौजूद थे, पर प्रतिनिधियो ने, जिनमे विद्यार्थियो के नाम पर व्यापारी लोग अधिक थे, हद कर दी ।"

रात अधिक हो गई थी । अगले दिन का कार्यक्रम बनाकर मित्रो ने विदा ली । हम भी हारे-थके थे । सो गए ।

: ४२ :

ऐतिहासिक महत्त्व की नगरी

सिंगापुर मे आठ दिन रहे। इन आठ दिनो मे खूब घूमे। सिंगापुर छोटा-सा द्वीप है। उसकी लम्बाई १७ मील और चौडाई १४ मील है। आसपास के अन्य छोटे टापुओ को मिलाकर उसका क्षेत्रफल कुल २२५ वर्गमील के लगभग है। आबादी १५ लाख है। लेकिन इसमे कोई सदेह नही कि वह बडा ही शानदार देश है। ससार के प्रमुख उद्योग-केन्द्रो मे उसकी गणना होती है और दुनिया के सबसे बडे बन्दरगाहो मे उसका पाचवा स्थान है। दक्षिण-पूर्वी एशिया की उसे औद्योगिक राजधानी कहे तो अत्युक्ति न होगी। व्यापार का बडा केन्द्र होने के कारण वहा इतनी चहल-पहल है, जितनी उधर के किसी भी दूसरे नगर मे दिखाई नही देती। सब देशो के लोग वहा मिलते है और खुला बन्दरगाह होने के कारण दिन-भर बाजारो मे खरीद-फरोख्त करनेवालो की भीड रहती है।

सिंगापुर का नाम सस्कृत के दो शब्दो से बना है। 'सिंह' और 'पुर'। उसका मलायी नाम 'तुमासिक' था, जिसका अर्थ होता है 'समुद्र-नगरी'। तेरहवी से लेकर चौदहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक वह मलाया की राजधानी रहा, लेकिन राजवशो के झगडे चलते रहे और उसका भाग्य कभी इधर तो कभी उधर होता रहा। ६ फरवरी १८१९ मे ईस्ट इडिया कम्पनी के सर स्टैम्फोर्ड रैफिल्स नामक अधिकारी ने सुल-तान हुसैन मोहम्मद शाह तथा तेमेनगोंग अब्दुल रहमान से समझौता करके सिंगापुर नदी के तट के निकट कंपनी के लिए एक व्यापारिक केन्द्र स्थापित किया। सन १८२४ मे एक नई सधि हुई, जिसके अनुसार यह पूरा द्वीप-समूह जोहोर के जलडमरूमध्य को छोडकर, ईस्ट इडिया कपनी के हाथ मे आ गया। सन १८३० मे उसपर बंगाल प्रेसीडेन्सी का आधि-पत्य रहा, पर १८५१ मे वह सीधा भारत के गवर्नर जनरल के नियत्रण मे आ गया। सन १८६७ मे ब्रिटिश सरकार ने उसपर स्वयं कब्जा कर लिया।

वीसवी शताब्दी के पूर्वाद्ध मे अगरेजो ने सिगापुर को वडा जहाजी अड्डा वना दिया । इसकी भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि यहा से हिन्द महासागर तथा प्रशान्त महासागर के वीच यातायात पर नियत्रण रखा जा सकता है। इस जगह को इतना महत्त्व देने का एक कारण और भी था। वहुत से लोगो का अनुमान था कि आगामी महायुद्ध का मुख्य केन्द्र प्रशान्त महासागर वनेगा ।

इस प्रकार सिंगापुर, जो शुरू मे सुमात्रा मे जाकर वसनेवाले लोगो की एक वस्ती मात्र था, विकसित होकर एक विशाल नगर वन गया ।

आगे उसके इतिहास ने एक वार फिर पलटा खाया और १५ फरवरी १९४२ से लेकर ५ सितम्वर १९४५ तक वह जापान के अधिकार मे रहा । अनन्तर माउण्टवेटन की अधीनता मे दक्षिण-पूर्वी एशिया कमान के दस्तो ने उसपर कब्जा कर लिया। सात महीने के फौजी शासन के बाद १ अप्रैल १९५६ को उसे एक स्वतत्र उपनिवेश का दर्जा मिला । २७ नवम्वर, १९५८ को उसे वैधानिक शासन की अनुमति मिली। नये सविधान के अनुसार चुनाव हुए और ५ जून, १९५८ को लीकुआन यी के प्रधान मत्रित्व मे वहा लोकतत्री सरकार स्थापित हुई । अव विदेशी मामले तथा विदेशी परिरक्षा को छोडकर, जो कि ब्रिटिश सरकार के हाथ मे है, शेष सव वातो मे वह एक स्वतत्र देश है ।

सिंगापुर को 'प्रशात महासागर का द्वार' कहा जाता है। खुला वन्दरगाह होने के कारण यूरोप, अमरीका, एशिया तथा विश्व के दूसरे हिस्सो से सव तरह का माल वहा के वाजार मे आता है और वडे ही सस्ते दामो मे मिलता है ।

लेकिन सिंगापुर का सवसे प्रमुख आकर्षण यह है कि वहा पर एशिया की तीन प्रमुख सस्कृतियो—मलायी, भारतीय तथा चीनी—का वडा ही सुन्दर समन्वय हुआ है। वहापर चीनियो की प्रमुखता है। उनकी आवादी लगभग ८० प्रतिशत है। वाकी मे मलायी, भारतीय आदि है। पश्चिमी सस्कृति की धारा भी उस सगम मे आ मिली है और इस तरह वहा का सास्कृतिक रूप वहुत ही व्यापक हो गया है ।

सिगापुर के लोगो की राष्ट्र-भाषा मलायी है, लेकिन मलायी के अलावा

वहापर अगरेजी, चीनी, तमिल आदि भाषाओ का भी प्रचलन है ।

सारा शहर सिंगापुर नदी के किनारे बसा है । उसके पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण मे सागर है । जल-यातायात की सुविधा होने के कारण वहा हर समय विभिन्न देशो के जहाज आते-जाते रहते हैं और सामान से लदी छोटी-बडी नावे सागर तथा नदी मे घूमती हुई दिखाई देती हैं ।

प्राकृतिक दृष्टि से सिंगापुर बडा मोहक है । सुबह - शाम समुद्र के किनारे पर सैलानियो की भीड इकट्ठी हो जाती है । उस भीड मे बहुत से देशो के निवासी होते है । शाम के समय तो सागर के ये तटवर्ती स्थान बहुत आकर्षक बन जाते हैं । बिजली की जगमगाती रोशनी मे उनका सौंदर्य और भी बढ जाता है ।

स्वतत्र देश और व्यापार का इतना बडा केन्द्र होते हुए भी सिंगापुर कठिनाइयो से मुक्त नही है । वह इतना छोटा है कि शासन के भारी खर्चे को अकेला नही उठा सकता । दूसरे, अपनी ताकत के बल-बूते पर वह इतना शक्ति-सपन्न भी नही हो सकता कि अतर्राष्ट्रीय राजनीति के रगमच पर उसकी आवाज सुनाई दे सके ।

इसीलिए ब्रूनी, सारवाक, उत्तरी बोर्नियो, मलाया और सिंगापुर को मिलाकर मलयेशिया सघ बनाने का प्रयास कुछ दिनो से चल रहा है । इन सब देशो की अपनी-अपनी दिक्कतें है । सबका सघ बन जाने से वे सारी दिक्कतें दूर हो जायगी, यह तो नही कहा जा सकता, फिर भी कुछ सुविधाए हो जाने की आशा है ।

पिछले दिनो ऐसा सघ बन भी गया था, लेकिन सिंगापुर उसमे से अलग होगया ।

: ४३ :

नगर के आकर्षण

थके होने के कारण रात को अच्छी नीद आई। सबेरे जरा देर से उठे। दो भारतीय सज्जन मिलने आ गये। वे काफी देर तक भारतीयो की स्थिति पर चर्चा करते रहे। उनके कहने का सार यह था कि वहा पर रहनेवाले भारतीयो मे प्रातीयता ही नही, जिले का भी भेदभाव है। सब अपनी-अपनी ढपली वजाते हैं और अपना-अपना राग अलापते हैं। इसका नतीजा जो होना था, वही हुआ है। उस देश मे उनकी न कोई ताकत है, न इज्जत है।

दूसरी बात उन्होने वताई कि यहा पर जान-माल का वडा खतरा है। दिन-दहाडे लोगो को लूट लिया जाता है। धनी लोगो को बदमाश पकडकर ले जाते हैं और भारी रकमे लेकर छोड देते हैं। यदि घरवाले रुपये नही देते तो उस धनिक को मार डालते हैं। उन्होने ऐसे कई किस्से सुनाये।

इसी बीच हिन्दी के दो प्रेमी आ गए। एक थे जोगेन्द्रराय, जो वहा सरकारी विभाग मे काम करते थे और जो हमें पिछली सध्या को कस्टम मे मिले थे। दूसरे थे छेदीराय, जो वहा हिन्दी के अध्यापक थे। उनसे बात करके जोगेन्द्रराय के साथ रैफिल्स म्यूजियम देखने निकले।

जहा हम ठहरे थे, वहा से म्यूजियम तो थोडा दूर था, पर कई प्रमुख स्थान पास ही थे। रैफिल्स प्लेस और बैंक आव चाइना की विशाल इमारत को देखते हुए सिगापुर नदी के केवेनाघ पुल पर पहुचे। वहा की दृश्यावली बडी मनोरम है। सामने विक्टोरिया मेमोरियल हॉल, नाट्य-शाला, एसैम्वली हाउस, सुप्रीम कोर्ट, सेट एण्ड्र ज कैथीड्रल और सिटी हॉल के आकर्षक भवन और सागर के तट पर पार्क मे खडी सर स्टैम्फोर्ड रैफिल्स की प्रतिमा सैलानियो की निगाह को सहज ही अपनी ओर खीच लेती है। यहीपर एक लम्बा-चौडा मैदान है, जिसमें सार्व-

जनिक सभाए और सरकारी समारोह हुआ करते हैं। ३ जून को गणतंत्र दिवस की पहली जयती मनाई जाने वाली थी। उसके लिए वहा जोरो की तैयारिया हो रही थी। सरकारी तथा गैरसरकारी इमारतो को झडियो, राष्ट्र-ध्वजो और विजली की रंग-विरंगी वत्तियो से सजाया जा रहा था।

उस सवको देखते हुए सास्कृतिक सचिवालय गये, जहा से सिंगापुर तथा उसकी प्रवृत्तियो के विपय मे कुछ साहित्य मिल जाने की आशा थी, लेकिन नाम वडे और दर्शन थोडे की कहावत चरितार्थ हुई। सूचनाधिकारी ने दो-एक छोटी-छोटी पुस्तके हमे पकडा दी, जो सामान्य पर्यटको की सुविधा के लिए तैयार कराई गई थी।

सचिवालय से टैक्सी लेकर रैफिल्स म्यूजियम पहुचे। उसका भवन देखने मे वहुत आलीशान नही लगता था, लेकिन अदर उसमे जगह काफी थी। नीचे के एक कमरे मे जापानी चित्रो की प्रदर्शनी हो रही थी। इस कमरे मे अक्सर विभिन्न देशो की प्रदर्शनिया होती रहती हैं। इस प्रदर्शनी से पहले भारतीय चित्रो की प्रदर्शनी हुई थी। जापानी चित्रो में निक्को झील, चैरी वसत, मैपिल वृक्ष, माताई पर्वत आदि के चित्र अच्छे लगे। ऐसा जान पड़ा, मानो जापानी कलाकार प्रकृति के चित्रण मे विशेष पटु हैं।

नीचे के दूसरे कक्ष मे चीनी के वर्तन देखते हुए दूसरी मजिल मे गये। वहा के कमरो में विभिन्न प्रकार की चिड़िया, कछुए, सांप, मछली, मगर, गिलहरिया, चीते, वनैले सूअर, हाथी, गेंडा, आदि देखे, पर जिन तीन चीजो की याद आज भी ताजी है, वे हैं—४२ फुट लम्बी व्हेल मछली का कंकाल, २३ फुट ६ इच का अजगर और गोद मे वच्चे को लिये वैठी वनमानुस की मादा। शीशे के १६ घेरो में नाना प्रकार की तितलिया थी। उतने ही में कीड़े-मकोडे और समुद्री चीजें।

एक अन्य कक्ष मे वाद्य, मोहरे, जहाज, मिट्टी के वर्तन, प्राचीन अस्त्र, चादी के वर्तन, पोशाक, सिक्के आदि थे, दूसरे मे सिंगापुर के विकास के चित्र थे, कुछ पिनाग के। तीसरे मे दस्तकारी की चीजे जैसे टोकरिया, टोप, चटाइया इत्यादि। एक अन्य कक्ष मे आदिवासी दिखाये गए थे।

इन सवको देखते हुए नीचे आये। वहा के कक्षो मे कठपुतली, चेहरे,

मूर्तिया आदि के साथ-साथ उन घरो के नमूने दिखाये गए थे, जिन्हें पत्थरो से जगलो मे बनाकर किसी जमाने मे लोग रहा करते थे।

विविधता तथा वस्तुओ के चुनाव की दृष्टि से सग्रहालय बहुत ही सपन्न जान पडा।

दोपहर बाद हमारे मेजबान शिव प्रसाद शर्मा स्वय घुमाने ले गए। वह सिगापुर की चप्पा-चप्पा भूमि से परिचित हैं। सबसे पहले दक्षिण ब्रिज रोड़ पर मरियम्मा के मदिर में ले गए, जो दक्षिण भारतीयो का मदिर है। उसकी विशेषता यह थी कि उसमे काली की मूर्ति थी। कुछ और भी मूर्तिया थी, लेकिन नई मूर्तिया और चित्र बनाकर उस मदिर को बडा अजीब-सा रूप दे दिया गया है। मदिर वैसे बहुत बडा था।

फिर चीना बस्ती, अस्पताल, आउट्रम जेल, मैडीकल कालेज आदि का चक्कर लगाते हुए क्वीन-बस्ती पहुचे। कहते है, रानी को विवाह के समय बहुत-से रुपये मिल गए थे। उन रुपयो से उसने इस सुन्दर बस्ती का निर्माण करा दिया।

क्वीन बस्ती के बाद शराबखाने (टाइगर बीयर फैक्टरी), मिलटरी अस्पताल, छावनी, स्विमिग पूल आदि को देखते हुए माउण्ट फेबर पहुचे। नगर की इस सबसे ऊची चोटी पर जहाजो का सिगनल स्टेशन है। वहा से नगर और सागर के दृश्य बहुत ही बढिया लगते हैं। लोगो की वहा सुबह-शाम भीड लगी रहती है।

लौटते हुए सिगापुर बदरगाह, पालीटैकनीक कालेज देखते हुए मर्डीका ब्रिज गये। यह पुल दो मील लम्बा है और अपनी विशालता के कारण ही नही, बल्कि इजीनियरिंग कौशल के लिए दूर-दूर तक विख्यात है।

वहा से नेशनल पार्क, स्पोर्टस क्लब (जो पहले कलग नामक हवाई अड्डा था), देखते हुए मेयर रोड की उस कोठी पर पहुचे, जिसमे नेताजी सुभाषचन्द्र बोस रहा करते थे। अब वह किसी करोडपति की सम्पत्ति है।

आगे चीनी स्विमिग पूल, समुद्र का बेडॉक बीच, चागी जेल होते हुए चागी बीच गये, जो 'ईस्ट पाइट' कहलाता है। बडी सुन्दर जगह है। घूमने-वालो की सुविधा के लिए यहा एक रेस्ट्रा हैं। उसमे हम लोगों ने कॉफी पी। थोडी देर तक सागर-तट पर घूमे, फिर लौटते में 'आजाद हिन्द फौज' के कैंप

का मैदान और उनका आफीसर क्लब (जो अव यगवर्ग मेमोरियल अस्पताल है), इडियन इडिपेंडेण्ट लीग आफिस, झासी की रानी रेजीमेट शिवरो का मैदान आदि देखा । इतिहास की बहुत-सी पुरानी घटनाए दिमाग मे घूम गई । कितना कशमकश का जमाना होगा वह, जबकि वहा नेताजी की प्रवृत्तिया जोरो से चलती होगी ! पर अब सिवा पुरानी यादगार के वहा क्या बचा है !

अगले दिन नेपाल बहादुरसिह, जो आई० एन० ए० मे थे, हमारे साथ गये । वह हमे सबसे पहले पश्चिमी तट पर स्थित 'हा पार विला' ले गए, जिसे 'टाइगर बाम गार्डन' भी कहते है । इस विला का निर्माण ओ बून हा नामक चीनी उद्योगपति ने कराया था । चीनी सस्कृति, आख्यान, देवी-देवता आदि की वह एक अजीबोगरीब दुनिया है । जानवरो की विशाल मूर्तिया इतनी सजीव है कि देखकर लगता है, वे जीवित है । कही जुए की हानि दिखाई गई है तो कही वेश्यागामिता की, कही मत्स्य-कन्याए दिखाई गई है, तो कही दूसरे दृश्य । वहीपर भगवान बुद्ध की विशाल मूर्त्ति है । इसके बनाने मे काफी श्रम और धन व्यय हुआ है । उसे देखने के लिए बहुत से लोग आते है, पर कुल मिलाकर मुझे तो कोई खास बात उसमे लगी नही ।

वहा से चलकर नसीम रोड पर हा पार मैन्शन देखा, जो मरकत की मूल्यवान वस्तुओ का विलक्षण सग्रह है । उसमे हान, सिन, टाग, सुग, येन, मिंग, चिंग वशो की लगभग डेढ हजार वर्ष पुरानी चीजे है । इसका निर्माण भी हा पार विलावाले सज्जन ने ही किया था । हरे गुलाबी, सुरमई, काले, सीपिया आदि दसियो रगो के मरकत की ऐसी-ऐसी सुन्दर प्रतिमाए, फूलदान, पशु-पक्षियो की मूर्तिया तथा अन्य वस्तुए है कि देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पडता है । एक फूलदान के तो किसी अमरीकी ने दस हजार डालर लगा दिए थे, पर कला के अनन्य प्रेमी स्वामी ने उसे बेचा नही । बाहर के कक्ष मे मेडोनो की सगमरमर की प्रतिमा बडी भावपूर्ण और सजीव है ।

इस सग्रहालय के दूरदर्शी मालिक की पाच साल पहले मृत्यु हो गई और उसका लड़का, आ बन पार भी विमान की दुर्घटना मे चल बसा । अब उसकी देखभाल आ छिन छै नामक सज्जन करते हैं ।

सिगापुर मे दो विश्वविद्यालय हैं। सबसे पहले हम मलाया विश्व-विद्यालय देखने गए, जिसमें लगभग १२ सौ छात्र-छात्राए हैं। इसकी स्थापना सन १६४६ मे हुई थी। विश्वविद्यालय का भवन विशेष आकर्षक नही लगा, पर उसका पुस्तकालय बडा समृद्ध था। पुरानी तथा दुर्लभ पुस्तको के माइक्रोफिलिमग की व्यवस्था यहा पहली बार देखी। यहा बी०ए० का तीन वर्ष का और एम०ए० का दो वर्ष का पाठ्यक्रम है। इस विश्वविद्यालय मे भारतीय प्राध्यापक भी है, जिनमे डा० दामोदर प्रसाद सिहल तथा उनकी पत्नी डा० देवहुति से दो बार मिलना हुआ।

दूसरा विश्वविद्यालय है नान्याग विश्वविद्यालय, जो चीनियो का है और नगर से १२–१३ मील दूर है। वह सन १६५० मे स्थापित हुआ था। उसका भवन बडा शानदार है और काफी क्षेत्रफल मे फैला हुआ है। उसमे मुख्य रूप से चीनी छात्र-छात्राए शिक्षा पाते हैं। विद्यार्थियो की सख्या दो हजार के लगभग है। पुस्तकालय बहुत अच्छा है। अपने खाली समय का उपयोग छात्र-छात्राए वाचनालय मे आकर करते है। उपकुलपति तथा तीनो फैकल्टियो—आर्ट, साइस और कामर्स—के अध्यक्षो के बगले बहुत ऊचाई पर बने हुए हैं। इस विश्वविद्यालय की अवस्थिति और इमारत हमे बहुत पसन्द आई।

२६ मई को शर्माजी हमे उस स्थान पर ले गए, जहा 'आजाद हिन्द फौज' की सरकार का सचिवालय था। यही पर वह ऐतिहासिक स्थल था, जिसमे आजाद हिंद की सरकार के मत्रियो ने तथा नेताजी ने शपथ ग्रहण की थी और हजारो भारतीयो ने वहा उपस्थित होकर गीली आखो से नेताजी की भावना से विह्वल कठ की वाणी सुनी थी। पर अब ? अब उस कोठी पर 'टू लेट' (किराये के लिए खाली) का बोर्ड लगा था।

उस रोमाचकारी स्थान को दिखाकर शर्माजी हमे शहर से कई मील दूर उन जलाशयो पर ले गए, जिनसे सारे नगर को पानी मिलता है। रास्ते मे शर्माजी नेताजी के बारे मे बहुत-सी बाते सुनाते रहे। उनका नेताजी और आजाद हिन्द फौज के साथ बहुत निकट सबध रहा था। उनका कहना था कि नेताजी की मृत्यु के साथ जो कहानी जुड़ी है, वह गलत है। विमान की दुर्घटना अवश्य हुई, पर नेताजी उसमें नही थे।

किंग जार्ज पचम वर्ल्ड पार्क मे वान क्लीफ मत्स्यालय एशिया का सबसे समृद्ध-सग्रहालय माना जाता है। उसमे मछलियो की इतनी किस्मे है कि देखकर आश्चर्य होता है। ससार के सभी देशो की मछलियो के नमूने वहा मौजूद हैं। सग्रहालय बहुत बडा नही है, पर उसमे विविधता खूब है।

वहा का रॉयल आइलैण्ड क्लब भी देखने-योग्य है। वह काफी ऊंचाई पर बना है और वहा के धनिको तथा अधिकारी वर्ग के सायकालीन मनोरजन का विशिष्ट स्थान है। गॉल्फ कोर्स है, स्विमिग पूल है, रेस्ट्रा है; शाम के समय वहा अच्छी भीड इकट्ठी हो जाती है।

सिगापुर के उत्तर मे १९ मील पर बडा सुन्दर स्थान है जोहोर बाहरू। मलाया गणतत्र के जोहोर राज्य का वह प्रमुख नगर है। शर्माजी हमें ऐसे मनोरम स्थल की यात्रा न कराते, यह कैसे सभव था। सारा मार्ग बड़ा अच्छा है। सडक बहुत ही साफ-सुथरी। शर्माजी के पास आजाद हिन्द फौज की बातो का अनंत भण्डार है। मौका मिलते ही सुनाने लगते है। सुनने मे हमें भी बड़ा आनंद आता है। चर्चा आरभ हुई कि पता भी नही लगा, कब रास्ता पार हो गया। जहा सिगापुर की उत्तरी सीमा समाप्त होती है, वहा, जल-धारा को पार करने के लिए पुल है। शर्माजी ने गाड़ी धीमी की। बोले, इस पुल के बाद जोहोर राज्य है। पुल काफी बडा है। उस पार पहुंचने पर फौजी सतरी ने गाडी रोक दी। अधिकारी ने आकर पूछा कि हमारे पास कोई आपत्तिजनक चीज तो नही है। हमारे इन्कार करने पर उसने जाने की अनुमति दे दी।

सबसे पहले राज-भवन गये, जिसमे अब जोहोर की सरकार का सचिवालय है। इसी भवन मे वहा के राजा का राज-तिलक होता है। यही वह ऐतिहासिक इमारत है, जिस पर से जापानियो ने सिगापुर शहर पर तोपे दागी थी, लेकिन उसका कोई परिणाम न निकला तो उन्होने चालाकी से नौसेना के अड्डे (नेवल बेस) पर कब्जा कर लिया। फिर क्या था! सिगापुर हाथ मे आ गया। सिगापुर की ओर से दागे गए तोप के गोलो के निशान अबतक राजमहल की दीवारो पर बने है। इमारत बडी शानदार है। उसके ऊपर से सिगापुर के दृश्य बड़े अच्छे दिखाई देते हैं।

राजभवन से चलकर पुराने राजमहल और अस्पताल को देखते हुए

नगर का चक्कर लगाया। वहापर अधिकाश आवादी मलाइयो की है। उनकी पोशाक—नीचा कुरता और तहमद—देखते ही वनती है। स्त्रियो मे अधिकाश के वाल कटे और वने हुए देखने मे आते हैं।

सयोग से उस दिन वहा कोई समारोह हो रहा था, जिसमे शहर के सभी वर्गो के स्त्री-पुरुष उपस्थित थे। नगर और वहा के निवासी वास्तव मे वडे रोमाचकारी लगे।

लौटते में 'कराजी वार मेमोरियल' देखा, जहा २४ हजार सैनिको की समाधिया है। ये सैनिक द्वितीय महायुद्ध मे अपने देश की रक्षा करते हुए मारे गए थे। उनके नामो और पदो के पट्ट लगे हुए हैं।

शहर में और उसके आसपास इतने दर्शनीय स्थान हैं कि सवका उल्लेख करना सभव नही है। सिगापुर छोटा-सा द्वीप है, पर प्रकृति का वरदान उसे भरपूर मिला है। व्यापार का वडा केन्द्र होने के कारण धनपतियों ने भी उसे सुन्दर वनाने का प्रयत्न किया है। उसकी सडकें, उसके मकान, उसके पार्क, उसके मैदान, सागर के किनारे के उसके रास्ते, वहा की हरियाली आदि-आदि उस नगर को सैलानियो के लिए वडा मोहक बना देते हैं।

भारतीय और भारतीय संस्थाएं

सिगापुर मे भारतीय बहुत बडी सख्या मे है। इसलिए उनकी सस्थाए और देवालय आदि होना स्वाभाविक है। हमे कई सस्थाए देखने का अवसर मिला। कई-एक ने सभाए की। 'गाधी-मेमोरियल हॉल' का शिलान्यास १८ जून १९५० को प० जवाहरलाल नेहरू ने किया था और उसके भवन का उद्‌घाटन इग्लैण्ड के सिंगापुर-स्थित दूतावास के कमिश्नर-जनरल मालकम मैकडानेल्ड के हाथो २५ अप्रैल १९५३ को हुआ। भवन देखने मे शानदार लगता है। नीचे-ऊपर दो हॉल है। सभा के लिए ऊपर का हॉल बड़ा उपयुक्त है। प्रवेश द्वार के सामने गाधीजी की मूर्ति लगी है। सस्था की ओर से एक पुस्तकालय और एक वाचनालय चलता है, पर कुल मिलाकर सस्था सक्रिय रूप से नही चल रही है। असल मे किसी भी सस्था को खडा कर देना तो आसान होता है, पर उसे चलाना बडा कठिन होता है। उसके लिए सतत साधना की आवश्यकता होनी है।

भौतिकता की परम उपासक उस नगरी मे इस सस्था का होना कम महत्त्व की बात नही है, लेकिन साथ ही जरूरी है कि उसमे गाधीजी की प्रवृत्तिया जोरो से चले और उसके द्वारा युग-पुरुष का सदेश लोगो को मिले।

'इडियन एसोसियेशन' का तिमजिला भवन है, जिसके निचले खण्ड मे रेस्ट्रा है और दूसरी तथा तीसरी मजिलो मे बडे-बडे हॉल हैं। इसका शिलान्यास भी नेहरूजी ने १७ जून, १९५० को किया था। ऐसोसियेशन के अध्यक्ष श्री लाभामल सचदेव ने हमे सारा भवन दिखाया। उनसे बातचीत होने पर पता चला कि 'गाधी मेमोरियल' की अपेक्षा यह सस्था अधिक सक्रिय है। दूसरी मजिल मे नाटको आदि के अभिनय के लिए एक विशाल मच तैयार हो रहा था। मनोरजन की दृष्टि से यह सस्था वहा विशेष रूप से लोकप्रिय है।

जहा भारतीय हो, वहा 'आर्य समाज' का सगठन न हो, यह हो नही

सकता । वहा पर 'आर्य समाज' का अच्छा केन्द्र है । उसके मत्री बघुवर श्रीधर त्रिपाठी ने हमें उसकी सभा मे बोलने के लिए आमत्रित किया । विष्णुभाई और मैं दोनो वहा गए । विष्णुभाई 'साहित्य का महत्त्व' विषय पर बोले । मैंने 'जीवन मे क्राति की आवश्यकता' पर अपने विचार प्रकट किए । समाज के अध्यक्ष श्री दुर्गाप्रसाद तथा त्रिपाठी आदि मित्रो ने हमारा बडी आत्मीयता से अभिनदन किया । सभा मे काफी भीड थी ।

आर्य समाज की जो सामान्य प्रवृत्तिया होती हैं वही यहा के आर्य-समाज की भी है । हवन, सत्सग, प्रवचन आदि के अतिरिक्त शिक्षा और सस्कृति के प्रसार में इसका योगदान उल्लेखनीय है ।

लोकोपयोगी कार्यों के लिए 'रामकृष्ण मिशन' का जाल सारे ससार मे फैला है । यहा भी उसका अपना बहुत बड़ा भवन है । प्रधान स्वामीजी कही गये थे । उनके सहयोगी मिले । उन्होने भवन दिखाया और बताया कि मिशन के द्वारा शहर मे एक अनाथालय चल रहा है और लडके-लडकियो के लिए अलग-अलग दो स्कूल । मुख्य भवन शहर से कुछ दूर है, इसलिए सेवा-कार्यों के लिए उन्हे नगर में भी अपने केन्द्रो की व्यवस्था करनी पड़ी है ।

स्वामीजी बडे प्रेमी स्वभाव के थे । उन्होने आग्रह किया कि हम उन्हें सभा करने और प्रवृत्तिया दिखाने का अवसर दें, लेकिन हम लोगो के पास बहुत थोडा समय रह गया था । इसलिए उनसे क्षमा मागने के अलावा और कोई चारा नही था ।

'भारतीय भवन' हिन्दी के प्रचार के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है । वह हिन्दी के वर्ग चलाता है । हम लोगो से मिलने के लिए वहा सभा की गई । आरभ मे सत्सग हुआ, फिर भजन हुए । अत में हमारे भाषण । हम दोनो ने इस बात पर और जोर दिया कि प्रवासी भारतीयो को जहा वे रहते हैं, वहा के निवासियो के साथ हिलमिलकर रहना चाहिए और उस भूमि की भलाई के लिए कुछ-न-कुछ अवश्य करना चाहिए । इस सस्था के विकास मे श्रीधर त्रिपाठी का विशेष हाथ है ।

'कमला क्लब' मुख्य रूप से महिलाओ की सस्था है । उसकी प्रवृत्तियो मे आपसी मेल-जोल तथा विचार-विनिमय को प्रोत्साहन देना है । समय-समय पर विशेष व्यक्तियो के भाषण भी होते रहते हैं ।

भगवान बुद्ध का उधर के देशो पर गहरा प्रभाव है । सिंगापुर की 'बुधिस्ट यूनियन' वहा की विशेष सस्थाओ मे से है । उसके अध्यक्ष ने हमे यूनियन की सभा मे बोलने के लिए आमंत्रित किया । वहा पर अनेक साधुओ से भेंट हुई । उनकी प्रार्थना मे सम्मिलित हुए । मदिर बडा सुन्दर था । चीनी भाषा की प्रार्थना के मत्र तो हम नही समझ पाए, पर वहा के शात और गम्भीर वातावरण का हमारे मन पर अच्छा प्रभाव पडा ।

प्रार्थना के बाद अध्यक्ष ने हमारा परिचय कराया और 'वर्तमान जागतिक परिस्थिति तथा अहिंसा' विषय पर बोलने के लिए कहा । दर्शको मे अधिकाश चीनी थे । हिन्दी नही जानते थे । अत विष्णुभाई और मैं, अगरेजी मे बोले । हम दोनो ने अहिंसा की महिमा बताई और कहा कि ससार मे यदि स्थायी शान्ति स्थापित हो सकती है तो वह अहिंसा के रास्ते पर चलने से ही हो सकती है ।

बौद्ध मदिर वहा कई हैं, पर जिस मदिर मे हम गये, उसमे घुसते ही दाहिने हाथ पर शीशे की अलमारी मे गाधीजी की खडी मूर्ति थी । अन्दर बुद्ध की विशाल प्रतिमा थी, लेकिन उसके चेहरे पर वीतरागता का भाव नही दिखाई देता था, बल्कि आखो मे कुछ उन्माद-सा झलकता था । वेदिका के चारो ओर बुद्ध के जीवन से सबधित कुछ दृश्य और मूर्तिया थी । दृश्यो मे जो पोशाक दिखाई गई थी, वह एकदम भारतीय थी ।

भाग्य आजमाने के लिए इस मदिर मे भी सुविधा थी । बीस-बीस सेंट खर्च करके शर्माजी, विष्णुभाई और मैंने अपने-अपने भाग्य आजमाये । उसमे पल्ले तो भला क्या पड़ना था, विनोद का वह मजेदार साधन बन गया ।

पंजाबियो की आबादी वहा काफी है । वे 'नवजीवन' नामक साप्ताहिक पत्र निकालते हैं । पत्र के सम्पादक श्री दीवानसिंह 'दीवाना' ने हमे अपने कार्यालय मे बुलाया । और भी कुछ साहित्यिक इकट्ठे कर लिये । वे लोग वहा की स्थिति बताते रहे और भारत के बारे मे सवाल पूछते रहे । इन छोटे-छोटे सगठनो का बडा उपयोग हो सकता है, बशर्ते कि उनकी दृष्टि व्यापक रहे; पर वास्तव मे होता यह है कि उनके हितो का दायरा सीमित हो जाता है और निगाह तंग हो जाने से अन्य हितो के साथ उनका तारतम्य नही बैठता । आपस मे ईर्ष्या-द्वेष भी पैदा हो जाता है । इसलिए जरूरी है

कि सस्था बनानेवालो की समग्र दृष्टि रहे और वे कार्य-क्षेत्र को यह मानकर छोटा चुनें कि उनकी सीमित शक्ति और साधनो से अधिक-से-अधिक परिणाम प्राप्त किया जा सके।

श्रीधर त्रिपाठी की इच्छा हमे वहा के कुछ सम्पादको और पत्रकारों से मिलाने की थी। इसलिए वह हमें वहा के प्रमुख दैनिक पत्र 'सिगापुर फ्री प्रेस' के कार्यालय मे ले गए, जहा से 'स्टेट्स-टाइम्स', 'सण्डे मेल्स' तथा 'सण्डे टाइम्स' आदि पत्र निकलते है। ये पत्र रोमाचकारी पत्रकारिता के बडे ही उपयुक्त नमूने हैं। मोटी-मोटी सुर्खिया, राजनैतिक तनाव की भड-कीली खबरें, प्रेम की रोचक कहानिया, अदालती झगडे आदि-आदि चीजें इन पत्रो मे मुख्य रूप से रहती हैं।

सम्पादकीय विभाग के प्रमुख श्री पी०ए०एस० रामन ने हमारा स्वागत किया और एक चीनी कुमारिका से अनुरोध किया कि वह हमारा इटरव्यू ले ले। उस लडकी ने हमसे हमारी यात्रा का उद्देश्य पूछा, हम कहा-कहा घूम आए है, आगे कहा-कहा जायगे, कौन-सा देश कैसा लगा इत्यादि की जान कारी ली। जब उसने पूछा कि मैं यूरोप गया हू या नही और मैंने 'हा' करते हुए रूस जाने की बात कही तो उसकी उत्सुकता एकदम जाग पडी। फिर तो उसने दसियो सवाल पूछ डाले। अगरेजी वह अच्छी नही जानती थी, इसलिए शब्द एक साथ न सूझने पर बार-बार अटक जाती थी।

इतने अखबार निकलते हैं, इसलिए प्रेस का बडा होना स्वाभाविक था। उसके अलग-अलग विभागो मे काफी लोग काम करते हैं।

उस छोटे-से नगर में सस्थाओ की भरमार है। पर हमने केवल उन्ही सस्थाओ का उल्लेख किया है, जिनसे हमारा सीधा सबध आया। हमारी दिलचस्पी मुख्य रूप से भारतीय सस्थाओ को देखने और भारतीयो से मिलने की थी। वह बहुत-कुछ अशो मे पूरी हुई। वहा रहनेवाले भारतीयो के आपसी सबध कैसे भी हो, लेकिन उन्होने हमारे साथ बडे प्रेम और आत्मीयता का व्यवहार किया। इतना ही नही, उन्होने हमारे निवास और प्रवास को हर तरह से सुविधाजनक बनाने का प्रयत्न किया।

हमारे मेजबान श्री शिवप्रसाद शर्मा ने हमारे सम्मान मे एक भोज दिया, जिसमें अनेक साहित्यकारो तथा प्रतिष्ठित भारतीयो को आमत्रित किया।

कि सस्था बनानेवालो की समग्र दृष्टि रहे और वे कार्य-क्षेत्र को यह मानकर छोटा चुनें कि उनकी सीमित शक्ति और साधनो से अधिक-से-अधिक परिणाम प्राप्त किया जा सके।

श्रीधर त्रिपाठी की इच्छा हमे वहा के कुछ सम्पादको और पत्रकारो से मिलाने की थी। इसलिए वह हमे वहा के प्रमुख दैनिक पत्र 'सिंगापुर फ्री प्रेस' के कार्यालय मे ले गए, जहा से 'स्टेट्स-टाइम्स', 'सण्डे मेल्स' तथा 'सण्डे टाइम्स' आदि पत्र निकलते हैं। ये पत्र रोमाचकारी पत्रकारिता के बडे ही उपयुक्त नमूने है। मोटी-मोटी सुर्खिया, राजनैतिक तनाव की भड-कीली खबरें, प्रेम की रोचक कहानिया, अदालती झगडे आदि-आदि चीजे इन पत्रो मे मुख्य रूप से रहती हैं।

सम्पादकीय विभाग के प्रमुख श्री पी०ए०एस० रामन ने हमारा स्वागत किया और एक चीनी कुमारिका से अनुरोध किया कि वह हमारा इटरव्यू ले ले। उस लडकी ने हमसे हमारी यात्रा का उद्देश्य पूछा, हम कहा-कहा घूम आए हैं, आगे कहा-कहा जायगे, कौन-सा देश कैसा लगा इत्यादि की जानकारी ली। जब उसने पूछा कि मैं यूरोप गया हू या नही और मैंने 'हा' करते हुए रूस जाने की बात कही तो उसकी उत्सुकता एकदम जाग पडी। फिर तो उसने दसियो सवाल पूछ डाले। अगरेजी वह अच्छी नही जानती थी, इसलिए शब्द एक साथ न सूझने पर बार-बार अटक जाती थी।

इतने अखबार निकलते है, इसलिए प्रेस का बडा होना स्वाभाविक था। उसके अलग-अलग विभागो मे काफी लोग काम करते हैं।

उस छोटे-से नगर में सस्थाओ की भरमार है। पर हमने केवल उन्ही सस्थाओ का उल्लेख किया है, जिनसे हमारा सीधा सबध आया। हमारी दिलचस्पी मुख्य रूप से भारतीय सस्थाओ को देखने और भारतीयो से मिलने की थी। वह बहुत-कुछ अशो में पूरी हुई। वहा रहनेवाले भारतीयो के आपसी सबध कैसे भी हो, लेकिन उन्होने हमारे साथ बडे प्रेम और आत्मीयता का व्यवहार किया। इतना ही नही, उन्होने हमारे निवास और प्रवास को हर तरह से सुविधाजनक बनाने का प्रयत्न किया।

हमारे मेजबान श्री शिवप्रसाद शर्मा ने हमारे सम्मान मे एक भोज दिया, जिसमें अनेक साहित्यकारो तथा प्रतिष्ठित भारतीयो को आमत्रित किया।

मलाया विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डा० दामोदर प्रसाद सिंहल तथा उनकी पत्नी डा० देवहुति सिंहल ने हमे जलपान के लिए अपने यहा बुलाया। कलकत्ते के हमारे एक मित्र ललितमोहन ने अपने कई मित्रो के साथ हमें अपने यहा भोजन कराया। और भी कई मित्रो ने हमारा सत्कार किया। पिनाग मे जिन्होने हमारी सारी व्यवस्था की, उन श्री मक्खनलालजी के पुत्र ने अपने निवास पर भोज दिया और एक सज्जन श्री गुप्ताजी ने तो भोजन के बहाने एक अच्छी-खासी साहित्य-गोष्ठी ही कर डाली, जिसमे हमे कई सुन्दर कविताए सुनने को मिली।

: ४५ :

जीवन का वह घिनौना पहलू

सिगापुर के जीवन में जहा वैभव इठलाता दीखता है और प्राकृतिक दृश्यावली पर्यटको को मुग्ध कर देती है, वहा विलासिता के घिनौने चित्र भी दिखाई देते हैं। सध्या के वाद रात के मनोरजन के लिए वहा तीन केन्द्र हैं, जो हैपी वर्ल्ड, न्यू वर्ल्ड और ग्रेट वर्ल्ड कहलाते है। ये हमारे यहा की प्रदर्शनियो की भाति हैं, लेकिन अतर केवल इतना है कि उनमें शराव और नाचगान खुलकर चलते है। हमें वताया गया कि यदि हम मलायी नृत्य देखना चाहते हैं, जो कि वडा सुन्दर होता है, तो हमे इन केन्द्रो मे जाकर देखना चाहिए। उस सवध मे हमारी दिलचस्पी तो थी ही। नतीजा यह हुआ कि एक दिन रात को 'न्यू वर्ल्ड' मे जा पहुचे। वह लोक रोशनी से जगमगा रहा था। भाति-भाति की दुकाने लगी थी। स्त्री-पुरुषो की वेशुमार भीड थी। रेस्ट्राओ मे शराव के दौर चल रहे थे। नगर के लोकजीवन की, विशेषकर वहा की नई पीढी की, अच्छी झाकी मिल रही थी।

एक जगह पर कुछ सास्कृतिक कार्यक्रम हो रहा था। पूछा तो मालूम हुआ कि वहा मलायी नृत्य हो रहा है। हमारे साथ नेपालसिह थे। वडी उत्सुकता से वह हमें अन्दर ले गए। पर वहा जो दृश्य देखे, उनसे वडी निराशा हुई। उसमें नृत्य करने वाली तरुण वेश्याए थी और वे विगडे युवको के साथ नाच रही थी। उस नृत्य में न किसी प्रकार की कला थी, न शालीनता। उनकी भाव-भगिमा और अग-प्रत्यग की हलचले देखकर वुरा लगता था। जरा-सी देर मे जी ऊव गया। वाहर चले गए।

उसके वाद एक चीनी नाटक देखने गए। भाषा तो समझ नही सकते थे, पर पात्रो की पोशाक और पर्दों के भडकीलेपन को देखकर यह समझते देर न लगी कि यह कोई वहुत ही हल्की किस्म का नाटक है। सोचा कि हो सकता है, आगे दूसरे प्रकार के दृश्य आवे, पर जो सामने आया वह तो और भी गया-वीता था।

हमें बताया गया कि तीनो केन्द्रों मे यही हाल है । दिन मे वहा सुनसान रहता है, लेकिन शाम को अधेरा होते ही जिन्दगी अंगडाई लेकर जाग उठती है और फिर रात-गए तक जीवन की रंगीनी अपना नाच दिखाती रहती है । दिनभर के काम से थके मजदूर, दफ्तर के बाबू, जीवन मे कुछ भी वर्जित न मानने वाले युवक और युवतिया, कुछ घटो के लिए गम गर्क करने के लिए आतुर गृहस्थ, सब आपको वहा मिलेंगे । कुछ सम्भ्रान्त व्यक्ति भी आते है, पर कुल मिलाकर वहा के वातावरण को हल्का ही कहा जा सकता है ।

पश्चिम का पूरा असर उस नगर के जीवन पर है । आप कही कार से जा रहे हैं । चौराहे पर लालबत्ती देखकर आपको रुक जाना पडा है । आपकी निगाह आगे की कार पर जाती है । आप क्या देखते हैं ? कार को चलाने वाले युवक ने अपने पास बैठी युवती को खीचकर अपनी गोद मे लिटा लिया है और उसे जोरो से चूम रहा है । हरी बत्ती होने तक के समय को भी जैसे वह खोना नही चाहता !

वेश्यावृत्ति पर सभवत प्रतिबध है, पर वहा के कई मोहल्लो में खुले आम चकले चलते हैं । कही से लौटते हुए शर्माजी ने एक दिन अपनी कार को एक ऐसे ही मोहल्ले से निकाला । शाम का समय था । जवान लडकियो को दिखाकर शर्माजी ने बताया कि ये सब पेशा करती हैं ।

शनिवार की रात को एक दिन हमने जो देखा, उसे भूल सकना सभव नही है । उस दिन शाम को एक सज्जन के यहा पार्टी थी । भोजन करते-करते १० बज गए । नेपालसिंह और शर्माजी के भाई पाडेजी साथ थे । सोचा, घूमते हुए घर चले चले । पैदल क्लिफर्ड पीयर पर आये । समुद्र के किनारे बडी भीड थी । युवक और युवतिया एक-दूसरे का हाथ पकडे चहल-कदमी कर रहे थे । थोडी देर रुककर एण्डरसन ब्रिज पार करके 'क्विन एलिजाबेथ मार्ग' पर पहुचे । वहा बैचो पर और रेस्ट्रा मे नौजवान लडके-लडकियो की भीड लगी थी ।

लेकिन वहा से वापए घूमकर सेट एण्ड्रूज गिरजाघर के मैदान मे अधेरे मे जो दृश्य देखे, वे मर्यादा की सीमा को पार कर गए थे । सैकडो जोडिया मैदान मे जरा-जरा से फासले पर आलिंगन और चुम्बन मे लिप्त थी । न किसीको किसीसे सकोच, न हया-शर्म । कुछ लोग घूम-घूमकर उन्हे देख

रहे थे, पर उनकी भी उन मदाध लडके-लडकियो को कोई चिन्ता न थी। एक दृश्य देखकर हमे हँसी आये बिना न रही। एक पेड के तने की आड मे एक युवक ने एक युवती को अपनी गोद मे लिटा रखा था। उसी पेड की दूसरी ओर खडा एक नौजवान सिगरेट पीता उन्हे चोर की भाति देख रहा था।

एक दूसरे दृश्य को देखकर मन को बडी चोट लगी। एक पत्थर की बेंच पर एक लडका-लडकी लिपटे पडे थे और उसी बेंच के एक सिरे पर दूसरी ओर को मुह किए कोई ८-१० वर्ष की बालिका बैठी थी।

नेपालसिह ने बताया कि वैसे तो ये दृश्य प्राय हर रात को दिखाई देते हैं, लेकिन शनिवार की रात को यहा विशेप हलचल रहती है। उन्होंने यह भी बताया कि इन लडके-लडकियो मे कुछ के सबध पक्के हो चुके है, पर विवाह नही हुए हैं, कुछ प्रेमी-प्रेमिकाए हैं और कुछ वे हैं, जो भोग की जिन्दगी मे डूबे हैं। उन्होंने कहा, "ये लोग इस तरह के जीवन के इतने आदी हो गए हैं कि इन्हें इसमे कुछ भी बेजा नही लगता।" हमने स्वय देखा कि वहा सिपाही घूम रहे थे, दूसरे लोग चक्कर लगा रहे थे, पर उन विलासी व्यक्तियो को इसकी परवा नही थी, बल्कि कुछ जगह तो यह भी देखा कि पास से गुजरनेवालो पर निगाह डालकर लडकिया बेहयाई से हँस पडती थी।

देवालय के मैदान मे यह सब होना बडा विचित्र-सा लगा। पर शायद शहर के निकट होने के कारण उस जगह का चुनाव किया जाता होगा।

गिरजे के मैदान मे घूमकर जब हम कनाट ब्रिज के दोनो ओर पैदल चलनेवाले मुसाफिरो के रास्ते पर आये तो वहा भी यही हाल देखा। रेलिंग के सहारे दर्जनो जोडिया खडी प्रेमालाप कर रही थी। उनके बीच मुश्किल से गज-गज भर का भी फासला नही होगा।

एशिया के इन देशो मे मातृ-मूलक समाज होने के कारण लडकियो को पूरी आजादी है, विशेपकर चीनी और मलायी नारी-समाज तो यहा का एकदम बधनमुक्त है। यो जीवन के प्रति ऊचा उद्देश्य रखकर सयम की जिन्दगी बितानेवाले नर-नारी भी वहा मिलेंगे, लेकिन उनकी अपेक्षा ऐसे व्यक्ति वहा अधिक हैं, जो भोग मे रस लेकर जिन्दगी को खुला छोड देते हैं।

: ४६ :

मलाया की राजधानी में

सिंगापुर २३ मई को पहुचे थे और ३१ मई को वहा से चले। इन दिनो मे वहा काफी घूमे। दर्शनीय स्थान देखे, सस्थाए देखी। भारतीयो से मिले। आखिर के दो दिन मे से कुछ समय बाजार मे बिताया। हम पहले ही बता चुके है कि सिंगापुर चुगी से मुक्त बन्दरगाह है, इसलिए वहा दुनिया भर की चीजे आती है और सस्ती मिलती हैं। लेकिन जब हम बाजार मे गये और घडी, कैमरा आदि देखे तो लगा, वहा खरीद करना आसान काम नही है। चीजो के दामो मे बहुत ही अतर था। फिर सौदेबाजी भी वहा बेहिसाब चलती है। हमारे मित्र श्रीधर त्रिपाठी हमे अपने एक परिचित दुकानदार की घडी की दुकान पर ले गए। विष्णुभाई ने और मैंने दो मर्दानी और एक जनानी घडी खरीदी। विष्णुभाई ने राली कोर्ड कैमरा लिया। कुछ और छोटी-मोटी चीजें ली। जब घर आये तो शर्माजी ने घडिया देखी और बोले, "आप लोग ठग आए। ये घडिया किसी काम की नही हैं।"

हमने उन्हें लौटाने का निश्चय किया। दुकानदार त्रिपाठीजी की जान-पहचान का था और बातचीत में भला लगा था, इसलिए विश्वास के साथ वहा गये। पर घडिया लौटाने की बात सुनकर उस चीनी दुकानदार ने जो रुख अपनाया, वह हमारे लिए एकदम अप्रत्याशित था। पहले तो उसने कहा कि मैं इन घडियो को वापस नही ले सकता, पर जब हमने बहुत आग्रह किया तो वह बोला, "पच्चीस फीसदी दाम कम करके लूगा।"

हमे बडा बुरा लगा। हमने त्रिपाठीजी को फोन किया, उन्होने दुकानदार से बात की, पर वह कहा मानने वाला था! सोचा, बेकार की चीज साथ ले जाने से तो अच्छा है कि उसकी बात मान ली जाय और अच्छी घडिया उससे ले ली जाय। हमने कुछ स्टैण्डर्ड घडिया मागी। जब उनके दाम पूछे तो उसने हरेक के दाम बाजार से कई डालर अधिक करके बताये। हम पिछले दिन दूसरी दुकानो पर पूछ चुके थे। अपनी उस जानकारी के

आधार पर हमने उससे कहा कि दूसरी दुकानो पर तो ये घड़ियां कहीं कम दामो मे मिलती है, तो उसने फौरन उत्तर दिया, "तो वहीं से ले लीजिए।"

हम दोनो को बड़ा बुरा लगा। विष्णुभाई को तो गुस्सा आ गया। घड़िया उठाकर बोले, "इस दुकानदार से बात करना व्यर्थ है। चलो, चले।"

हमने अनुभव किया, वहा के बाज़ार मे ठीक से खरीदारी करना सबके बस का काम नही है। कुछ चीजे अच्छी मिल गई, कुछ मे धोखा खा गए।

सिगापुर से हमे मलाया जाना था। हमारे मेजबान शर्माजी को मलाया की राजधानी क्वालालामपुर मे कुछ काम था। उन्होने कहा, "कार से साथ चलो चलेगे। उससे आपको एक फायदा यह होगा कि आप पश्चिमी मलाया का बहुत-सा हिस्सा देख लेगे।"

हमारे लिए यह प्रलोभन कम नही था। सिगापुर से क्वालालामपुर २४६ मील है और अधिकाश रास्ता समुद्र के किनारे-किनारे होकर जाता है। हमारे लिए यह एक दुर्लभ अवसर था। शर्माजी का यह भी कहना था कि हम क्वालालामपुर से रेल द्वारा पिनाग जाय तो ज्यादा अच्छा रहेगा। उधर का हिस्सा भी देखने लायक है। इस तरह किराये मे भी हमे बचत हो जानेवाली थी। बैकाक से वियन्त्यान (लाओस) का सफर हमने छोड़ दिया था। उससे भी कुछ पैसा बचा था। उस सारी बचत से हमने इडोनेशिया (जकार्ता) हो आने का विचार किया। पिनाग से रगून तक का टिकट ठीक कराकर जब हमने पान अमेरिकन एयरवेज के बाबू से जकार्ता तक का टिकट देने को कहा तो उस युवक ने सवाल किया, "जकार्ता किसी काम से जाना चाहते है?" हमने जवाब दिया, 'नही, हम लोग तो घूमने निकले है और घूमने के लिए ही जकार्ता जाना चाहते है।' वह बोला, "मेरी अपनी राय यह है कि अगर आप इडोनेशिया देखने चाहते है तो जावा जाय, सुमात्रा जाय, बाली जाय। जकार्ता मे कुछ नही है। बैकाक देख लिया, समझ लीजिए, जकार्ता देख लिया। यह उधर की दूसरी राजधानियों की तरह है।"

उसकी बात हमारी समझ मे आ गई। जावा, सुमात्रा आदि जाने के लिए न तो हमारे पास पैसा था, न समय। अत जकार्ता जाने का विचार छोड़ दिया।

सिंगापुर मे कुल मिलाकर एक सप्ताह ठहरने का कार्यक्रम था, लेकिन शर्माजी को काम निकल आने के कारण दो दिन अधिक लग गए ।

३१ मई के सवेरे ८ वजे शर्माजी, नेपालसिंह, विष्णुभाई और मैं चार जने कार द्वारा रवाना हुए। सिंगापुर की सडकें वडी अच्छी हैं। मौसम सुहावना था और सवेरे का समय होने के कारण भीड भी अधिक नही थी। ज़रा-सी देर मे १९ मील चलकर जोहोर वाहरू पहुचे। वहा कस्टम पर हमारी कार रोकी गई। सारा सामान उतरवाकर एक-एक चीज़ देखी गई, खाली मोटर जाची गई। घडियो और कैमरे के बारे मे वहुत-से सवाल किए। कोई पौन घटे मे जान छूटी।

जोहोर वाहरू से निकलते ही रवर और नारियल के वागान शुरू हो गए। सिंगापुर और मलाया मे सडको पर कोलतार की जगह रवर के दूध का प्रयोग होता है। सडके इतनी वढिया हैं कि उन पर चलते हुए लगता है, जैसे पानी पर तैर रहे हो। मीलो तक सडक के दोनों ओर रवर के हरे-भरे उद्यान हैं, ताड और खजूर के घने झुरमुट हैं और है आतव, जिसकी चटाइया आदि वनती हैं।

९६ मील वात-की-वात मे निकल गए। वातू पाहत पहुचे, जो जोहोर की दूसरी राजधानी है। वडी वस्ती है। लम्वा-चौडा वाजार है। वहा पर अधिकाश मलायी लोग वसते हैं, लेकिन भारतीय, विशेषकर सिख और तमिल भी काफी दिखाई दिए। यहा नाव से समुद्र को पार करना पडा। समुद्र क्या, उसका रुका हुआ पानी कहिए, पर अच्छा-खासा चौडा पाट है। वडी-वड़ी नावो पर छ -छ आठ-आठ मोटरें, ट्रक-लारिया लादकर इजन के ज़ोर पर उस पार पहुच जाते हैं। मुसाफिरो के लिए अलग स्टीमर हैं, जो थोडे-थोडे समय पर आते-जाते रहते हैं।

नाव पर चढने-उतरने और समुद्र पार करने मे कोई पौन घटा लग गया। वहा से चलकर मुआर पहुचे, जो वातू पाहत से ३२ मील और जोहोर राज्य का अतिम स्थान था। वहा फिर भूमि की भुजाओ मे आवद्ध समुद्र के पानी को पार करना पडा। यह जगह भी वडी सुन्दर है। पानी का पाट कोई चार फर्लांग का होगा। कुछ ही फासले पर समुद्र हिलोरें ले रहा था। यहा हमे थोडी देर प्रतीक्षा करनी पडी। एक घटा लग

गया'। फिर २७ मील चलकर मलक्का पहुचे, जो मलाया के छोटे-से, पर ऐतिहासिक मलक्का नामक राज्य की राजधानी है । शर्माजी को यहा किसी से मिलना था। वह मिलने चले गए। हम शहर मे चक्कर लगाते रहे । मलक्का की खाडी पर वसे होने के कारण इस नगर की प्राकृतिक शोभा देखने योग्य है। किसी समय मे मलक्का राज्य हिन्दू राजा के अधीन था। वाद मे वहा मुसलमान शासक आये। आज भी वहा भारतीयो की सख्या बहुत अधिक है। ज़्यादातर पजावी और तमिल हैं। उधर एक कहावत है—"कमाई करनी हो तो सिगापुर जाओ, पैसा उडाना हो तो पिनाग जाओ और मरना हो तो मलक्का पहुचो।" हमे बताया गया कि यह कहावत शायद इसलिए बनी होगी कि किसी ज़माने मे मलक्का मे अवाछनीय तत्त्व बहुत थे। आदमी की जान को हर समय खतरा था, पर अब वह वात नही है।

दोपहर हो चुकी थी। वहा एक चीनी होटल मे जाकर भोजन किया। कुछ खाना अपने साथ था, कुछ वहा से लिया। पपीता वडा अच्छा मिला। खा-पीकर २ वजे आगे बढे। रास्ते मे गाव यत्र-तत्र फैले हुए मिले। उन गावो को कस्वा कहना ज्यादा सही होगा। मकान पक्के, वढिया सड़के और विस्तार भी मज़े का। उधर के अन्य देशो की अपेक्षा मलाया के गाव अधिक समृद्ध लगे।

मलक्का से पद्रह मील निकले थे कि अचानक दाहिनी ओर के आगे के पहिये मे पचर हो गया। पहिया बदलने मे आधा घटे से ऊपर लग गया। चारो ओर रवर, नारियल आदि के घने उद्यानो ने उस स्थान को वड़ा आकर्षक वना रखा था। यात्रा मे यो आकस्मिक विघ्न पड़ना पहले तो हमे अखरा, पर वाद मे वहा की कलापूर्ण दृश्यावली देखी तो लगा, यह घटना शायद इसलिए हुई होगी कि हम वहा की शोभा को थोडा रुककर अच्छी तरह देख सके। एक मील पर अलोर-गाजा की वस्ती थी। वहा जाकर खराव पहिये को ठीक कराया। टायर मे सवा इच लम्बी कील निकली।

वहा से चलकर सरमवान पहुचे, जो नेग्री सेम्वीलन राज्य की राजधानी है। वडा ही सुरुचिपूर्ण नगर है। भारतीय यहा भी काफी हैं।

बबई के एक गुजराती व्यापारी की दुकान पर गये । वह कपडे का धधा करते थे । सात साल से वहा हैं । अपने अनुभव सुनाते रहे । मालूम हुआ कि दूसरे नगरो की भाति वहा का बहुत-सा व्यापार चीनियो के हाथ मे है। नगर बहुत ही साफ-सुथरा था । उद्योग का यह अच्छा केन्द्र है।

मरमवान से चलकर २८ मील पर काजग की बस्ती मे होते हुए क्वालालामपुर की ओर बढे । १४ मील का यह रास्ता अत्यन्त मनोहारी है। पृष्ठभूमि मे पर्वत-मालाए हैं, जिन पर हरियाली हरे कालीन की भाति बिछी है। रबर के पेडो के घने वन हैं। एक नया ही लोक लगता है।

शाम को साढे छ बजे क्वालालामपुर पहुचे । २४६ मील की यात्रा हुई और मलाया के ११ राज्यो मे से चार की राजधानिया देख ली। पश्चिमी मलाया का एक बडा हिस्सा आखो के सामने से गुजर गया । अब हम सैलगूर राज्य मे थे । क्वालालामपुर का दोहरा महत्त्व है। वह राज्य का सदर मुकाम है, साथ ही पूरे राष्ट्र की राजधानी भी है।

हम लोगो ने वह रात और अगला पूरा दिन वहा बिताया । सच यह है कि बिना क्वालालामपुर देखे मलाया की कल्पना नही की जा सकती। वहा मलाया का विशुद्ध रूप दिखाई देता है। प्राकृतिक और मानवीय, दोनो प्रकार के सौन्दर्य का अनन्त भण्डार है, पर साथ ही वहा लोगो मे सरलता भी है । उनके जीवन मे सुघडता है, पर सिंगापुर की-सी उच्छृखलता नही है।

क्वालालामपुर पहुचते ही सनातन धर्मवालो को सूचना मिल गई। इसलिए सामान रखते ही अधिकारियो का बुलावा आ गया। उनके मदिर मे गये । वहा पर कुछ भारतीय स्त्री-पुरुष इकट्ठे होकर कीर्तन कर रहे थे । कीर्तन के उपरान्त विष्णुभाई को और मुझे बोलना पडा ।

नगर की आबादी कोई तीन लाख है, जिसमे ६० हजार भारतीय हैं। सारे मलाया मे तो भारतीयो की सख्या ६ लाख से ऊपर है। सबमे अधिक दक्षिण भारत के निवासी हैं, फिर पजाबी, सिंधी और गुजराती। उनमे से बहुत से लोग व्यापारी हैं, लेकिन ज्यादातर रबर-उद्योगो मे काम करते है। रबर के पेडो से दूध निकालने के काम मे भारतीय मजदूर माहिर माने जाते हैं ।

क्वालालामपुर मे दो नदियां हैं—क्लैंग और गोम्बक । इन दोनो नदियो के कारण राजधानी की शोभा मे चार चांद लग गए हैं । अगले दिन सैलगूर के बादशाह की, जो मलायी गणतंत्र के भी अध्यक्ष है, वर्ष-गाठ थी । इसलिए सारे नगर में बडा उत्साह था ।

मलाया का सबसे बड़ा उद्योग रबर का है । विश्व का सबसे अधिक रबर का उत्पादन यही होता है । सिगापुर उसकी खपत का सबसे बडा बाजार है । मलाया मे ३५ लाख एकड़ भूमि मे रबर की खेती होती है । इस उद्योग मे पाच लाख से अधिक व्यक्तियो को काम मिलता है ।

रबर-उद्योग की भाति दूसरा प्रमुख धधा टीन का है । रबर के बगीचे और उद्योग-केन्द्र के बाद टीन की खदान देखने गए । मशीनो की सहायता से खदान से मिट्टी को निकालकर उसमे पानी के द्वारा कच्ची टीन को अलग कर लिया जाता हैं । फिर उसे गलाकर टीन तैयार करने के लिए पिनाग, बटरवर्थ आदि स्थानो मे भेज दिया जाता है । सिवा बडी मशीनो के कोई विशेष बात उस खदान मे देखने मे नही आई ।

वहा से बातू कन्दरा गये, जो शहर के कोई ७ मील पर है । टीन की खदानो के सिलसिले में जब खुदाई हो रही थी तब यह कन्दरा मिली थी । २७३ सीढिया चढकर ऊपर पहुचे । देखते क्या हैं, एक पहाड के अन्दर विशाल कन्दरा है । ऊपर से छत खुली थी, जिससे प्रकाश आ रहा था और गुफा अच्छी तरह से देखी जा सकती थी । बीच मे बहुत बडा आंगन था, जिसके बाई ओर एक मदिर मे पहले सुब्रमण्यम की मूर्ति थी । वह मूर्ति अब नीचे के मदिर मे चली गई है और उसके स्थान पर गणेश विराज-मान कर दिये गए हैं । उससे आगे गणेश का दूसरा मदिर है । बडे मदिरो के पुजारी ने हम सबके चदन-रोली लगाई और चम्पा का फूल दिया । गुफा मे ऊपर से पानी आता रहता है, जिससे नीचे के पत्थरो मे कट-कटकर भाति-भाति की आकृतिया बन गई हैं । उस कन्दरा को देखकर अपने देश की सहस्र-धारा तथा अमरनाथ की गुफा का स्मरण हो आया । सबकी अपनी-अपनी महिमा है ।

एक बडी मजेदार बात सुनने मे आई । वहा के लोगो की धारणा है कि पाडवो ने अपने बारहवे वर्ष के वनवास के उपरान्त तेरहवे वर्ष मे जो

अज्ञातवास किया था, वह इसी कन्दरा मे किया था। इसमें कितनी सचाई है, यह तो इतिहासज्ञ ज़ाने, लेकिन गुफा के वाहर खडे होकर चारो ओर के दृश्य वडे सुहावने लगे।

वहा से रवाना होकर मर्डेका स्टेडियम गये, जिसमें ३० हजार व्यक्ति बैठकर खेल-तमाशे देख सकते हैं। वादशाह की वर्षगाठ की परेड उसीमें हुई थी। उसके वाद लेक-गार्डन, राजमहल, रेलवे स्टेशन और सचिवालय आदि देखे, फिर वहा के मन्त्री श्री वी० टी० सम्बधम से मिलने गए। वे मन्त्रिमण्डल मे भारतीयो के प्रतिनिधि हैं और डाक तथा टेली-कम्यूनीकेशन विभाग उनके पास है। उनके नाम भारत सरकार के मन्त्री डा० सुब्रायन ने, जो अव इस ससार में नही हैं, हमे पत्र दिया था। भेंट हुई। सवधमजी मलयाली हैं और मलायी-भारतीय काग्रेस के अध्यक्ष है। उन्होने हमारी यात्रा का उद्देश्य पूछा और जव हमने वताया कि हम साहित्यिक एव सास्कृतिक उद्देश्य को लेकर निकले हैं तो वोले, "इन देशो मे भारतीय सस्कृति से सवन्धित अपार सामग्री है। भारत और मलाया के सवध बहुत पुराने और वडे घनिष्ट रहे हैं। किसी जमाने मे भारतीय यहा आये, सडकें वनाई, रेलें वनाई और बहुत वडी सख्या मे वस गए। आप देखेंगे, भारत का इन देशो पर बडा गहरा असर पडा है। भारत मे जव जो हुआ, उसकी प्रतिध्वनि यहा हुई। आज भी यहा भारतीय सस्कृति का प्रभाव दीख पडता है। यहा शासक मुसलमान है, लेकिन उनकी प्रथम उपाधि है, 'श्रीपादुका', अर्थात जिस तरह भरत ने श्री राम की पादुका सिंहासन पर रखकर अयोध्या मे राज्य किया था, वही भावना है। यहा की रानी की उपाधि 'राजा एगोग परमेश्वरी' है। इतना ही नही, हमें यह भी मालूम हुआ कि जवतक रामायण या महाभारत से कोई दृश्य नही खेला जाता तवतक वहा निकाह की विधि अथवा और कोई दूसरा अनुष्ठान पूर्ण नही होता।

सम्बन्धमजी काफी देर तक वातें करते रहे। वह इस वात के लिए वडे चिंतित थे कि रवर-उद्योगो में जो लाखो भारतीय काम कर रहे हैं, उनकी नौकरी सुरक्षित रहे। असल मे वहा के वडे-वडे रवर-उद्योगो के चीनियो के हाथो में आ जाने की सभावना थी। उस हालत में भारतीयों के स्थान पर चीनियो के लग जाने का डर था। इसलिए भारतीयो के हित मे इन्हें आवश्यक

लगता था कि रबर-उद्योग व्यक्तिगत सम्पति न होकर सहकारी पद्धति पर चलाये जाय। बडे समझदार व्यक्ति जान पडे। विनोबाजी के बडे प्रशसक थे। कहने लगे, "पिछले साल जब मैं हिन्दुस्तान गया तो झुझनू जाकर विनोबाजी से मिला। वह वास्तव में ऋषि है।"

सबधमजी से मिलकर मलाया-इडियन काग्रेस के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री कुन्दनलाल दिवासर के यहा गये, जो हमें 'शुद्ध समाजम' (प्यौर लाइफ सोसायटी) ले गए। इस सस्था की स्थापना स्वामी सत्यानद जी ने सन १९४७ मे की थी। स्वामीजी नेताजी के साथियो मे से थे। वह उस समय कही गये हुए थे। उनके सहयोगी ने भवन दिखाया और सस्था की प्रवृत्तियो की जानकारी दी। उसमे अध्यात्म, कला और शिक्षा का समन्वय किया गया है। लडके-लडकियो की पढाई की व्यवस्था है, साथ ही दस्तकारी, प्रेस आदि की ट्रेनिंग भी दी जाती है। वहा के मदिर की मन पर अच्छी छाप पडी। उसमे कोई मूर्ति नही है। वेदी पर ॐ है और उसके हॉल मे ईसा, कृष्ण, बुद्ध, लाउत्से, शिव, अरविन्द, परमहस, शारदा, महर्षि रमन, विवेकानन्द, शिवानन्द, रामानुज, नानक, गाधी आदि के चित्र हैं। मदिर का नाम है—'टैंपिल ऑव यूनीवर्सल स्प्रिट'। सस्था से अगरेजी मे कई उपयोगी प्रकाशन हुए हैं।

स्वामीजी से फोन पर बात हो गई थी। वह रात को स्टेशन पर मिलने आये। बडे सुलझे हुए व्यक्ति लगे। लोगो का जीवन पवित्र बने और कला, विज्ञान एव उद्योगो को प्रोत्साहन मिले, इसके लिए वह लगातार प्रयत्न करते आ रहे थे। सस्था की ओर से 'धर्म' नामक त्रैमासिक पत्र भी निकलता है। खेद है, मोटर दुर्घटना मे इन स्वामी जी का देहान्त हो गया।

शाम को चिन्वू स्विमिग पूल और टुकू अब्दुल रहमान पार्क देखे। पार्क में बच्चो के खेल-कूद की विशेष व्यवस्था है।

श्री हेमराज शास्त्री मिले। उन्होने बताया कि वहा हिन्दी प्रचार सभा हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए काम कर रही है। उसके अतर्गत हिन्दी की पढाई के लिए वहा तथा पिनाग और ईपो मे शिक्षा-केन्द्र चल रहे हैं। यह सभा दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की परीक्षाए दिलवाती है। उनका कहना था कि मलाया मे इतने भारतीय होते हुए भी उनमें हिन्दी के लिए

कोई खास उत्साह नहीं है । वह साईक्लोस्टाइल किया हुआ एक हिन्दी पत्र निकालते है । उसकी कुछ प्रतिया उन्होने हमें दी ।

रात को ८।। वजे स्टेशन पहुच गए । रिजर्वेशन दिन मे ही करा लिया था । शर्माजी, नेपालसिंह तथा हमारे क्वालालामपुर के नये मित्र घीरूभाई, जमनादासजी आदि हमें छोडने आए । कई दिन से शर्माजी का साथ बराबर रहा था । विदाई के समय उन्हे और हमें बडा बुरा लगा ।

९ बजे की गाडी से पिनाग की ओर रवाना हुए ।

: ४७ :

प्राकृतिक तथा मानवीय सौंदर्य का केन्द्र पिनांग

दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशो मे मलाया का अपना स्थान है। उसकी भूमि समृद्ध है, उसका इतिहास पुराना है। जो लोग एशिया के बदलते रूप को देखना चाहते है, उन्हे मलाया जरूर देखना चाहिए।

हम बता चुके है कि प्राचीनकाल से भारतीय सौदागर व्यापार की खोज मे इधर के देशो मे आते रहे थे। भारत से चीन जाने के लिए मलक्का के जलडमरूमध्य को छोडकर और कोई आसान रास्ता नही था। चौदहवी शताब्दी मे जब मज्जापहित साम्राज्य के द्वारा श्रीविनय साम्राज्य कुचल डाला गया, तो बहुत-से शरणार्थी भागकर मलाया प्रायद्वीप के दक्षिण में आये और उन्होने मलक्का शहर स्थापित किया। आगे उसका विकास हुआ और सन १४०० में वह एक बडा शहर बन गया। यहा के शासक पहले तो बौद्ध थे, लेकिन बाद मे उन्होने इस्लाम ग्रहण कर लिया।

मलक्का के छोटे-से राज्य की ताकत बढती गई और उसने आगे चलकर जावा के उपनिवेशो पर कब्जा कर लिया। सन १४७८ में मज्जापहित शहर पर भी अधिकार कर लिया, लेकिन श्रीविजय और मज्जापहित की तरह वह महान और दीर्घायु नही बन सका। सन १५११ मे उस पर पुर्तगालियों का कब्जा हो गया और इस तरह वहा व्यापार का पहला यूरोपीय केन्द्र स्थापित हुआ।

सन १६४१ मे उसपर डचों का आधिपत्य हो गया। सन १७०६ मे ब्रिटिश ईस्ट इडिया कम्पनी के फ्रासिस लाइट ने जब उत्तरी सीमान्त पर पिनाग की स्थापना की और १८१९ में सर स्टाम्फोर्ड रैफिल्स ने सिगापुर को दक्षिण-पूर्वी एशिया के व्यापार का केन्द्र बनाया तो अंग्रेजो का प्रभाव बहुत बढ गया। सन १८२४ मे डचो ने मलक्का अग्रेजो को दे दिया। सन १८६९ मे स्वेज नहर के खुल जाने से मलक्का के जलडमरूमध्य द्वारा सुदूरपूर्व से व्यापार में वृद्धि हुई और समुद्री यातायात की दृष्टि से उसका

महत्त्व कई गुना हो गया ।

सन १९४२ मे मलाया पर जापान का आधिपत्य होने से पहले वह तीन भागो मे वटा था—१ जलडमरूमध्य की वस्तिया, जैसे सिंगापुर, पिनाग, मलक्का और लेबुआन, २ मलाया के सघीय राज्य, जैसे पिराक, सैलगूर, नेग्री सेम्बीलन और पटाग, इनकी राजधानी क्वालालामपुर थी और ३ मलाया असघीय राज्य, जैसे जोहोर, केडाह, परलिस, केललान और त्रेन्गानू ।

तीन वर्ष तक जापान का कब्जा रहने के वाद वहा ब्रिटिश मिलटरी शासन स्थापित हो गया । पिनाग और मलक्का की वस्तियो और मलाया के नौ राज्यो को मिलाकर मलाया का निर्माण हुआ । सिंगापुर पृथक् उपनिवेश वना । सन १९४८ मे मलाया को स्वतत्रता मिली और वर्तमान सविधान के अनुसार सन १९५७ से उसका गणतत्री शासन आरभ हुआ ।

सक्षेप में यही है मलाया का इतिहास । पिनाग उसका वहुत ही सुन्दर द्वीप है और अव हमारी वही की यात्रा आरभ हो रही थी ।

दूसरे दर्जे के सोने के डिब्बे में हमें दो वर्थ मिल गई थी, जिनपर डनलप के मोटे आरामदेह गद्दे थे । हर वर्थ पर पर्दा था, जिसे डाल लेने पर छोटी-सी स्वतत्र कोठरी वन जाती थी । डिब्बे में पूर्ण शाति थी, फिर भी सारी रात नीद नही आई । पास की दो सीटो पर कोई चीनी दम्पती थे । आदमी शायद वीमार था । महिला वार-वार उठकर उसके पास जाती थी । स्त्री के इस घडी-घडी के आने-जाने से विष्णुभाई और मैं, दोनो में से किसी की आख न लगी । रात के अन्धकार में वाहर कुछ दिखाई नही देता था । विस्तरो पर चुपचाप पडे रहे ।

सवेरे उजाला होने पर उठकर बैठ गए और रवर-नारियल के सघन वन देखने लगे । मलाया कितना हरा-भरा है, उसकी कल्पना विना देखे नही की जा सकती । ताड और नारियल के पेड मुझे वडे ही रोमाचकारी लगते हैं । मलाया में उनकी इतनी वहुतायत है कि जिधर देखो उधर उनकी घनी-घनी निकुजें दिखाई देती हैं । इसी प्रकार रवर के कलापूर्ण पेडो का सामूहिक प्रभाव मन पर वडा अच्छा पडता है । सारे मलाया को प्रकृति ने रवर और नारियल की वडी भारी देन दी है ।

सवेरे ७ बजे प्राई स्टेशन पर पहुचे । पिनाग राज्य का वही अंतिम स्टेशन है। वहा रेल समाप्त हो गई, आगे पानी-ही-पानी था। छोटा-सा स्टेशन तस्वीर की तरह लगता था। रेल से सामान उतारकर पास ही सागर-तट पर खडे स्टीमर पर पहुचे। मुसाफिर ज्यादा नही थे। हमारे बैठने के कोई पन्द्रह मिनट के भीतर स्टीमर चल पडा। चारो ओर की दृश्यावली देखते ही बनती थी। दूर-दिगत में जहां अनन्त जलराशि समाप्त होती थी, वहा पर्वत-मालाओ और वनश्री से सुसज्जित क्षितिज बडा मनोहारी लगता था। बाल-रवि की किरणो ने उसके रूप को और भी बढा दिया था। हम ऊपर की मजिल में बेंच पर बैठे प्रकृति की उस लीला का आनन्द लेते रहे। चालीस मिनट में स्टीमर पिनाग की राजधानी जार्जटाउन की जैटी पर जाकर लगा। समुद्र मे से ही हमे आभास हो गया कि पिनाग द्वीप कितना सुन्दर है।

सामान लेकर जैसे ही स्टीमर से उतरे कि एक सज्जन ने पास आकर पूछा, "आप लोग यशपालजी और विष्णुजी हैं?" वह सज्जन थे श्री मक्खनलालजी, जिन्हे पिछले दिन क्वालालामपुर से शर्माजी ने फोन कर दिया था। हमारे 'हा' कहने पर मक्खनलालजी ने बडे प्रेम से हमारा अभिवादन किया। फिर हमे कार से अपनी दुकान पर ले गए। मक्खनलालजी बहुत वर्षों से उधर हैं। सिगापुर और पिनाग मे उनका व्यवसाय है। दोनो जगह उनकी कोठिया हैं। दुकान पर थोडी देर तक रुककर उनके घर गये। स्नान-जलपान किया। तबतक उन्होने प्रेमकुमार नामक युवक को बुलाकर हमें पिनाग दिखवाने की व्यवस्था कर दी।

सबसे पहले हम ५ मील पर बोटानीकल गार्डन देखने गए। बडा विशाल और समृद्ध बाग था। बारह सौ फुट ऊची पहाड़ी पर था। उसमे भाति-भांति के पेड और फूल थे। बीच मे पीने के पानी का जलाशय था। पहाड पर से आनेवाले झरने के पानी को साफ करके वहा पानी का सचय किया गया था। अधिकारी ने पानी को साफ करने की सारी प्रक्रियाए समझाई। वहा से चलकर एक छोटे-से तालाब पर पहुचे, जिसमे कमल खिले थे और मछलियां क्रीडा कर रही थी। बडी शात जगह थी।

वहा से शहर के कुछ हिस्सो मे चक्कर लगाते हुए 'माउन्ट प्लैजर'

पहुचे । यह स्थान पिनाग के बहुत ही सुन्दर स्थानो में से है। काफी ऊची पहाड़ी के शिखर पर एक रेस्ट्रा तथा जलाशय का निर्माण किया है। वहा से सागर तथा मलाया द्वीप को अच्छी तरह से देखा जा सकता है । सवेरे-शाम वहा सैलानियो की भीड लगी रहती है और छुट्टी के दिन तो वहा की-सी चहल-पहल शायद ही कही देखी जा सके ।

वहा से फैंटी पार्क होते हुए दो जलाशय देखने गए । पिकनिक के लिए वह बडी सुन्दर जगह है ।

शाम को आयर इटम का चीनी मदिर देखा । सारे मलाया मे यह अपने ढग का एक ही मदिर है । बौद्ध मदिर का सर्वोत्तम नमूना है । इसका निर्माण सन १८९१ में हुआ था और इसके लिए कोष की व्यवस्था मलाया, बर्मा, स्याम तथा इडोनेशिया के बौद्धो ने की थी। इसके एक कक्ष में दया की देवी प्रतिष्ठित है, जिसके चारो ओर देवताओ और अर्हतो की मूर्तिया हैं। इस मदिर मे दो तालाब हैं, जिनमे छोटे-बडे सैंकडों कछुवे मुह उठाये यात्रियो को देखते रहते हैं ।

दूसरे कक्ष में चारो दिशाओं के रक्षक चार देवताओ की प्रतिमाए हैं। एक ओर को सात मजिल का पगोडा है। उसमें बुद्ध की कई मूर्तिया हैं । मुख्य मदिर के पीछे एक विशाल मूर्ति है, जो भगवान बुद्ध के पिता की बताई जाती है ।

मदिर बडा सुन्दर और बृहत् आकार का है। बहुत-सी सीढ़ियो से चढकर ऊपर जाते हैं। बीच में बाजार भी पडता है, जिसमें तरह-तरह की चीजें मिलती हैं ।

मदिर से चलकर २-२॥ मील पर पिनाग का सबसे बडा आकर्षण 'पिनाग हिल' देखने गए। वहा पर २७२२ फुट ऊचे पर्वत-शिखर पर पहुचने के लिए बिजली की रेल की व्यवस्था की गई है। यह रेल डेढ लाख डालर की लागत से सन १९२३ में तैयार हुई थी। मलाया रेलवे के जानसन नामक एक महानुभाव ने दो वर्ष तक स्विटजरलैण्ड की ऐसी ही रेलो का अध्ययन करके इसका निर्माण किया। वैसे ऊपर जाने का असली आनन्द तो पैदल चलने में ही है, लेकिन बस या रेल से वह यात्रा कम समय मे हो जाती है। एक-एक डिब्बे की यह रेल लोहे के मोटे तारो की सहायता से चलती

है। खडी चढ़ाई चढ़ते समय ऐसा लगता है, मानो जादू के जोर से हम ऊपर जा रहे हैं। इधर-उधर देखने मे डर मालूम होता है। वार-वार लगता है अगर तार से डिब्बा अलग हो गया तो? हमने ड्राइवर को अपनी आशका वताई तो वह मुस्करा कर बोला, "इतने सालो मे आजतक कोई दुर्घटना नही हुई। वैसे तार से डिब्बा अलग हो ही नही सकता और अगर हो भी जाय तो भी डिब्बा लुढक कर नीचे नही जा सकता। पहियों की रोक के लिए पटरियो के साथ ब्रेक लगे हैं।"

कुछ ऐसी व्यवस्था है कि एक रेल ऊपर जाती है तो एक रेल नीचे आती है। रास्ते मे दोनो जहा एक-दूसरे से मिलती हैं, वहा पटरियो की ऐसी योजना है कि ऊपरवाली नीचे और नीचेवाली ऊपर चली जाती है। पहले आधे रास्ते में एक स्टेशन है। बीच के इस स्टेशन पर गाडी वदलनी पडती है। वाद के आधे रास्ते मे ६ छोटे-छोटे स्टेशन हैं।

ये रेले सवेरे ६-३० से चलनी शुरू होती हैं और रात को ९ वजे तक चलती हैं। ऐसी रेल मैंने स्विटजरलैण्ड के जूरिक नगर मे देखी थी, जो उत्लीवर्ग पर्वत-शिखर पर पहुचाती थी।

रेल से ऊपर गये। वहा एक रेस्ट्रा है, डाकघर है और वच्चो के खेलने के लिए मैदान है। वहां खडे होकर जव हम चारो ओर की दृश्यावली को मुग्ध भाव से देख रहे थे, एक तरुणी उस सारे सौंदर्य से इतनी अभिभूत दिखाई दी कि उससे अपना आतरिक उल्लास सभाला नही जा रहा था। कभी इधर जाती थी, कभी उधर; कभी अपने साथियो के साथ तस्वीर खिचवाती थी। वह जगह ही कुछ ऐसी है कि नीरस-से-नीरस व्यक्ति भी भावुकता के वशीभूत हो जाता है।

पिनाग का दूसरा वडा आकर्षण है पिनांग द्वीप की परिक्रमा। उसके लिए ४६ मील की सडक है, जिस पर यात्रियो की सुविधा के लिए वसें भी चलती रहती हैं। अगले दिन सवेरे ही परिक्रमा करने के लिए कार से रवाना हुए। शहर से वाहर होते ही भाति-भाति के दृश्य दिखाई देने लगे। कई मील तक सड़क समुद्र के किनारे-किनारे जाती है। उस पर चलते हुए मछुओ की वस्ती, नारियल के पेडो का सागर के जल में प्रतिविम्ब, गावो की चित्रों जैसी वनावट, वच्चो-वडों की जल-क्रीड़ाएं, कहीं कलकल-निनाद करते

प्रपात तो कही रबर के कलापूर्ण पेड आदि को देखकर ऐसा जान पडा मानो चित्रपट के दृश्य हमारी आखो के सामने हो । कही-कही सडक सागर से विमुख होकर पर्वतो की चढाइयो से नाता जोडती है । इस तरह भाति-भाति के दृश्य देखने को मिलते हैं ।

रास्ते मे सबसे बडी बस्ती बालिक पुलाउ की मिलती है । यो कहने को वह गाव है, लेकिन उसे छोटा-मोटा शहर कहना अधिक सगत होगा । इस बस्ती मे एक चीनी रेस्ट्रा मे चाय पी । उसकी सचालिका अखबार पढ़ने मे व्यस्त थी । बात की तो पता लगा कि राजनीति आदि कई विषयो मे उसकी बडी दिलचस्पी है ।

यहा से लेकर बाया लेपास तक समुद्र कही-कही ही दिखाई देता है । इस पार्वत्य क्षेत्र मे रबर के वृक्षो तथा प्रपातो की शोभा निराली है । बाया लेपास गाव का विकास हो रहा है । जगह-जगह पर रबर की पौध लगाई जा रही है और कई स्थानो पर रबर उद्योग के घरेलू केन्द्र भी हैं । कही-कही धान के खेत भी दिखाई देते हैं ।

राजधानी से कोई ६ मील पर सुगी क्लुआग मे एक ऐसा मदिर है, जिसे देखने का हमसे बार-बार आग्रह किया गया था । वह मदिर 'सापो का मदिर' कहलाता है । हमने सोचा कि मदिर की दीवारो पर साप बने होगे, लेकिन वहा पहुचकर जो देखा, उसकी सपने मे भी कल्पना नही की थी । हमारे देश मे नाग पूजने की प्रथा प्राचीनकाल से चली आती है । दीवारो पर नाग बना लिये जाते हैं और उनकी पूजा कर ली जाती है । लेकिन इस मदिर में तो जीवित साप थे—एक-दो नही, सैकडो । मदिर के बाहर बहुत-से चीनी भिखमगे थे, जो अपने हाथ मे टोप लेकर यात्रियो से पैसा मागते थे । उनसे जैसे-तैसे जान छुडा कर अदर गये तो बडा विचित्र दृश्य सामने आया । मदिर का पुजारी किसी अगरेज दम्पती को गमले के पौधे की शाखो पर लिपटे साप दिखा रहा था । आदमी साप को छूना चाहता था, पर स्त्री बार-बार उसका हाथ खीच लेती थी । मैंने आगे बढकर साप की पीठ पकड ली । साप ने मुह उठाया, फिर नीचा कर लिया । मैंने उस नौजवान से कहा, "डरो मत । ज्यादातर साप जहरीले नही होते । लो, छूना चाहो तो छू लो ।" पर उसकी पत्नी ने उसे छूने नही दिया ।

इस मदिर का निर्माण किसी चीनी पुजारी ने सन १८५० मे कराया था। कहते हैं, किसी यूरोपियन को उसने असाध्य रोग से अच्छा कर दिया था। उसी के उपलक्ष्य मे यूरोपियन ने उसे कुछ भूमि दे दी थी, जिस पर वह मदिर खड़ा किया गया। वहा सांपो को कोई मार नही सकता। सांपो के देवता चोर सू काग को वह मदिर समर्पित है। मदिर के अन्दर वेदी पर, अलमारियो मे, दरवाजो पर, छत के शहतीरो मे, साप-ही-साप दिखाई देते थे। वे सब जीवित थे। लेकिन उनमे से कोई भी हिलता-डुलता नही था। मैंने पुजारी से उसका कारण पूछा तो वह बोला, "इनमे दैवी शक्ति है।"

विष्णुभाई ने कहा, "दैवी शक्ति की बात छोडो। ठीक-ठीक बताओ, आखिर बात क्या है ?"

पुजारी बोला, "असल बात यह है कि यहा पर धूप आदि सुगन्धिया जलती हैं। उन्हीकी खुशबू से ये साप सुप्तावस्था मे रहते है। रात के समय इन्हे होश आता है, तब वे उतर-उतर कर नीचे आते हैं और अण्डे का रस पीकर फिर अपनी-अपनी जगह पर चले जाते हैं।

इसमे कोई शक नही, मदिर बड़ा शानदार था। उसमे अच्छी चित्रकारी हो रही थी। पर सापों का वहा इकट्ठा कर लेना लोगो के अधविश्वास से फायदा उठाने के अलावा और कुछ नही था। वह एक धधे की चीज़ थी। मदिर के पास ही जाली लगाकर एक घेरा बनाया गया था, जिसमे छोटे-बडे, मोटे-पतले सैकडो साप पडे थे, जैसे सो रहे हो। मदिर के लिए यही पर साप तैयार किये जाते है।

पिनाग द्वीप मे जितने धर्मावलम्बी हैं, उन सबने अपने-अपने मदिर बनाये है। उनके निर्माण मे भारत, श्रीलका, बर्मा, स्याम तथा चीन आदि की कला के उत्तमोत्तम नमूने मिलते हैं। इन मंदिरो की सख्या सौ से अधिक होगी। चीनी मदिरो के अतिरिक्त बौद्धो तथा हिन्दुओ के भी कई मदिर हैं और मुसलमानो की मस्जिदे है।

रात को एक चीनी सिनेमा का कुछ अश देखा। उससे पता चला कि चीनी फिल्मों का स्तर अभी बहुत नीचा है। फिल्म में सास-बहू का झगडा दिखाया गया था। अभिनय मे कोई कला नही थी।

हम कह चुके हैं, पिनाग मलाया का सबसे सुन्दर भाग है। पूरे द्वीप की

परिक्रमा करके और राजधानी के सारे दर्शनीय स्थलो को देखकर हृदय बडा प्रफुल्लित हुआ। लेकिन उससे भी अधिक प्रसन्नता वहा के मानवीय सौंदर्य को देखकर हुई। नर-नारी बडे ही स्वस्थ और सुरुचिपूर्ण रहन-सहन के जान पडे। व्यवहार में उनका-सा मिठास और कही मुश्किल से मिलेगा। मुस्कराहट का तो उनके पास अनन्त भण्डार था।

पिनाग मलाया के उत्तर-पश्चिमी तट पर ११० मील के घेरे मे छोटा-सा राज्य है। मलाया सघ का वह एक अग है। भूमध्य रेखा से उत्तर मे ५ अक्षाश पर है। वहा का जलवायु बडा अच्छा है। दिन मे वहा का तापमान ८०-९० डिगरी रहता है, रात को ७०-८० डिगरी हो जाता है। सन १८७६ से वह खुला बन्दरगाह है। उत्तरी मलाया का वह महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र है। बाजार में घूमते हुए हमने देखा कि सिंगापुर की भाति वस्तुओ पर चुंगी न होने के कारण घड़ियो, कैमरो आदि सामान से दुकानें अटी पड़ी थी। सब तरह की चीजें मिल जाती हैं। राजधानी की आबादी लगभग तीन लाख है, जिसमे ५०-६० हजार भारतीय हैं। अधिकाश भारतीय रबर-उद्योगो में मजदूरी करते हैं।

मक्खनलालजी की प्रेरणा से प्रेमकुमार ने दो दिन मे सारा पिनाग दिखा दिया। अकेले तो हम उसे एक सप्ताह में भी नही देख पाते।

मक्खनलालजी की पत्नी की आत्मीयता ने हमारे प्रवास को और भी स्मरणीय बना दिया। हमारे खाने-पीने का उन्होंने घर के स्नेहीजन की भाति ध्यान रखा और हमें किसी प्रकार की असुविधा नहीं होने दी।

तीसरे दिन हम अपनी वापसी यात्रा पर रवाना हुए।

: ४८ :

स्वदेश वापसी

हमारा जहाज दोपहर को पौने ग्यारह बजे छूटता था। आराम से तैयार होकर पौने दस बजे घर से चले। मक्खनलालजी और प्रेमकुमार पहुचाने आये। हवाई अड्डा शहर से कोई १२ मील है। वहा हमारा सामान तुला। चुगीवाले ने सूटकेस खुलवाये। उन्हे देखते हुए बोला, "आप लोग कहा से आये है?"

विष्णुभाई ने जवाब दिया, "हिन्दुस्तान से।" फिर हँसते हुए उन्होने कहा, "हम लोग लेखक हैं। गरीब लेखको पर चुगी के लिए क्या होता है!"

उसने हमारी ओर देखा और बोला, "आप लोग गरीब हैं और हवाई जहाज से सफर कर रहे हैं। गरीबो को ऐसा सौभाग्य मिलने लगे तब तो कहना ही क्या! पर मुझ जैसा गरीब आदमी तो उसकी कल्पना भी नही कर सकता!"

सारी बात वह एक सास मे कह गया। उसकी वाणी की गभीरता और चेहरे की उदासी से लगता था, वह अपनी गरीबी से बेहाल है। सामान देख चुका तो हमने कहा, "कभी भारत आइये।"

बडी बेबसी से उसने जवाब दिया, "इस जिन्दगी मे तो शायद ही इतने पैसे हो सके कि आपके देश मे आ सकू।"

जिस विमान मे चले, वह मलायन एयरवेज का था। उसमे एक-दूसरी से सटी कुल २८ सीटे थी, जिनमे से तेरह खाली पडी थी। सीटें आरामदेह नही थी, पर विमान की परिचारिका मलायी तरुणी बड़ी ही फुर्तीली और रूपवती थी। बडी ही सौम्य। बात-बात पर मुस्कराती थी।

विमान के उडान भरने के बाद पेटी बाधने की विधि बताई गई, पायलट और परिचारिका के नामो की घोषणा हुई और एक पर्चे पर सूचना दी गई कि हम ९००० फुट की ऊचाई पर उड रहे हैं, विमान की गति १८० मील फी घंटा है और रास्ते मे हमे अमुक-अमुक नगर आदि मिलेंगे।

समय होने पर खाना आया। पहले सूप, फिर भोजन। डबल रोटी, मक्खन, माग आदि। अत में कॉफी।

मौसम साफ रहा, लेकिन बैंकाक के आते-आते एकदम वादल घिर आए और वारिश शुरू हो गई। ढाई वजे बैंकाक पहुचे। उस समय वहा की घडी मे २ वजे थे। विमान मे उतर कर भीगते हुए इमीग्रेशन विभाग मे पहुचे। ५ बजकर कुछ मिनट पर यूनियन ऑव वर्मा एयरवेज (यू० वी० ए०) के विमान से जाने का हमारा वुकिंग था, लेकिन इमीग्रेशन वालो ने वताया कि उस समय कोई भी विमान नही जाता और हम अगले दिन सुवह जा सकेंगे। वडी झुझलाहट हुई। विमान नही था तो पान अमेरिकन एयरवेज वालो ने वुकिंग कैसे किया ? पान अमेरिकन के दफ्तर पहुचे। अधिकारी ने टिकट देखकर कहा कि शाम को विमान जाता जरूर था, लेकिन इस महीने की पहली तारीख से वन्द हो गया। अव ? अधिकारी वोला, "आपका वुकिंग सिगापुर वालो ने किया है। उन्ही की गलती है। मैं कुछ नही कर सकता।" विष्णुभाई को गुस्सा आ गया। उन्होंने कहा, "आप लोगो के दफ्तर अलग हैं, पर कम्पनी तो एक है। आपके सिगापुर के आदमी ने भूल की है तो क्या आपको उसे ठीक नही करना चाहिए ?" जव वहुत झिकझिक हुई तो वह इस वात के लिए तैयार हुआ कि रात को ८॥ बजे कैथे-पैसिफिक एयरवेज के जहाज मे हमें जगह दे दे। हमने कहा, "ठीक है, उसी मे वुकिंग कर दो, लेकिन एक केविल हमारे मित्रो को रगून भेज दो कि हम यू० वी० ए० से से न आकर सी० पी० ए० से आ रहे है।" वह वोला, "मैं केविल नही कर सकता।"

हम दोनो वहुत तग आ गए थे। विष्णुभाई ने कहा, "यह तुम्हारी वडी ज्यादती है। एक तो गलती करो, फिर आखें दिखाओ। हम तुम्हारी कम्पनी को लिखेंगे।"

लम्वी-चौडी वहस के वाद वह इतना करने के लिए राजी हुआ कि अपने रगून-स्थित कार्यालय को इस सूचना के साथ केविल भेज देगा कि वह हमारे अमुक मित्र को हमारे पहुचने की खवर दे दे। केविल लिखवाकर हम अपने सामान के पास आ गए।

बैंकाक के मित्रो को सिगापुर से चिट्ठिया लिख दी थी। अत-

प० रघुनाथ शर्मा, स्वामी शासन रश्मि, मुनीश्वरसिंह, जगदीशसिंह आदि वहा मौजूद थे। सब लोग रेस्ट्रा मे बैठकर कॉफी पीते-पीते यात्रा के हाल सुनते रहे। उन्हें इस बात की बडी खुशी थी कि हम इतने देशों की अच्छी तरह से यात्रा कर आए और एक बार उन लोगो से फिर मिल लिये।

विमान जाने मे देर थी। उन लोगो ने विदा ली। वे असल मे इस विचार से आये थे कि हमे कुछ घटो के लिए शहर ले जायगे, लेकिन एक तो मौसम खराब था, दूसरे हमने सोचा कि उन लोगो को हमें पहुचाने के लिए फिर आना पडेगा और बेकार की भागदौड रहेगी, इसलिए हमने उनसे छुट्टी ले ली। उनके चले जाने पर मुसाफिरखाने मे बैठकर वहा के दृश्य देखने लगे। कोई बड़े घर की स्यामी लडकी अपने पति के साथ लन्दन जा रही थी। उसे पहुचाने के लिए बीसियो सगी-साथी आये थे। उनकी वजह से बडी चहल-पहल हो गई।

समय काटना मुश्किल हो रहा था। मच्छर इतने कि एक जगह बैठना असंभव। अचानक पूना का एक मराठा मिल गया। वह हमारे पास आकर बैठ गया। काफी दिनो से वह वहा सैस (स्कैण्डीनेवियन एयर सिस्टम) के कार्यालय मे मिस्त्री का काम कर रहा था। आठ बरस की उम्र मे वह विमाता के व्यवहार से तग आकर और पिता से झगडकर पूना से बबई चला गया था। कई साल तक वहा भटकने के बाद फौज मे भरती हो गया। ट्रेनिंग मिलने पर लाम पर चला गया। सीरिया, इटली, फ्रास, जर्मनी आदि देशो मे होता हुआ अन्त मे सिंगापुर पहुचा। कुछ दिन कैद रहा। फिर आजाद-हिंद फौज मे काम किया।

यह सब सुनकर विष्णुभाई ने पूछा, "नेताजी के बारे मे तुम्हारी क्या राय है?"

उनके इस सवाल पर उसकी आखें चमक उठी। बोला, "नेताजी! उन जैसा आदमी मिलना मुश्किल है। बडे बहादुर थे वह। छोटे-बड़े सबको बराबर समझते थे। एक दिन उनके रसोइये ने उनके लिए कुछ खास चीजे तैयार कर दी। नेताजी बहुत नाराज हुए। बोले, जैसा सबके लिए खाना बनता है, वैसा ही मेरे लिए बनना चाहिए। वाह, क्या आदमी थे! हिन्दू-मुसलमान सब मिलकर रहे, इसलिए गाय और सूअर दोनो के मास के पकने

पर उन्होंने रोक लगा दी ।"

थोड़ी देर रुककर फिर कहने लगा, "क्या-क्या सुनाऊं आपको ! उनका-सा दिल किसके पास है ! अपने देश की आजादी के लिए हर घड़ी जान देने को तैयार रहते थे। सिंगापुर के एक बूढे आदमी ने उन्हें अपना सारा पैसा दे दिया। जानते हैं, नेताजी ने क्या कहा ? बोले, पैसा ही नही, वतन के लिए तन और मन भी देना चाहिए। उनकी एक-एक बात याद आती है। मेरे घर मे नेताजी की तस्वीर टगी है। रोज दिया जलाकर उनके हाथ जोड़ता हू। उन जैसा आदमी दुनिया में नही मिलने का।"

अत मे उसने कहा, "घर की बडी याद आती है। पिता को छ चिट्ठियां लिखी। एक का भी जवाब नही आया। शायद वह अब नही रहे।"

मैंने पूछा, "यहा तुम अकेले हो ?" बोला, "नही, मैंने लाओस की लडकी से ब्याह कर लिया है। बारह साल का लडका है। सत्तरह साल से अपने देश से बाहर हूं। किस्मत का खेल है !"

और बहुत-सी बाते कहकर वह चला गया। हम उठकर रैस्ट्रां में गये और खा-पीकर ८ बजे कस्टम मे जाकर वहा की खाना-पूरी कराई। उसी समय सी० पी० ए० की एक स्यामी लडकी हमारे पास आई। बोली, "आपको याद होगा, आज जब आप विमान से उतरे थे तो मैंने आपसे कहा था, शहर चलिये, पर आपने जवाब दिया था कि पहले टिकट का ठीक कर लें।"

मैंने कहा, "टिकट के मारे तो बडी परेशानी हुई। अबतक सिर दर्द कर रहा है।" बात आगे चल पडी। मैंने पूछा, "यहा कबसे काम कर रही हो ?" बोली, "डेढ साल से। हाई स्कूल पास करके पढना छोड देना पडा।" मैंने पूछा, "क्यो ?" बोली, "घर मे भाई-बहन बहुत हैं। मैं सबमे बड़ी हू। पिताजी की माली हालत ऐसी नही थी कि आगे पढा सकते। घर का खर्चा चलाने के लिए मेरा काम करना जरूरी था।"

मुझे याद आया, पिनाग के आयर इटम के मदिर मे गाइड का काम करने वाले १२-१३ बरस के चीनी लडके ने भी यही बात कही थी। उसके सात भाई और तीन बहनें थी। ऐसी और भी कई मिसालें सामने आई थीं। उनसे लगा कि उधर गरीबी अधिक है और बहुत से लडके-लडकियो को छोटी उम्र से ही रोजी की चिन्ता करनी पड़ती है।

जहाज का टिकट हमें बड़े अहसान के साथ मिला था, लेकिन जब विमान मे बैठने गए तो देखते क्या हैं, चार इजन के उस भीमकाय जहाज मे ७ जहाज बदलनेवाले यात्री थे, ५ दूसरे।

८.५० पर जहाज चला। काले बादलो ने रात को गहन अधकार में लपेट रखा था। बाहर सिवा अधेरे के कुछ भी दिखाई नही देता था। सारे यात्री ऊंघते रहे और हिचकोरो के मारे बेचैनी अनुभव करते रहे।

बर्मा के समय के अनुसार १० बजे रंगून पहुचे। कस्टम की खाना-पूरी मे एक घटा लग गया। जब हमारी एक-एक चीज खुलवाकर देखी जा रही थी, उसी समय किसी ने आकर सूचना दी कि बाहर हमारे मित्र राह देख रहे हैं। कस्टम से छुट्टी पाकर बाहर आये। डा० ओमप्रकाश, श्री सत्यनारायण गोयन्का, बालचन्दजी आदि मित्र मौजूद थे। पूछने पर मालूम हुआ कि हमारे इस विमान से आने की उन्हे बैंकाक से सूचना नही मिली थी। उन्होने स्वय ही फोन करके हवाई अड्डे से पता कर लिया था। पान अमेरिकन वालो ने हमे झासा दे दिया।

साढे ग्यारह बजे सत्यनारायणजी के निवास पर पहुचे। ऐसा जान पडा, मानो लम्बी यात्रा के बाद अपने घर आ गए हो।

रंगून मे चार दिन रुकना पडा। पिछली बार कई सस्थाए देखने से रह गई थी। उनके अधिकारियो का आग्रह था कि लौटने पर हमारा कार्यक्रम ऐसा बनाया जाय कि हम उन्हें अवश्य देख लें। फिर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संचालक, जिन्होंने हमें अपने वार्षिक समारोह मे भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया था, विदाई-सभा करना चाहते थे। डा० ओमप्रकाश, सत्यनारायणजी तथा अन्य मित्रो का इतना आग्रह था कि हमे रुकने के लिए विवश होना पडा। डी० ए० वी० स्कूल, आर्य समाज, बगाली लेखक और शिल्पी मजलिस, हिन्दी साहित्य सम्मेलन आदि की सभाओ तथा मित्रो के मिलने-जुलने मे वे दिन कब निकल गए, पता भी न चला। सम्मेलन के विदाई समारोह मे हम पर जिस स्नेह की वर्षा हुई, वह शब्दो मे व्यक्त नही की जा सकती।

हम १२ अप्रैल को रगून पहुचे थे और एक महीने विभिन्न स्थानो मे घूमकर दूसरे देशो मे चले गए थे। लौटते में फिर चार दिन वहा रहे।

१० जून को रगून के मित्रो से विदाई लेते समय हम सबके दिल भरे हुए थे। मित्रो की बहुत बडी टोली हमे छोडने हवाई अड्डे पर आई। अल्प-भाषी हमारे डा० ओमप्रकाश तो भावना के इतने वशीभूत हो गए थे कि थोडा-बहुत जो बोल सकते थे, वह भी नही बोल पाते थे। फिर भी उन्होंने शब्द बटोरकर कहा, "पिछली बार यहा से जाने पर आप लोगो ने पत्र भेजने मे बडी देर कर दी थी। अब दिल्ली पहुचते ही चिट्ठी लिखना न भूलिये।" उनकी सुयोग्य पत्नी डबडबाई आखो से कहती थी, "फिर आइये। अगली बार घर के सब लोगो को साथ लाइये।" सत्यनारायणजी तो कवि ठहरे। उनका भावुक हृदय मौन की भाषा मे जाने क्या-क्या कह रहा था! उनकी पत्नी ने अपने कुटुम्बी जनो की भाति हमारी सुविधाओ का ध्यान रखा था। वह एक ओर को खडी मन-ही-मन हमारे लिए मगल-कामनाए कर रही थी। सम्मेलन के नये अध्यक्ष जोशीजी, सम्मेलन के मत्री श्यामलाल 'भारती', 'प्राचीप्रकाश' के सम्पादक चन्दूलाल टक्कर आदि अपनी-अपनी भावनाए व्यक्त कर रहे थे।

समय होने पर हम कस्टम मे पहुचे। पासपोर्ट, सामान आदि को देखने मे आधा घटा लग गया। ज्योही छुट्टी पाई कि एक बर्मी सज्जन ने आकर कहा, "बाहर आप लोगो को बुलाया जा रहा है।" एक बार कस्टम में आने पर फिर बाहर नही जाते। हम थोडा हिचके, पर कस्टम के अधिकारी ने हमारी हिचक को देखकर कहा, "कोई बात नही है। मित्रो से मिल आइये।"

बाहर कई मित्र जो बाद में आये थे, मालाए लिये खडे थे। उनसे मिलकर और सबसे विदा लेकर जैसे ही अन्दर पहुचे कि विमान में बैठने की घोषणा हुई। ८ बजे वहा से रवाना हुए। कुछ दूर तक मौसम साफ रहा, फिर बादल घिर आए। सारे रास्ते वर्षा होती रही। बेचारे वाईकाउण्ट जहाज को बराबर बादलो से जूझते रहना पडा। १० ॥ बजे कलकत्ते पहुचे। भारतीय समय के अनुसार उस समय ६॥ बजे थे।

कस्टम में घटे भर बैठे रहना पडा। गर्मी के मारे बुरा हाल हो रहा था। अधिकारी से कहा कि हमें जल्दी ही निबटा दो वह बोला, "इस समय कई जहाज आते हैं। हमें उन सबको देखना है।"

क्या करते! चुपचाप मन मारे बैठे रहे। बाद में अधिकारी ने हमें

वुलाया। पूछा, "चुगी का कोई सामान तो नही है ?" हमने कहा, "नही।" बोला, "घडी है ?" हमने दिखादी। उसने पेटी खुलवाई, पर देखा कुछ नही। बेकार इतना समय वरबाद कर दिया।

वाहर आकर चैन की सास ली, पर अब तो दिल्ली लौटने की जल्दी थी। पहली ट्रेन से रवाना होकर रास्ते मे कुछ घटे जेसिडीह रुकते हुए घर आ गए। उस स्मरणीय यात्रा के सानद समाप्त होने पर सबको बडी खुशी हुई। हमारी खुशी का तो कहना ही क्या था!

वर्मा की राजधानी रगून का एक दृश्य

वनभोज-प्रिय एक बर्मी परिवार

प्रवास मे बर्मा के कुछ बौद्ध भिक्षु

रगून का विश्वविख्यात श्वे डगौन पगौडा

रगून की विशाल महापासन
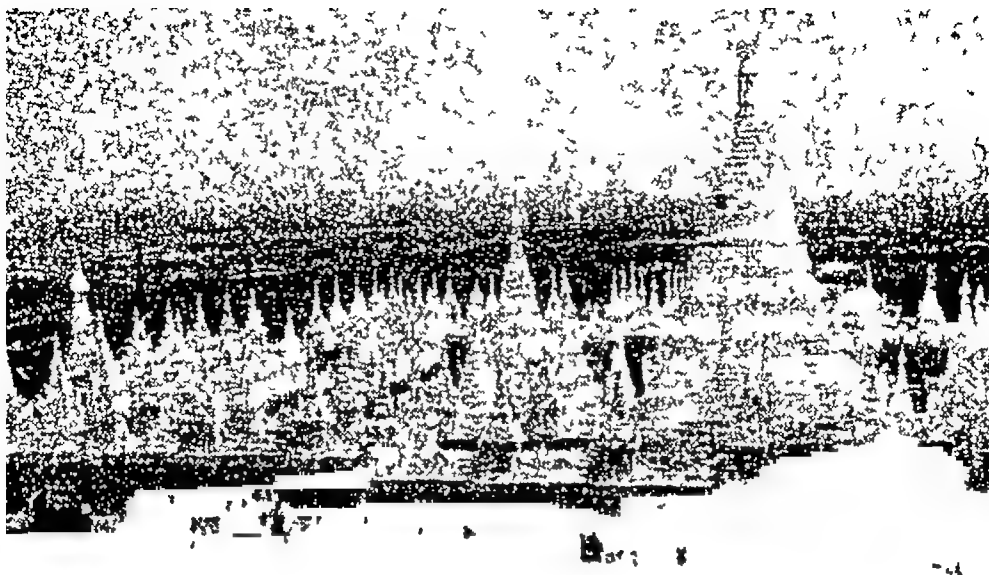
माडले पहाडी की तलहटी मे अवस्थित बौद्ध मन्दिर

पैगू की मनोज्ञ बुद्ध प्रतिमा
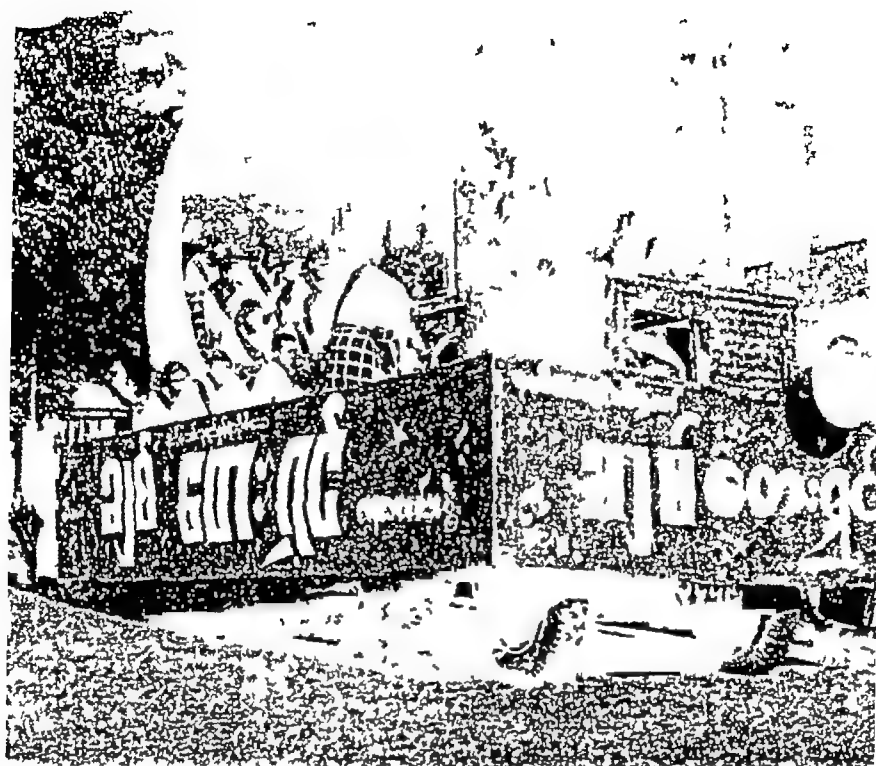
वर्मा मे होलिकोत्सव की एक सास्कृतिक झाकी

सर्वोत्तम झाकी को पुर

वैकॉक का
एमराल्ड बुद्ध का
सुप्रसिद्ध मन्दिर
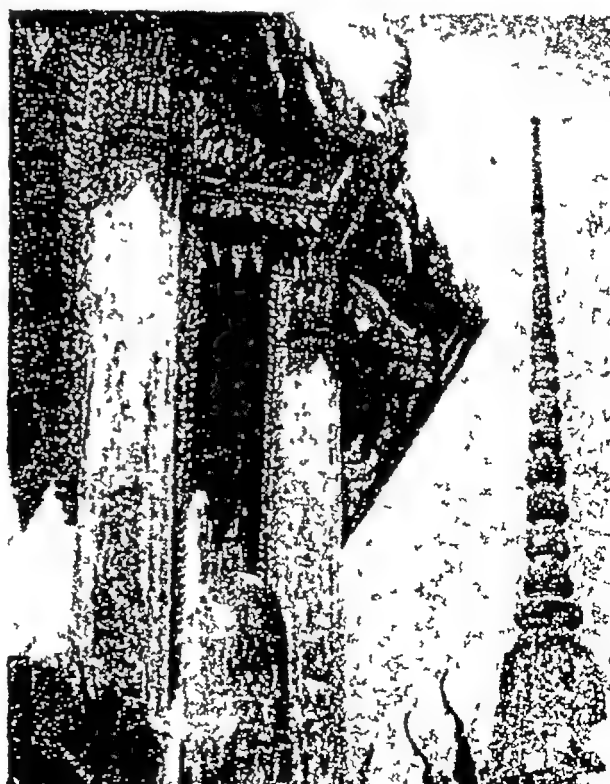
वैकॉक के वाटफो
(वौद्ध मदिर) मे
शिवपिण्डी

थाईलैण्ड की भूतपूर्व राजधानी अजुध्या नगरी का प्रसिद्ध बौद्ध मन्दिर

थाई विद्वान
प्रिंस धानी निवात
और
फ़ाया अनुमान रचथौन

माडले का तीर्थ
तिलक-स्मारक

थाई भारत
कल्चरल लॉज का
पुस्तकालय
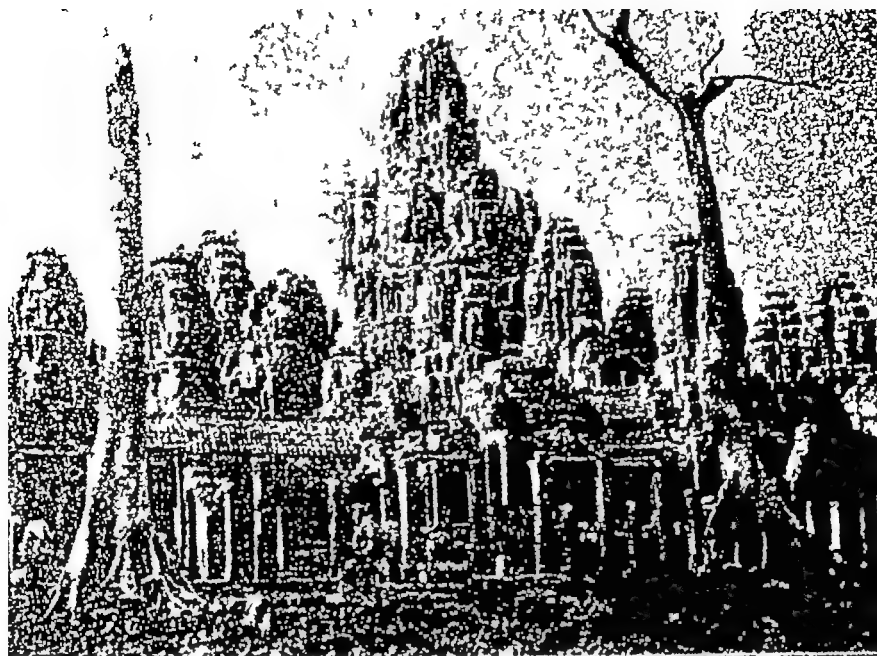
कला का अपूर्व केन्द्र अकोर वाट

मदिर की दीवारो पर अद्वितीय अलकरण
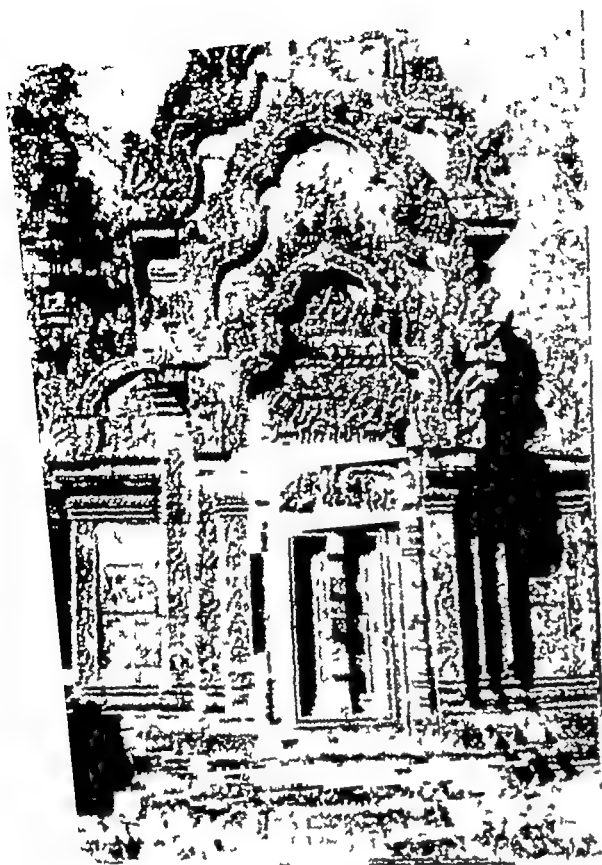
बेतई सिरई का कलापूर्ण द्वार
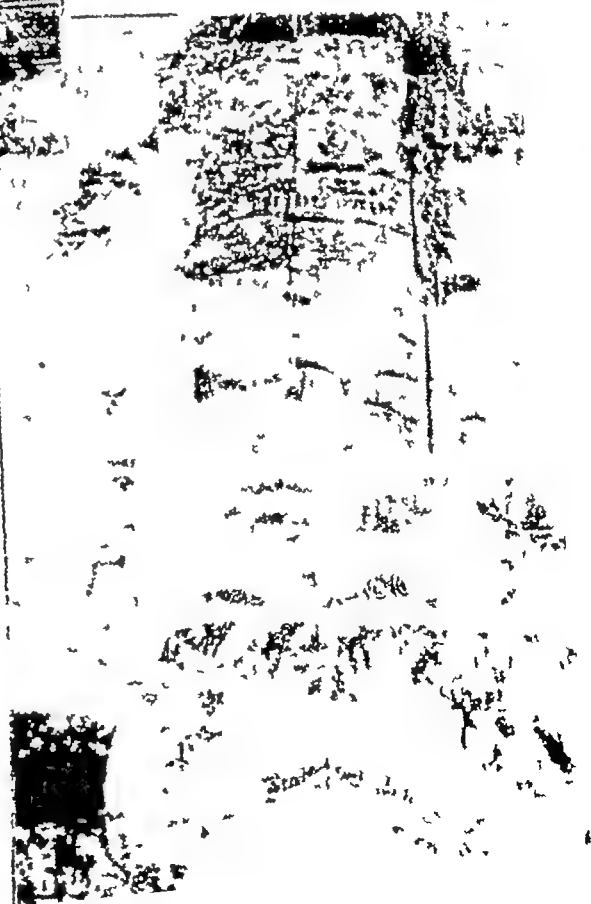
अवलोकितेश्वर की मूर्त्ति
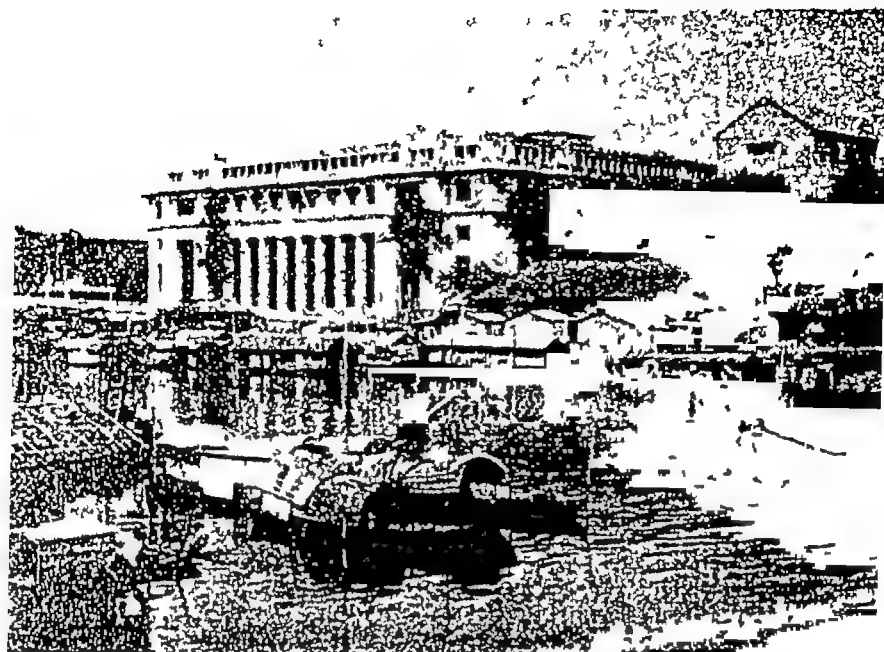
दक्षिण वियतनाम की राजधानी सैगाव के दो दृश्य
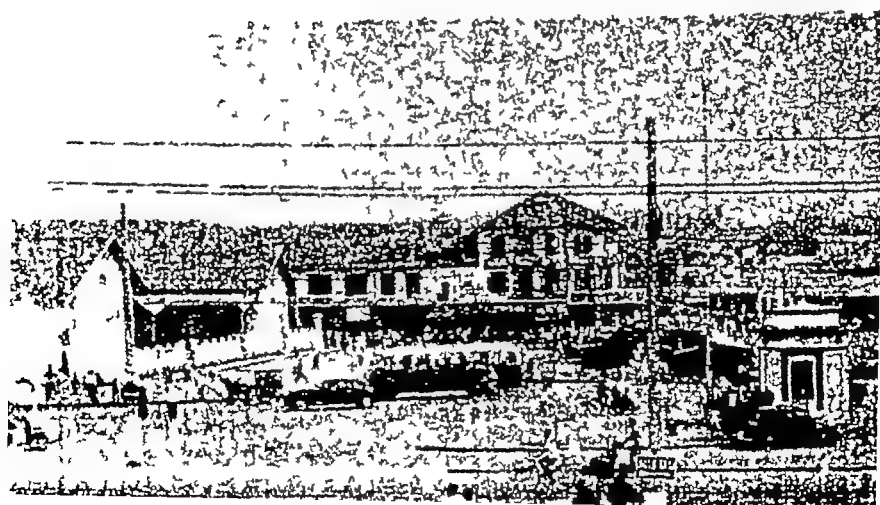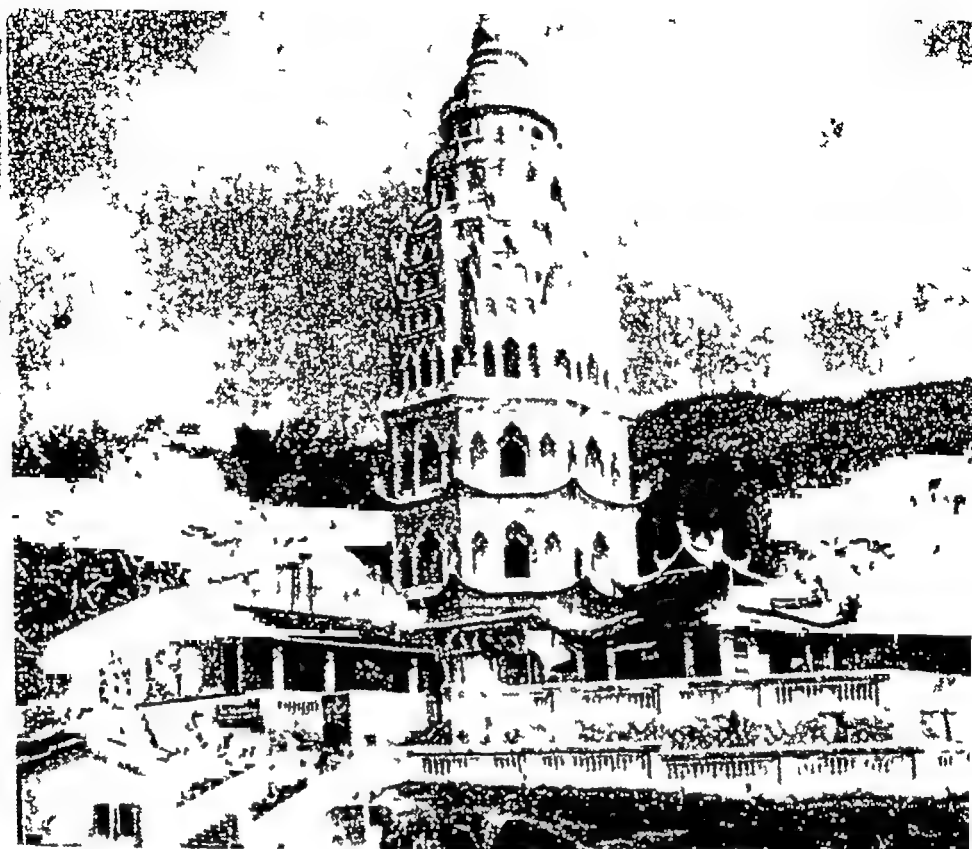
↑ पिनाग का सर्वोत्तम मंदिर

↓ पिनाग की एक दर्शनीय
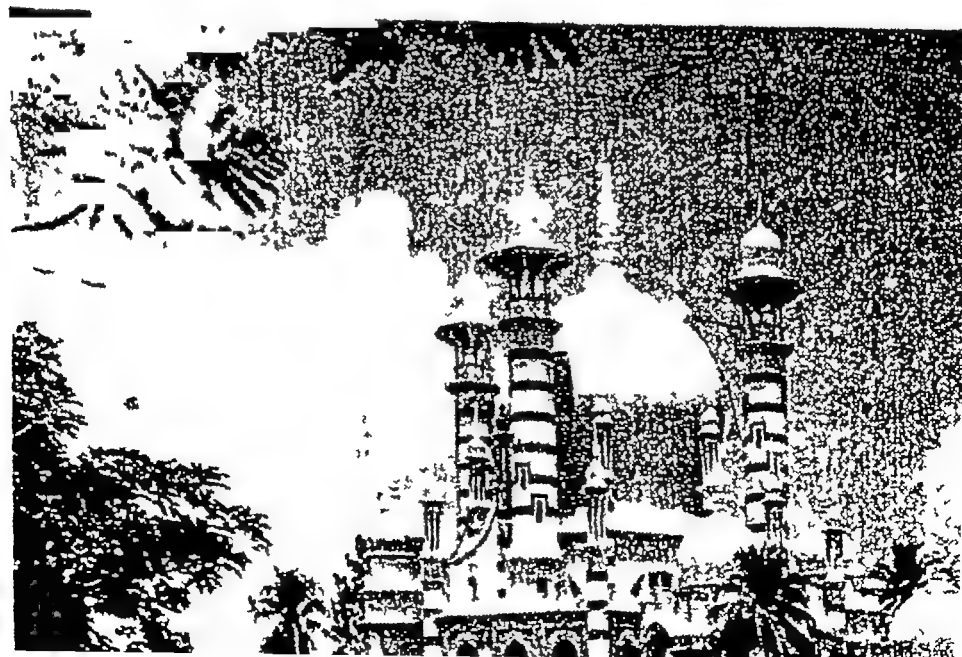
क्वालालामपुर के सास्कृतिक उत्सव के मनोहारी दृश्य
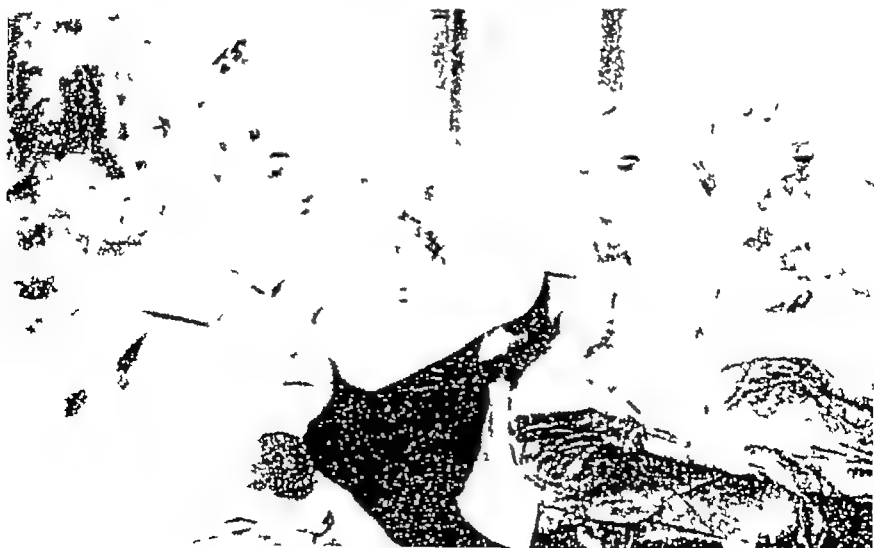
पिनाग का
सर्प मंदिर

पिनाग की
तारोही रज्जु रेल

काबुल नगरी

अमानुल्ला की कोठी

पगमान
का
एक कलापूर्ण भवन

गार

शाही उद्यान
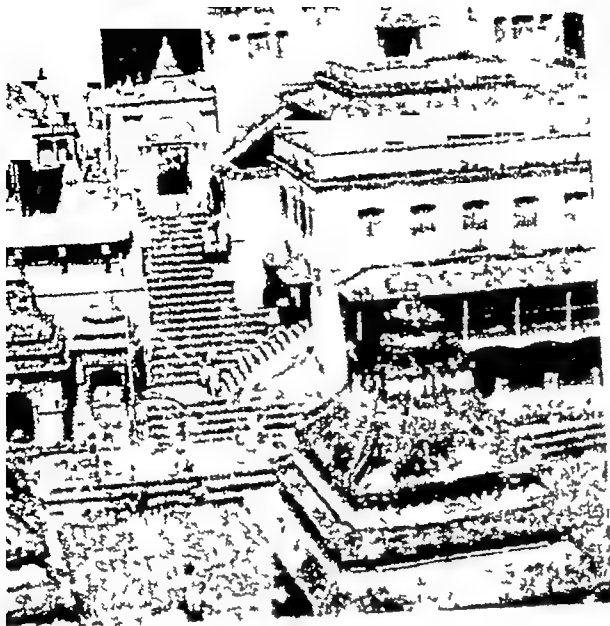
नेपाल की
राजधानी
काठमाण्डू मे
पशुपतिनाथ का
गौरवशाली मंदिर

काठमाण्डू नगरी

अफगानिस्तान
और
नेपाल में

: ४६ :

मेरी पहली विदेश-यात्रा

पिछले आठ सालो मे मुझे दुनिया के ३०-३२ देशो मे घूमने का मौका मिला है और अब ऐसा लगता है कि भारत से बाहर जाना मामूली-सी बात है, लेकिन जब मैं अपनी पहली विदेश-यात्रा की याद करता हू तो आज भी रोमाच हो आता है ।

मेरी यह पहली यात्रा अफगानिस्तान की थी, बल्कि यह कहना ज्यादा सही होगा कि मैं जा तो रूस रहा था, लेकिन अफगानिस्तान जाना पडा, क्योकि काबुल पर एक जहाज को छोडकर दूसरा जहाज लेना था । सयोग कुछ ऐसा हो गया कि जाते समय लगभग तीन दिन और वापसी मे भी उतने ही दिन वहा ठहरने का मौका मिल गया ।

दिल्ली से रवाना होने से पहले इतना तो निश्चित था कि अफगानिस्तान जाना ही होगा, इसलिए वहा का वीसा यहा से ले लिया था । अफगानिस्तान की सबसे पहली छाप मेरे मन पर यह पडी कि अपनी भाषा के लिए वहा के शासको मे बडा मान है । वीसा उन्होंने अपनी लिपि और अपनी भाषा मे दिया ।

दिल्ली से रूस की राजधानी मास्को को अब रास्ते मे बिना कही रुके सीधा विमान जाता है, कोई-कोई जहाज ताशकद रुक कर जाता है, लेकिन सन १९५७ मे प्रत्येक विमान काबुल होकर जाता था । इसलिए मैंने अपना टिकट दिल्ली से काबुल और काबुल से तरमेज तक का बनवाया । तरमेज अफगानिस्तान और रूस की सरहद पर, आमू-दरिया के किनारे, एक छोटा-सा कस्बा है । रूस के अधिकारियो से तय हुआ था कि मुझे तरमेज पर रूसी जहाज मिल जायगा और वहा से मैं एक प्रकार से रूसी सरकार का मेहमान हो जाऊगा । आगे उन्हींकी जिम्मेदारी होगी कि लौटते समय मुझे तरमेज पहुचा दें । इसी कार्यक्रम के अनुसार मैंने दिल्ली से तरमेज तक का वापसी टिकट लिया था ।

कावुल वैसे तो कई कम्पनियो के जहाज जाते थे, लेकिन कई दिन तक उनमे सीट खाली नही थी । जैसे-तैसे आर्याना अफगान एयर लाइन्स के जहाज मे जगह मिली और उससे ७ अगस्त (१९५७) को सवेरे ७-१० पर सफदरजग हवाई अड्डे से रवाना हुआ । मन कुछ चिंतित-सा था, जैसा कि पहली यात्रा पर जाते समय हुआ करता है । सबसे अधिक हैरानी इस वात से थी कि मेरे पास कुल जमा २७० रुपये थे और यह रकम विदेश-यात्रा की दृष्टि से वहुत ही नाकाफी वताई जाती थी । विदेशी मुद्रा को लेने मे उन दिनो काफी कठिनाई थी । आज तो और भी अधिक कठिनाई है । अतः मैंने अपनी सरकार से एक भी अतिरिक्त कौडी की अनुमति नही चाही, हालाकि मागता तो कुछ-न-कुछ सरकार मजूर कर ही देती ।

जहाज शायद डकोटा था । उसमे अधिक यात्री नही थे । कुल चार या पाच थे । वाकी सीटो पर वडी-वडी पेटिया रखी थी । उन्हें देखकर मुझे वडा अजीव-सा लगा । हँसी भी आई । यह कपनी अफगान सरकार की है । मैंने मजाक मे स्टुअर्ड से पूछा, "क्यो जनाव, यह जहाज मुसाफिरो को ले जानेवाला है या सामान ढोनेवाला ?" लेकिन वह अफगान नौजवान कुछ बोला नही । या तो मेरी बात उसकी समझ मे नही आई, या उसके पास जवाव देने को कुछ नही था ।

मैं चुपचाप अपनी सीट पर वैठा कल्पना करने लगा कि आगे की यात्रा मे क्या-क्या कठिनाइया आ सकती हैं । इतने मे बरावर की सीट पर वैठे हिन्दुस्तानी सज्जन ने पूछा, "कहा जाओगे ?"

उनकी शक्ल-सूरत तथा उच्चारण से स्पष्ट था कि वह महाशय बगाली हैं । मैंने उनकी ओर देखकर उत्तर दिया कि मैं युवक समारोह मे शामिल होने मास्को जा रहा हू । वह बोले, "वाह, मैं भी तो वही जा रहा हू ।"

उनकी बात सुनकर अच्छा लगा । सफर मे एक से दो भले । चर्चा चलने पर मालूम हुआ कि वह कलकत्ते के एक पत्र से सबद्ध थे और कभी-कभी पत्रो मे लिखते भी थे ।

पहला पडाव अमृतसर था । वहा ९ बजे पहुचे । अमृतसर का हवाई-अड्डा काफी बडा और साफ-सुथरा है । विमान के रुकते ही जलपान करने के लिए ले जाया गया । मेरे यह कहने पर कि मैं शाकाहारी हूं , मुझे पूड़िया

और साग खाने को मिले ।

चालीस मिनट ठहरने के उपरान्त जहाज आगे बढा । कुछ दूर निकले कि किसी ने कहा, "अब पाकिस्तान पर उड रहे है । कुछ ही मिनटो मे लाहौर आ रहा है ।" हमने खिडकी से झाक कर देखा, नीचे पतली रेखा-सी रावी नदी बह रही थी । उसके बाद लाहौर आया । उसे देखकर मन दौडने लगा—कुछ ही साल पहले तक लाहौर भारत का बडा महत्वपूर्ण नगर था । लोग उसकी शान-शौकत पर मुग्ध थे, पर राजनीति मे जो न हो जाय, सो थोडा है । देश बट गया । लाहौर चला गया । और न जाने क्या-क्या चला गया । पर उस सबकी याद ही आज लोगो के दिलो मे शेष रह गई है ।

मुलतान, डेरा इस्माइल और सिन्धु नदी ने कल्पना को और भी उभार दिया । कोई डेढ घण्टे पश्चिमी पाकिस्तान पर उडते रहे । मन भी अपनी उडान लेता रहा । प्राय सभी कम्पनियो के जहाजो मे सूचना दी जाती है कि जहाज इतनी ऊचाई पर उड रहा है, उसकी रफ्तार यह है, अमुक नगर, पर्वत, नदी या और कोई विशेष स्थान दाए-बाए आनेवाला है । आदि-आदि, पर इस विमान मे ऐसी कोई व्यवस्था नही थी । अफगानी स्टुअर्ड से कुछ भी पूछते थे तो एक ही जवाब मिलता था, "मुझे पता नहीं ।" उसके मुह से बुरी तरह प्याज-लहसन की गध आती थी ।

मैदान पर विमान कुछ निचाई पर रहा, लेकिन जैसे ही सुलेमान पहाड शुरू हुआ कि वह बहुत ऊचा उठ गया । ऊपर निर्मल आकाश था और नीचे बादलो के रुई जैसे फाये फैले थे । उनके झरोखो से सुलेमान पर्वत की हरियाली नीचे दिखाई देती थी ।

सुलेमान की चोटियो को पार करते समय अक्सर कोहरे का सामना करना पडता है । उसकी सबसे ऊची चोटी, जिसे 'तख्ते-सुलेमान' कहते हैं, पार करते-करते तो कोहरा बहुत ही घना हो जाता है । कभी-कभी मौसम इतना बिगड जाता है कि विमान को लौट आना पडता है । पार हो गए तो कहा जाता है, "तख्ते-सुलेमान जीत लिया ।" कहने की आवश्यकता नही कि विमान चालक की यहा कस कर परीक्षा होती है ।

जहाज के अधिक ऊचाई पर जाने पर हवा के पतली हो जाने से, किसी मुसाफिर को सास लेने मे कठिनाई न हो, इसलिए प्राय सभी जहाज

प्रेशराइज्ड होते है और उनमे आक्सीजन की व्यवस्था रहती है। लेकिन इस जहाज मे ऐसा कोई इतजाम न था। हां, जहाज को गर्म करने का प्रबध था। जब हम सुलेमान-पर्वत को पार कर रहे थे, विमान के हीटर को खोल दिया गया। नतीजा यह हुआ कि हम सबने अनुभव किया, मानो तेज़ लू चल रही है। गर्मी के मारे सिर फटने लगा। स्टुअर्ड से कहकर हीटर की तेजी कम कराई, तब जान-मे-जान आई।

'तख्ते-सुलेमान' फतह कर लेने के बाद मौसम बदल गया। कोहरा और बादल हट गए। नीचे पहाड, उनकी उपत्यकाओं में बसी छोटी-छोटी बस्तिया, बहती हुई नदिया, हरियाली, यह सब साफ दीखने लगा। पहाडो पर आरभ मे काफी पेड थे। पर थोडा आगे निकलते ही पेड एकदम गायब हो गए। लगा, जैसे पहाड राख के हो, रूखे-सूखे।

बलूचिस्तान के कुछ हिस्से पर उडने के बाद जहाज थोड़ा निचाई पर आ गया। पूछने पर मालूम हुआ कि काबुल आ रहा है। चद मिनटो मे हवाई अड्डे परउतरे। उस समय हमारी घडी के हिसाब से दो बजे थे, वहा की घडी एक बजा रही थी, यानी वहा का समय भारत के समय से एक घण्टा पीछे था।

सुना है, काबुल के हवाई अड्डे मे इधर काफी सुधार हो गया है, पर उस समय तो वह कच्चा था। विमान के उतरने पर धूल का तूफान खडा हो जाता था। कई देशो के जहाज वहा आते थे, आर्याना कम्पनी के जहाज भी कई देशो को आते-जाते थे। इतना महत्वपूर्ण हवाई अड्डा होते हुए भी इतनी गई-बीती हालत मे क्यो था, समझ मे नही आया।

विमान से उतरकर सीधे कस्टम मे गये। कुछ देर राह देखने पर सामान भी आ गया। पासपोर्ट, वीसा आदि जाचे गए, अधिकारियो ने सामान खुलवाकर देखा। एक सज्जन बिना वीसा के आ गए थे। उनके साथ अधिकारियो की खूब झिकझिक हुई, पर मुसाफिर अब कर क्या सकता था! हारकर अधिकारियो को वही पर वीसा देना पडा।

हमे आशा थी कि काबुल पहुचते ही तरमेज जानेवाला जहाज मिल जायगा, और यही हमें बताया गया था, लेकिन पूछताछ की तो मालूम हुआ कि तीन दिन से पहले कोई जहाज नही है। क्यो? इसका जवाब कोई

नहीं दे सका । हमे मास्को पहुचने की जल्दी थी, पर जब जहाज ही नही था तो क्या करते ? हवाई अड्डे के अधिकारियो से बहुतेरी मगजपच्ची की, पर सब बेकार । मन मार कर हवाई अड्डे की बस मे सामान रखवाया और शहर पहुचकर 'काबुल होटल' मे ठहर गए । जहाज फौरन न मिलने से बडा बुरा लगा, लेकिन बाद मे जब काबुल मे और उसके आसपास घूमे तो अनुभव हुआ कि उस बुराई मे भी भलाई छिपी हुई थी ।

: ५० :

काबुल में

हवाई अड्डे से होटल जाने तक शहर का बहुत-सा हिस्सा आखो के आगे से गुजर गया। उसे देखकर मन पर ऐसी छाप पडी, जैसे हम किसी कस्बे मे हो। छोटे-छोटे मकान और वे भी बाबा आदम के जमाने के। लेकिन होटल पहुचे तो बस्ती का रूप बदल गया। अच्छा-खासा बाजार, मजे की इमारते, चौडी सडकें। दुमजिला होटल भी काफी बडा था।

एक कमरे मे सामान रखवा कर भोजन किया। सबसे ज्यादा परेशानी भाषा के कारण हुई। अधिकाश बैरे पश्तो या फारसी समझते थे। दो-एक को टूटी-फूटी अगरेजी आती थी, उनसे बात करने मे मैंने अपने उर्दू के ज्ञान का पूरा इस्तेमाल किया, पर सफलता न मिली। मागा कुछ, आया कुछ। शाकाहारी होने के नाते और भी हैरानी हुई। वहा जाने वाले अधिकाश व्यक्ति मासाहारी होते है।

भोजन के बाद कुछ देर विश्राम किया। फिर घूमने निकला। मौसम साफ था। काबुल छ-सात हजार फुट की ऊचाई पर बसा है, फिर भी वहा गर्मी थी। दिन में तो कुछ बेचेनी-सी रही। असल मे काबुल का मौसम बड़ा विचित्र है। जाडो मे सर्दी खूब पडती है, गर्मियो मे गर्मी के मारे बुरा हाल होता है। बर्फ के नज्जारे देखने को मिलते है। अफगानिस्तान मे एक कहावत है—वहा के निवासी बिना सोने के रह सकते हैं, पर बर्फ के बिना नही रह सकते। इसका कारण सभवत यह है कि बर्फ के पिघलने से उन्हें पानी मिलता है, जो खेती-बारी के लिए बडा जरूरी है। यदि बर्फ न हो तो खेती चौपट हो जाय।

काबुल अफगानिस्तान की राजधानी है। एशिया का पुराना और अफगानिस्तान का सबसे बडा नगर है। बस्ती दूर-दूर तक फैली है। सूखे पहाड़ो पर से दिन भर धूल उड़ती रहती है और कभी-कभी तो इतने जोर का अंधड आता है कि सडक पर चलना मुश्किल हो जाता है।

शहर का कुछ हिस्सा पुराना है, कुछ नया बना है । नई बस्ती को 'शोरे नो' यानी नया शहर कहते हैं । उसमे पुरानी बस्ती की बनिस्बत हरियाली अधिक है और मकान भी अच्छी किस्म के बने हैं । कुल मिलाकर ऐसा लगा कि नगर का बडी तेजी से विकास हो रहा है । नई सडकें बनी हैं, पुरानी चौडी की जा रही हैं, बिजली-पानी के साधनो का विस्तार हो रहा है । भारत और रूस दोनो का अफगानिस्तान पडोसी देश है । दोनो के ही सबध उसके साथ प्राचीन काल से रहे हैं । इसलिए दोनों ही उसके विकास मे हर तरह से मदद दे रहे हैं ।

वहा के पर्वतो मे खनिज पदार्थ खूब हैं । फलो का तो कहना ही क्या ! अगूर और सरदे के लिए तो वह सारी दुनिया मे मशहूर है । दूसरे देशो का माल भी वहा काफी परिमाण मे आता है । सूती और ऊनी माल का भी वहा अच्छा उत्पादन होता है । फिर भी वहा बेहद गरीबी है । गुरबत है । हर जगह भिखारी पीछा करते हैं । पहाडी इलाको मे गरीबी के साथ गदगी का अक्सर गठबधन होता है । काबुल इसका अपवाद नही है । वहा गरीबी और गदगी साफ दिखाई देती है । काबुल नदी, जिसके किनारे काबुल बसा है, साल के कुछ महीनो को छोड सूखी पड़ी रहती है । जहा-तहा गड्ढो मे जो पानी रह जाता है, उसका किस तरह उपयोग होता है, देखकर जी घबराता है ।

इतना होने पर भी वहा के लोगो का स्वास्थ्य बडा अच्छा है । अफगानो का कद ऊचा और शरीर मोटा-तगडा होता है । बच्चे ऐसे सुन्दर कि बढिया कपडे पहना दो तो शहजादे लगें । नाक-नक्श, रूप रग, सब बडे आकर्षक ।

काबुल की आबादी कोई ढाई-तीन लाख है, जिसमे पाच-सात हजार हिन्दुस्तानी है । हिन्दुस्तानी छोटे-मोटे धधे करते है । दुकानें चलाते हैं । पर उन्हें वे सुविधाए नही हैं, जो वहा के बाशिन्दो को हैं । बडी अजीब-सी बात है कि जो पुश्तो से वहा रहते हैं, वे अपने मकान नही बनवा सकते, मोटरें नहीं रख सकते ।

मेरे साथ वही बगाली सज्जन थे, जिनसे विमान मे भेंट हो गई थी । वह होटल मे साथ ही ठहरे थे । हम दोनो पहले शोरे नो, यानी नई बस्ती देखने गए । सरकारी और गैर सरकारी दफ्तर इसी हिस्से मे हैं । देखने

पर ऐसा जान पड़ता है, हम किसी आधुनिक नगर मे है। वहा से चलकर कांची की बस्ती देखी, जो नदी के किनारे बसी है। दूसरे हिस्सो की अपेक्षा यह कुछ अधिक साफ-सुथरी है। उसमे काफी बडा बाजार है।

भौगोलिक दृष्टि से अफगानिस्तान एशिया के मध्य मे बसा छोटा-सा देश है। रूस, चीन, फारस और भारत से वह घिरा है। रूस के साथ उसकी सीमा सात सौ मील लम्बी है। इस सीमा का निर्माण आमू-दरिया करता है। बाकी की सीमा, स्तभो तथा जहा-तहा प्राकृतिक जल-धाराओ से बनती है। यह सीमा पश्चिम मे जुल्फिकार दर्रे के पास से, हरीकुद नदी के दाए किनारे से, शुरू होती है और वाखान के पूर्व मे सरकुल झील पर समाप्त हो जाती है। उत्तरी भाग मे 'पामीर' के पास यह सीमा सबसे अधिक ऊंचाई पर है। पामीर दुनिया का सबसे ऊचा पठार है। उसे 'ससार की छत' की सज्ञा ठीक ही दी गई है।

पूर्व तथा दक्षिणकी सीमाए बराबर बदलती रही है। ड्यूराड रेखा पिछली दो शताब्दियो मे अफगानिस्तान को पख्तूनिस्तान से अलग करती रही है।

अफगानिस्तान पर्वतो तथा उपत्यकाओ का देश है। उसकी चोटिया बीस-बीस हजार की ऊचाई तक जाती हैं। एक लेखक ने लिखा है, "सैलानियो तथा पर्यटको के लिए अफगानिस्तान बड़े ही दिलचस्प देशो मे से है। उसकी ऊची-ऊची पहाडियो मे दुनिया की सबसे शानदार दृश्यावली देखने को मिलती है। उसकी घाटियो को घेरनेवाली चट्टानो से सैकडो झरने बहते हैं। उसकी हिम-मडित चोटिया गजब की हैं!"

अफगानिस्तान की सबसे महत्त्वपूर्ण पर्वत-माला हिन्दूकुश है, जिसके कारण कुछ लेखको ने अफगानिस्तान को 'हिन्दूकुश की भूमि' कहा है। उसकी लम्बाई ३७५ मील है और वह पामीर से लेकर बामियान दर्रे तक फैली है। उसके कई ऊचे-ऊचे शिखर हैं, जिनमे सबसे ऊचा शिखर तिरिच मीर २५,४२६ फुट का है। इस सरहद पर कई दर्रे भी है, जिनमे होकर प्राचीन काल से हमलेवर, सौदागर तथा पर्यटक आते रहे है और आज भी उनका इस्तेमाल व्यापार के लिए किया जाता है।

पूर्व मे सुलेमान पर्वत की श्रेणिया हैं। उन पर हमेशा बर्फ जमी रहती

है। कावुल नदी की उपत्यका सुलेमान को हिन्दूकुश पर्वत से अलग करती है। वह पर्वत-माला खैबर दर्रे से शुरू होती है और कावुल के दक्षिण मे लोगरवादी मे समाप्त हो जाती है। उसके दोनो ओर ढलानो पर देवदार तथा कुछ निचाई पर चीड के घने जगल हैं। उसके मशहूर दर्रे खैवर, पेवार, तोची, गोमल, वोलन और शोरावक है।

अफगानिस्तान फलो का देश है। वहा की आवोहवा मे अगूर, अखरोट नाशपाती, अनार, अजीर, पिस्ता, खूवानी, आडू आदि खूब होते हैं। चमन के अगूर मशहूर हैं। सौभाग्य से मैं वहा फलो के मौसम मे पहुचा था। वाजार मे जगह-जगह पर वेरो की तरह अगूरो के ढेर लगे थे। वढिया किस्म का अगूर आठ आने सेर था, किशमिश रुपये सेर। मजे की वात यह है कि वहा का सेर हमारे यहा के ढाई सेर के वरावर होता है। काशीफल की तरह सरदे दुकान-दुकान पर रखे दीखते हैं। साग-भाजी की पैदावार भी अच्छी होती है।

शहर मे चिलगोजे मूगफली की तरह विक रहे थे। मैंने यह सोचकर कि दो-एक दिन काम दे जायगे, चार आने के मागे। फेरीवाले ने कागज के लिफाफे मे भरकर इतने दे दिए कि मैं कई दिन मे भी खत्म नही कर सकता था। निरुद्देश्य घूमते हुए चिलगोजे खाने मे वडा मजा आता है। समय कट जाता है। मैं घूमते समय थोडे-से चिलगोजे जेब मे डाल लेता था। एक दिन उन्हे खाते देखकर एक परिचित दुकानदार ने कहा, "यह आप क्या कर रहे है ?"

मैंने कहा, "क्यो, चिलगोजे खा रहा हू।"

"ज्यादा मत खाइये।" वह गभीर होकर बोला।

"क्यो ?"

"पिछले दिनो एक मद्रासी इन्हे खा कर मर गया। ये बहुत ही नुकसान करते है।"

मुझे उनकी वात पर हँसी आई। पर मैंने उसे प्रकट नही होने दिया। पिछले दिन की याद हो आई। जव मैं सरदा खा रहा था तो उन्होंने टोक कर कहा था, "ज्यादा मत खाना। पेट मे ठडक बैठ जायगी।"

मैंने मन-ही-मन सोचा, इसमे दोष इनका नही है। चूकि चीजें वहुतायत

मिलती है, उसीसे इनकी यह धारणा बनी है। मूल्य तो उन्ही चीजो का होता है, जो कम मिलती हैं।

शहर मे विदेशी लोग काफी दिखाई दिए। पूछने पर मालूम हुआ कि उनमे कुछ तो घुमक्कड थे, कुछ वही के रहनेवाले। पिछडा होने पर भी, काबुल का व्यापार की दृष्टि से बडा महत्त्व है, इसलिए बाहर के लोग अच्छी सख्या मे वहा आते-जाते रहते हैं।

शहर मे कई बैंक हैं। यात्रियो की सुविधा के लिए होटल मे ही 'पश्तानी तिजारती बैंक' है। वहा से हमने कुछ रुपयो के अफगानी लिये। वहा का सिक्का 'अफगानी' कहलाता है। बैंक ने एक रुपये के शायद नौ अफगानी दिये, पर यह भाव बदलता रहता है।

अफगानिस्तान की मूल भाषा, पश्तो और फारसी है, पर वहा के हाई-स्कूलो मे फ्रेंच, जर्मन तथा अगरेजी भी पढाई जाती है। अन्य भाषाओ की अपेक्षा फ्रेंच पर अधिक जोर दिया जाता है।

शहर मे पाच सिनेमाघर हैं, जिनमे अक्सर हिन्दी की फिल्मे दिखाई जाती है। वहा के लोग भारतीय नृत्य तथा हिन्दी के गानो को बहुत पसन्द करते हैं। यही कारण है कि भाषा पूरी तरह न समझ पाने पर भी हिन्दी की फिल्मे चलती हैं और दुकानो पर हिन्दी के गानो के रिकार्ड बजते सुनाई देते हैं। अगरेजी का प्रचलन बहुत कम है। बडे-से-बडे अधिकारी तथा शिक्षित लोग भी अगरेजी गलत और अटक-अटक कर बोलते हैं। एक कालेज के प्रोफेसर हमे रास्ते मे मिल गए। उनके उच्चारण को सुन कर हँसी रोकना मुश्किल हो गया।

काबुल मे एक विश्वविद्यालय और चार कालेज—वगजनी, हबीबिया, निजात और इस्तकलल है। विश्वविद्यालय की सारी फैकल्टिया—साइंस, आर्ट आदि—यूनिवर्सिटी कहलाती है। इससे सुनने मे ऐसा लगता है, जैसे वहा बहुत से विश्वविद्यालय हो।

पर्दे का वहा खूब चलन है। सभी धर्मों की स्त्रिया बुर्का ओढकर निकलती है। वे दुकानो पर सामान खरीदती हैं। तब भी उनके मुह ढके रहते है। मजे की बात यह है कि बुर्का ओढे वे दुकानदारो से चीजो की फरमाइश करती हैं और जोर-जोर से चीजो के मोल-भाव करती हैं।

: ५१ :

एक रोमांचकारी अनुभव

शाम तक हम लोग शहर मे घूमते रहे। बाजार में कई भारतीय दुकानदार थे। उनसे वहा की परिस्थिति के बारे मे मामूली पूछताछ करते रहे। सात-आठ बजे होटल लौटे, भोजन किया, फिर घूमने निकल पडे। वहा का भूगोल तो जानते नही थे। जिधर मन हुआ, उधर ही चल पडे। बगाली भाई और मैं दो जने थे। कुछ दूर पर एक बडी-सी शानदार इमारत दिखाई दी। उसे देखकर ऐसा लगा कि वह कोई विशेष इमारत है। बिजली की रोशनी हो रही थी, पर वहा एकदम सुनसान था। जिज्ञासावश खडे होकर हम इधर-उधर देखने लगे कि कोई आवे और उससे उस इमारत के बारे में पूछें। लेकिन काफी देर तक कोई नही आया। आखिर कबतक इतजार करते ? चलने को हुए। इतने मे दो आदमी आये। उनकी वर्दी से अदाज हुआ कि वे पुलिस के अधिकारी हैं। उनसे उस इमारत के बारे में जानकारी लेने के लिए हम आगे बढ़े और पास जाकर जैसे ही मुह खोला कि उन्होंने धाराप्रवाह कुछ कह डाला। वे शायद पश्तो मे बोले। हम एक शब्द भी नही समझ पाए। मैंने अगरेजी मे कहा कि हम पश्तो या फारसी नही जानते और अगर उन्हें अगरेजी आती हो तो उसमें बोलें। उन लोगो ने एक-दूसरे का मुह देखा और फिर पश्तो मे कुछ कहा। मैं समझ गया कि वे अगरेजी नही जानते। मैंने बीच-बीच में उर्दू के दो-चार शब्द बोलकर और कुछ इशारे से जानना चाहा कि वे क्या कह रहे हैं। बडी मुश्किल से पता चला कि वे जानना चाह रहे थे कि हम कौन हैं और इतनी रात-गये वहा क्या कर रहे हैं ? मैंने उन्हें बताने की कोशिश की कि हम मुसाफिर हैं, हिन्दुस्तान से आये हैं और अचानक घूमते हुए इधर आ निकले हैं। पर वे लोग कुछ भी नही समझे। मेरे चुप होते ही फिर उनकी वाग्धारा चल पडी। मैंने सोचा कि वहा ठहरना बेकार है, पर चलें तो चलें कैसे ! वे लोग बराबर कुछ कहे जा रहे थे। देर काफी हो गई। चारो ओर गहरा

अधकार फैला था, जिसे सडक की रोशनी दूर करने का असफल प्रयत्न कर रही थी। हम बडी द्विविधा मे पडे। क्या करें? उन पुलिस के अधिकारियो से कैसे छुट्टी पावे? यह सब सोच ही रहे थे कि इतने मे एक महानुभाव वहा आये। हमे हिन्दुस्तानी देखकर और पुलिसवालो से उलझे पाकर उन्होने हमसे हिन्दी मे पूछा, "क्यो, क्या बात है?"

हमने उन्हे सारा किस्सा कह सुनाया। अत मे कहा, "हम इनकी भाषा नही जानते। ये हमारी नही जानते। इसलिए ये जो कहते हैं, वह हमारी समझ मे नही आता। हम जो कहते हैं, वह ये नही समझ पाते।"

उन भाई ने पुलिस वालो से पश्तो मे बात की। फिर हमसे बोले, यह आपके सामने शाही महल है। आपको इतनी रात-गये यहा घूमते देखकर इन लोगो को आप पर शक है कि आप किसी मतलब से चक्कर लगा रहे हैं।"

हमने कहा, "इसमे हमारा क्या मतलब हो सकता है?"

वह सज्जन क्षण भर चुप रहे, फिर बोले, "आप परदेशी है। यहा के हालात जानते नही। इस शाही महल के इर्द-गिर्द परिन्दा भी चक्कर नही लगा सकता।"

हमने कहा, "हमे इसका क्या पता था!"

वह बोले, "किसी चीज की जानकारी न होने से कानून मे बचत नही होती। फिर यहा तो कोई कानून नही है।"

हम लोग बाते करते रहे और पुलिस के वे यमदूत डटे रहे। आखिर उन सज्जन ने उन्हे उन्ही की भाषा मे समझाया। अपने पक्ष मे हम जो दलीले दे सकते थे, वे उन्होने उनके सामने पेश करते हुए हमारी वकालत की। काफी देर मे पुलिसवालो का समाधान हुआ और वे चले गए। उनके जाने पर हमारी जान-मे-जान आई।

उनके जाने पर वह महानुभाव बोले, "मैं दिल्ली का रहने वाला हू। बरसो से यहा रहता हू। यहा के कानून-कायदे एकदम निराले है। अगर मैं न आया होता तो ये लोग आपको थाने ले गए होते।"

मैंने कहा, "तो उससे क्या होता?"

"कुछ होता या न होता, यह आप क्या जाने। साहब, यहा का-सा अधेर आपको कही नही मिलेगा। अब फिर भी थोड़ी गनीमत है। कुछ

साल पहले तो यहा बुरा हाल था । एक मरतवा एक आदमी जेल से भाग गया । आदमी भाग गया, इस बात की जेल के अधिकारियो को जितनी चिन्ता हुई, उससे ज्यादा चिन्ता इस वात से हुई कि हाजिरी के समय एक की सख्या कम होगी । सो उन्होंने क्या किया कि जेल के वाहर एक कर्मचारी को भेजा और जो भी मिले, उसे पकड लेआने को कहा । सयोग से एक आदमी सडक के किनारे बैठा पेशाव कर रहा था । उसीको पकडकर अन्दर कर दिया गया ।"

हमने कहा, "नही जी, यह कैसे हो सकता है !"

वह बोले, "अजी, उस जमाने में कुछ भी हो सकता था । लेकिन अभी कहानी पूरी कहा हुई है । कहते हैं, एक दिन अमानुल्ला या दूसरे कोई वडे आदमी जेल का मुआइना करने आये । सब कैदियो को इकठ्ठा किया गया । उन्होने एक कैदी से पूछा, 'तुम किस जुर्म मे जेल आये ?'

"दैवयोग से यह वही आदमी था, जो सख्या पूरी करने के उद्देश्य से लाया गया था । वह वोला, 'मुझे खुद पता नही कि किस जुर्म मे लाया गया हूं ।'

"इतना कह कर उसने सारी वात बता दी । पता नही, वाद मे उसका क्या हुआ, लेकिन यह घटना बताती है कि यहा के कानून-कायदे कैसे रहे हैं ।"

इस घटना को सुनकर हमारे रोगटे खडे हो गए । पर अव तो सकट टल गया था । हमने उन भाई का आभार माना और उनसे विदा लेकर होटल आ गए ।

: ५२ :

काबुल के आसपास

कहते है, काश्मीर मे जो स्थान गुलमर्ग का है, अफगानिस्तान मे वही स्थान पगमान का है। वह जगह काबुल से १५-१६ किलोमीटर थी। अगले दिन सवेरे ही हमने आर्याना के दफ्तर मे जाकर २ अफगानी फी मील के हिसाब से एक टैक्सी तय की। यह भी तय हुआ कि ठहरने का वह पैसा नही लेगा। जब हम चलने को तैयार हुए तो एक कैनेडियन महिला आकर बोली, "अगर आपको कोई आपत्ति न हो तो मैं भी चलू ?'

टैक्सी मे जगह तो थी ही। हमने कहा, "जरूर चलिये।"

यह महिला उसी होटल मे ठहरी थी। हम सब रवाना हुए। बात करते हुए जरा-सी देर मे पगमान पहुच गए। स्थान वास्तव मे बडा खूबसूरत है, लेकिन गुलमर्ग के साथ उसकी तुलना नही हो सकती। पिकनिक की दृष्टि से वह उपत्यका एक आदर्श स्थान है। छुट्टी के दिन काफी लोग वहा आ जाते हैं। वहा पुराने समय की अमानुल्ला की कोठी है, जो काफी बडी और कलापूर्ण है। उसके पास ही उनके भाई की कोठी है। और भी कई बडी-बड़ी इमारतें है। आबोहवा अच्छी है। स्वास्थ्य-वर्द्धक भी है। इसलिए पैसे वालो ने वहा अपनी कोठिया बना ली है। सबसे ऊची जगह पर जो कोठी है, वह 'बोलोर्वा' कहलाती है। चिनार और चर्मास के पेडो की वहा बहुतायत है और उन्ही की हरियाली कला और प्रकृति-प्रेमियो को वहा खीचकर लाती है। वैसे स्थान बडा साफ-सुथरा है।

लौटकर 'तपी पगमान' गये, जहा बादशाह का शानदार बगीचा है। बगीचे मे फव्वारे चल रहे थे और रग-बिरगे फूल खिले थे। दरअसल बगीचे की योजना करनेवाले ने काफी कुशलता का प्रदर्शन किया है। वहा के वर्तमान बादशाह जाहिरशाह अपने परिवार के साथ आये हुए थे। इसलिए बगीचे का एक हिस्सा देखने से रह गया। कुछ दूर से हमने बादशाह की पार्टी देखी।

लौटकर टैक्सीवाले का हिसाब किया तो उसने ढाई अफगानी किलो-मीटर की माग की। पठान हमारी पूरी बात नही समझ पाता था, इसलिए हम उसे आर्याना के दफ्तर मे ले गए। वहा के जिस बाबू ने वह टैक्सी तय की थी उसने उसे समझाया, लेकिन वह कहा माननेवाला था! आखिर-कार ढाई अफगानी के हिसाब से ही उसे पैसे दे दिए। बोला, "वेटिंग?" यानी 'ठहरने के समय' के पैसे और लाओ। मुझे झुझलाहट हो आई। मेरे दोनो साथी चले गए थे। मैंने कहा, "तुम बडे झूठे हो। कहते कुछ हो, करते कुछ हो। अपनी जबान की कोई कीमत है? मैं अब एक कौडी भी नही दूगा।"

ड्राइवर ने इस पर सारे पैसे धरती मे दे मारे और कमरे से बाहर जाने लगा। उसकी यह हरकत आर्याना के बाबू को भी बडी बुरी लगी। उसने तेज होकर कुछ कहा, पर नतीजा कुछ भी न निकला। मैंने सोचा, जो होगा, देखा जायगा, मैं वहा से चल दिया। ड्राइवर ने देखा कि उसकी घुडकी बेकार गई तो जमीन पर बिखरे पैसो को इकट्ठा करके चला गया।

दोपहर बाद 'दारुल अमान' गये। वहा का रास्ता बडा सुन्दर है। सडक के दोनो ओर पेडो की कतारें हैं। सारे पेड एक समान हैं, आकार-प्रकार दोनो मे। वहा अमानुल्ला की की कोठी बडी विशाल है, पर अब उसमे बादशाह नही रहते, कोई मन्त्रालय है।

इस कोठी से कुछ ही फासले पर सग्रहालय है, जिसमे अफगानिस्तान की बनी नाना प्रकार की वस्तुओ का अच्छा सग्रह है। कुछ प्राचीन ऐतिहासिक वस्तुए भी हैं। भगवान बुद्ध की मूर्तिया, काठ और सगमरमर के दरवाजे, पूर्वी अफगानिस्तान के हाडा नामक स्थान से प्राप्त स्तूप, पोशाकें, चित्र, बुखारा के पर्दे, शीतारक की मूर्तिया, आदि चीजें खासतौर पर अच्छी लगी। लेकिन एक बात से बडी असुविधा हुई। सारी चीजो के परिचय पश्तो या फ्रेंच मे लिखे थे। अगरेजी मे बहुत कम थे। दुर्भाग्य से हमें जो सज्जन सग्रहालय दिखा रहे थे, वह नये-नये आये थे और सारी चीजो को पहचानते नही थे। फिर भी कुल मिलाकर सग्रहालय अच्छा लगा।

शहर से चार मील पर बाबर की मजार है। वह जगह भी देखने योग्य है।

: ५३ :

कुछ स्फुट चित्र

कहावत है, कावुल के गदहे मशहूर हैं। वहा पहुचने पर हमने देखा कि आज भी सवारी मे लोग गदहो का इस्तेमाल करते है। इतना ही नही, सामान के आयात-निर्यात मे भी उन्हीका उपयोग होता है। डीलडौल तथा तन्दुरुस्ती के हिसाव से अफगान जितना निराला है, उतना वहा का यह मशहूर जानवर नही है। शायद उसकी उपयोगिता तथा वहुलता के कारण उसका नाम इतना प्रसिद्ध हुआ हो।

अफगानिस्तान की आबादी मे कई लाख पख्तून हैं। अपनी भाषा के लिए उनका प्रेम देखने योग्य है। दुकानो तथा दूसरे स्थानो पर लगभग सारे साइनबोर्ड उनकी अपनी लिपि मे है, यहा तक कि मोटरो की प्लेटें भी फारसी लिपि मे है। वहा का छोटे-से-छोटा और बडे-से-बडा आदमी भी अपनी भाषा मे बोलता है। यदि वह अगरेजी नही जानता तो उसे इसमे शर्म नही आती और न छोटापन ही महसूस होता है।

जैसा मैंने कहा, वहा फारसी और पश्तो दो भाषाए चलती हैं। पख्तून लोग पश्तो बोलते हैं। फारसी का इस्तेमाल ज्यादातर ताजिक लोग करते हैं। चूकि फारसी सदियो से अदालत की भाषा रही है, इसलिए पढाई-लिखाई मे फारसी का प्राधान्य है। उजबेक लोग एक और ही भाषा बोलते हैं, जो पश्तो और फारसी के मेल से बनी है।

फारसी का पहला कवि वदगीस का हजालाह था। वहा के अधिकाश विख्यात ग्रथ भी फारसी मे ही लिखे गए हैं। फिरदौसी का फारसी मे लिखा 'शाहनामा' तो जगद्विख्यात है।

• • ••

अफगानिस्तान की आवादी लगभग डेढ करोड है। वहा के लोगो का धर्म या जाति कुछ भी हो, वे अफगान कहलाते हैं। पख्तून या पश्तून ६० फी-सदी है, ताजिक ३०.२ प्रतिशत, उजबेक ५ प्रतिशत, हजारा ३ प्रतिशत,

बाकी के लोग ८ प्रतिशत । पख्तून और ताजिक आर्यों की शाखाए हैं । वे दोनो किसी जमाने मे वहा आकर बसे थे । दोनो एक-दूसरे से बहुत मिलते-जुलते हैं । उजबेक मूल मे तुर्की हैं, जबकि हजारा मुगलो के वशज हैं । शेष लोगो मे हिन्दू, यहूदी आदि हैं ।

हजारा लोगो के बारे मे कहा जाता है कि उनका नाम बडे अजीब ढग मे पडा । कुछ लोगो का कहना था कि किसी गाव से विद्रोह करके हजार आदमी घरबार छोड गए और वे 'हजारा' कहलाये ।

एक परिचित सज्जन ने बताया कि अफगानो मे सबसे सुन्दर हजारा लोग होते हैं । जब हमे वह भोजन कराने अपने घर ले गए तो बोले, "मैं आपको हजारा लडकी से मिलाता हू ।" इतना कहकर उन्होंने किसी को आवाज दी । शरमाती-सी एक लडकी आई और किवाड के सहारे खडी हो गई । उससे बैठने को कहा तो जूतो के पास बैठ गई । मेजबान ने मुझसे कहा, "बताइये, इसकी उमर कितनी होगी ?"

उसकी लम्बाई और शारीरिक विकास को देखकर मैंने जवाब दिया, "होगी कोई २५ साल की ।"

मेजबान मुस्कराये । बोले, "जी नही, यह १६ साल की है । इसकी भावज मेरे यहा काम करती है । उसके बच्चा हुआ है । इसलिए उसका हाथ बटाने के लिए यह आ गई है ।"

लडकी रूप-रग और चेहरे से शहजादी-जैसी लगती थी। मैंने उससे हम लोगो के पास आकर बैठने को कहा, पर वह अपनी जगह से टस-से-मस नही हुई ।

मेजबान ने कहा, "यह घर का सारा काम करती है । घडो मे पानी तक भरती है । इन लोगो के साथ छूतछात का कोई ख्याल नही है, और ये लोग ईमानदार तो गजब के है । सारा घर इन पर छोड जाओ, क्या मजाल कि कोई भी चीज इधर-उधर हो जाय ।"

ऊनी माल के लिए काबुल का दूर-दूर तक नाम है । वहा के कालीन, कम्बल तथा दूसरी चीजें बहुत से देशो मे जाती हैं । ऊन के लिए वहा भेड़ें पाली जाती हैं । कालीन, कम्बल आदि के तैयार करने का काम मुख्यत

स्त्रिया करती है । वे इस काम मे माहिर होती हैं । कारीगरी के कैसे-कैसे नमूने निकालती हैं, देखकर दग रह जाना पडता है ।

अफगानिस्तान की दस्तकारी भी अपना विशेष स्थान रखती है । छोटी-छोटी बहुत-सी कलापूर्ण चीजे तैयार होती है । उनमे तामचीनी के बर्तन, खिलौने आदि बडे सुन्दर होते हैं ।

... ...

पठान लोग डीलडौल मे कैसे होते हैं, यह सब जानते हैं । उनके आकार और भाव-भगिमा को देखकर कभी-कभी तो डर लगता है । लेकिन सम्पर्क मे आने पर पता चलता है कि उनका दिल कितना मुलायम होता है । वे जिसे प्यार करते हैं, जिसे दोस्त बनाते हैं, उसके लिए जान तक देने को तैयार रहते हैं । लेकिन दुश्मन को वह बख्शना भी नही जानते । वे बडे भोले-भाले, सरल, निर्भीक और आडम्बरहीन होते हैं । हमारे सरहदी गाधी (खान अब्दुल गफ्फार खा) इसकी बेजोड मिसाल हैं । पठानो की बहादुरी का मुकाबला कौन कर सकता है ।

: ५४ :

वापसी

काबुल मे घूमते-घूमते नये-पुराने इतिहास की बहुत-सी स्मृतिया दिमाग मे चक्कर लगाती रही। भारत के साथ उनका कितना पुराना सबध रहा है। किसी जमाने मे भारत की सीमा वहा तक फैली थी। उसके खैबर और बोलन के दर्रों पर हमारे इतिहास के पन्ने-के-पन्ने भरे पडे हैं। छोटा होते हुए भी अफगानिस्तान एशिया का बडा महत्त्वपूर्ण देश है। उसकी राजधानी काबुल एशिया के सबसे पुरातन नगरो मे से एक है। उस देश ने बडे राजनैतिक उतार-चढाव देखे हैं। राजवश उठे, गिरे, बादशाह आये, गये, राज्य बने, बिगडे, पर अफगानिस्तान आज भी अपनी जगह पर है। वह एक स्वतत्र देश है और बडी तेजी से विकास के रास्ते पर अग्रसर हो रहा है। भारत के साथ आज भी वह मुहब्बत की डोर मे बधा है। यों धार्मिक दृष्टि से वह इस्लाम का उपासक है, पर उसके पास दिल की बहुत बडी दौलत है।

और न जाने क्या-क्या विचार मन मे आते रहे।

तीसरे दिन सवेरे रूसी एयर कम्पनी एरोफ्लोट के विमान से ताशकद के लिए रवाना हो गए। सयोग से रूसी विमान काबुल पर ही मिल गया।

इस बार हिन्दूकुश की चोटिया पार की, लेकिन रूसी विमान इतना आरामदेह था कि ऊचाई का पता भी न चला। सौभाग्य से मौसम साफ था। इसलिए हिन्दूकुश के दृश्य बडी अच्छी तरह से देख सके। डेढ घण्टे की उडान मे नाना प्रकार की दृश्यावली सामने आई। अनतर रूसी परिचारिका ने सूचना दी कि अफगानिस्तान की सरहद अब खत्म हो रही है और हम रूस की सीमा मे प्रवेश कर रहे हैं। "वह देखिये आमू-दरिया! इसकी आधी धारा अफगानिस्तान मे है, आधी रूस में।"

इसके बाद के छियालीस दिनो के रूस-प्रवास का हाल एक स्वतत्र

पुस्तक[1] मे आ गया है। यूरोप के अन्य देशो का विवरण 'यूरोप की परिक्रमा' मे आयगा।

रूस तथा यूरोप के आठ दूसरे प्रमुख देशो मे घूमकर फिर काबुल आया तो अक्तूबर का तीसरा सप्ताह हो गया था। मौसम बदल गया था। सर्दी पड़ने लगी थी। जहाज न मिलने के कारण तीन दिन फिर वहा बिताये। पिछली बार अधिकाश समय घूमने मे गया था। इस बार वहा के लोगो से, विशेषकर भारतीयो से, मिलने-जुलने का अच्छा अवसर मिला। मालूम हुआ कि चुगी-मुक्त होने के कारण वहा के बाजार मे बाहर से खूब माल आता है और सस्ता बिकता है। ८ मिलीमीटर का मूवी कैमरा एक दुकान पर पाच सौ रुपये मे मिल रहा था। सभी चीजें बेहद सस्ती थी। लोगो ने बताया कि इसका असर वहा की चीजो पर पडता है। अफगानिस्तान कही-का-कही पहुच गया होता, यदि उसके उद्योग-धधो, व्यापार तथा दस्तकारी आदि को पूरा प्रोत्साहन मिला होता। "लेकिन भाई साहब, व्यापारी लोग भी क्या करे ? उन्हें जिस चीज मे ज्यादा बचत की गुजाइश दिखाई देती है, उसी को बेचते हैं। देश-प्रेम, देश-भक्ति आदि ऊची बातें उनके लिए कोई खास मानी नही रखती।" एक भाई ने साफ-साफ कहा।

उन भाई का कहना ठीक था। पर तभी एक बात मन मे उठी—धन के लोभी सब जगह मिलते हैं, लेकिन अफगानिस्तान के पास इन्सान का जो अनमोल खजाना है, वह उसे कभी नीचे नही गिरने देगा।

---

[1] देखिये लेखक की पुस्तक 'रूस में छियालीस दिन', प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, मूल्य डेढ़ रुपया।

: ५५ :

नेपाल-प्रवास की योजना और प्रस्थान

नेपाल जाने का विचार बरसो से चल रहा था। सन १९५५ मे जब हमारी टोली केदारनाथ की यात्रा करने गई, तब बताया गया कि वह यात्रा उस समय परिपूर्ण होगी जबकि हम काठमाण्डू मे पशुपतिनाथ के दर्शन करें। मैं उतना धर्म-परायण व्यक्ति नही हू, फिर भी नये-नये स्थानो की यात्रा मेरे लिए सदा आनददायक होती है। इसलिए मन उस ओर खिचा। सच बात यह है कि इस यात्रा की कल्पना का बीज और भी पहले पड चुका था। नेपाल मे रचनात्मक क्षेत्र मे अनन्य निष्ठा एव कर्मठता से काम करनेवाले तपस्वी नेता तथा गाधीजी के साबरमती आश्रम के साथी श्री तुलसी मेहर श्रेष्ठ और वहा के भूतपूर्व मत्री बधुवर खड्ग मानसिह ने कई बार वहा आने का आग्रह किया था, लेकिन कार्यक्रम बनता था और ऐन मौके पर कोई-न-कोई बाधा आ खडी होती थी। एक बार तो तिथि और जहाज तक का निश्चय हो गया और काठमाण्डू सूचना दे दी गई, लेकिन परिस्थिति कुछ ऐसी पैदा हो गई कि विचार स्थगित कर देना पडा। इसका नतीजा यह हुआ कि तुलसी मेहरजी और खड्ग मानसिहजी निराश हो गए। वे जब कभी दिल्ली आते थे, कहते थे कि अब आप लोग वहा नही आवेंगे। हम लोग क्या उत्तर देते, सिवा इसके कि तीर्थों की यात्रा बडे भाग्य से होती है और काललब्धि के सिद्धान्त के अनुसार, जब समय आयगा तभी हमारा मनोरथ सिद्ध होगा।

आखिर वह समय आया और सन १९६४ की २३ सितम्बर को वहा जाने का तय हुआ। वैसे यात्रा का असली आनद तो पटना से रक्सौल, रक्सौल से वीरगज और वीरगज से अमलेखगज तक रेल से तथा आगे बस या मोटर से जाने मे है, लेकिन हम लोगो के पास उतना समय नही था, इसलिए पटना से काठमाण्डू तक हवाई जहाज से जाने का निश्चय किया। विमान की टिकट की व्यवस्था दिल्ली से ही करा ली। पटना के हवाई-

अड्डे पर किसी मजिस्ट्रेट अथवा विदेश मत्रालय के परिचय-पत्र के दिखाने की आवश्यकता होती है, उसका भी यही से प्रबध कर लिया। दिल्ली से २३ सितम्बर को शाम की गाडी से रवाना हुए। तीन व्यक्ति थे। 'सस्ता साहित्य मण्डल' के मत्री श्री मार्तण्ड उपाध्याय, हिन्दी के लेखक श्री विष्णु प्रभाकर और मैं। इलाहाबाद मे 'मण्डल' के हमारे सहयोगी श्री ब्रह्मानदजी मिल गए और चार व्यक्तियो की टोली अगले दिन शाम को पटना पहुची।

हवाई जहाज की सीटो का तो पहले से ही पक्का था। अगले दिन सवेरे ६ बजे हवाई अड्डे पर पहुच गए। वहा कस्टम मे परिचय-पत्र देखा गया, सामान तोला गया, पैसे की घोषणा कराई गई, टिकट जाचे गए। इन सबसे छुट्टी पाकर ६ ५५ पर रवाना हुए। विमान डकोटा था, जिसमे २८ सीटे थी, पर यात्री कुल जमा १८ थे। उनमे दो महिलाए और कुछ विदेशी थे।

विमान आरभ मे हजार फुट की ऊचाई पर उडा। पटना शहर तथा गगा की धारा बडे सुन्दर रूप मे दिखाई दी। करीब ४० मिनट मैदान पर उडते रहे, फिर जगल आने पर विमान एक हजार फुट और ऊचा उठ गया। बाद मे पहाड आये तो वह छोटा-सा डकोटा आठ हजार फुट पर पहुच गया। हिमालय की ये शृखलाए १५-२० मिनट मे पार हो गई और काठमाण्डू की घाटी आने पर विमान ने निचाई पर आकर काठमाण्डू नगरी पर चक्कर लगाया। १० ५० पर वह काठमाण्डू के गोचर हवाई अड्डे पर उतर गया।

काठमाण्डू का हवाई अड्डा छोटा-सा है। पर चारो ओर से पर्वतो की भुजाओ मे आबद्ध होने के कारण उसकी अवस्थिति बडी मनोरम लगी।

हवाई अड्डे पर भारतीय दूतावास के सास्कृतिक सचिव डा० इन्दूशेखर मिले। तुलसी मेहरजी दिल्ली आये हुए थे। उनकी सूचना मिलने पर उनके सहयोगी रुद्रलालजी तथा उनकी बहन कुमारी शीलू उपस्थित थे। कस्टम की खानापूरी मे कोई आधा घण्टा लगा। सामान लेकर बाहर आये और जीप मे बैठकर तीन-साडे तीन मील पर मनोहरा ग्राम मे तुलसी-मेहरजी द्वारा स्थापित आदर्श गाधी महिला विद्यालय मे पहुचे। उन्हीके अतिथिगृह मे हमारे ठहरने की व्यवस्था की गई थी। शहर वहा से कोई ६-७ मील दूर था।

: ५६ :

काठमाण्डू में

काठमाण्डू नेपाल की राजधानी है और उसकी उपत्यका अपने प्राकृतिक सौंदर्य के लिए दूर-दूर तक विख्यात है। कुछ लोग उसे 'नेपाल की घाटी' भी कहते हैं। वस्तुत प्राचीन काल से यह घाटी नेपाल का हृदय और उसकी आत्मा है। कहते हैं, किसी जमाने मे यहा पर एक विशाल झील थी। घाटी के चारो ओर हिमालय-पर्वत माला प्रहरी की भाति खडी है। इन पहाडो के बीच-बीच मे उपत्यकाए हैं। पहली पर्वत-माला के बाद दूसरी पर्वतमाला है, जो पहली से अधिक ऊची है। साफ मौसम मे देखने पर ऐसा लगता है, मानो प्रकृति ने सीढी-नुमा पर्वत खडे कर दिए हो। सवेरे के समय हम लोग अतिथि-शाला की छत पर से देखते थे कि ऊची पर्वत-माला के कई शिखर हिम के मुकुट धारण किये हुए हैं। महिला विद्यालय एकान्त स्थान पर है, पर उसके चारो ओर ग्रामीण वातावरण मे धान के हरे-भरे खेत और पर्वत देखकर ऐसा जान पडता है, मानो प्रकृति ने वहा अपने सौंदर्य की वर्षा कर दी हो।

अतिथि-घर मे सामान रखवा कर भोजन किया और कुछ देर विश्राम करके शाम को घूमने के लिए शहर गये। काठमाण्डू डेढ़ लाख की आबादी का छोटा-सा शहर है, पर उसका इतिहास उतना ही पुराना और महान है।

काठमाण्डू का प्रारभिक नाम कातिपुर था, जिसका अर्थ होता है 'गौरवमयी नगरी'। काठमाण्डू नाम तो बाद मे पड़ा। एक ही लकडी का बना एक बहुत बडा मण्डप शहर के बीचो-बीच था। इसलिए उसे 'काष्ठ-मण्डप' कहकर पुकारा गया। उसी से बिगडकर काठमाण्डू हो गया। उसका यह नामकरण सन १६५६ मे हुआ और तब से यही नाम चला आता है। कान्तिपुर की स्थापना सन ७२३ मे राजा गुण कामदेव ने की थी। वह लगभग साढ़े चार हजार फुट की ऊचाई पर बागमती और विष्णुमती नदियो के सगम पर बसा है।

काठमाण्डू मे देखने के लिए बहुत-कुछ है। शहर के बीचो-बीच एक विशाल मैदान है, जो **'तुण्डी-खेल'** कहलाता है। इस मैदान मे सैनिको की कवायद तथा धार्मिक उत्सव हुआ करते हैं। एशिया के बडे मैदानो मे इसकी गणना होती थी। उसके इधर-उधर राणाओ की विशाल कास्य प्रतिमाए हैं। दक्षिण मे सगमरमर का नवनिर्मित **'शहीद-द्वार'** है।

शहर जाते समय बागमती का पुल पार किया था। श्री रुद्रलालजी ने दाईं ओर के सुनहरे शिखरो की ओर सकेत करके बताया था कि वही **पशुपतिनाथ का मंदिर** है—वह मदिर, जिसके दर्शन के लिए जाने कहा-कहा से धार्मिक स्त्री-पुरुश आते है।

अगले दिन सवेरे उठकर सबसे पहले हम मन्दिर के दर्शन करने गए। शहर मे होकर वहा का रास्ता था। यह बस्ती से कोई ३-३॥ मील की दूरी पर है। आगे जाकर बागमती के तट पर हमारी जीप रुकी। उतरे तो सामने **गुह्येश्वरी का मंदिर** था। उसका द्वार बडा ही कलापूर्ण था। कुछ सीढिया चढ कर अदर एक ऊचे चबूतरे पर पहुचते है, जिसके बीचो-बीच पार्वती का यह मदिर है। चारो ओर परिक्रमा का स्थल है। मदिर के शिखर पर सोने का काम हो रहा है और उसके द्वार के सामने राजा और रानी की स्वर्ण प्रतिमाए है। उनके बराबर राजा प्रतापमल्ल की मूर्ति है, जिन्होने कोई तीन सौ साल पहले इस मदिर का निर्माण कराया था।

मदिर के द्वार में प्रवेश करने के बाद कुछ सीढ़िया उतरनी होती है, अनतर पूजास्थल आता है। यहा पर योनि की पूजा होती है। इस प्रकार की पूजा का पहला मदिर मैंने आसाम की राजधानी गुहाटी में कामाख्या देवी का देखा था, दूसरा यहा। दतकथा है कि जब शिव सती के मृत शरीर को ले जा रहे थे, उनका एक अग यहा गिर गया था। जोहो, इस स्थान का बडा माहात्म्य है।

गुह्येश्वरी के मदिर से कोई एक फर्लांग पर **पशुपतिनाथ का मंदिर** है। पक्का रास्ता है। कुछ सीढिया चढने के बाद उतार आया, फिर मदिर का सिलसिला शुरू हो गया। इन मदिरो में तथा इधर-उधर अनेक हिन्दू देवी-देवताओ की मूर्त्तिया हैं। बहुत से स्थानो पर त्रिशूलो की आकृतिया है। राम-मदिर, गोरखमदिर आदि भी हैं। बागमती के इस किनारे पर

से देखने पर पशुपतिनाथ के मदिर का दृश्य बडा भव्य मालूम होता है। उसके शिखर बहुत ही मनोरम और कलापूर्ण हैं। इस मदिर का निर्माण तेरहवी शताब्दी के आरभ मे जयसिह रामदेव के समय में हुआ था। किवदन्ती है कि एक बार ब्रह्मा और विष्णु में झगडा हो गया कि दोनो में कौन बडा है। इसका निर्णय करने के लिए यही स्थान चुना गया। यहा से महादेव ने अपने प्रकाश को फैलाकर त्रिलोक को ज्योतित किया था। एक यह भी जनश्रुति है कि द्वापर मे जब पाण्डव राजपाट छोडकर हिमालय में केदारनाथ के दर्शन करने के लिए गये तो शिवजी ने उन्हें गोत्रहत्या का दोषी जानकर उनसे बचने के लिए महिष (भैसे) का रूप धारण करके पृथ्वी में प्रवेश करना चाहा, पर जैसे ही उनका अग्रभाग भूमि के अन्दर घुसा कि भीमसेन ने उन्हे पकड लिया। इस पर प्रसन्न होकर शिवजी ने उन्हें दर्शन दिये और उनका गोत्रहत्या का पाप दूर हो गया। कहते हैं, शिवजी का जो अग्रभाग भूमि के अदर प्रविष्ट हो गया था, वह नेपाल में जाकर प्रकट हुआ और वही 'पशुपतिनाथ' के नाम से पूजा जाता है।

ये कहानिया तो श्रृद्धालु मस्तिष्को की कल्पनाए है, पर इसमें सदेह नही कि नेपाली स्थापत्यकला का यह मदिर एक अद्‌भुत नमूना है। ससार के जितने मदिर है, उनसे यह भिन्न है। इसके प्रवेश-द्वार से एक विशाल प्रागण में जाते हैं। फिर नदी की एक बडी प्रतिमा आती है। अनतर मदिर। मदिर बडा ही भव्य है। उसकी बाह्याकृति कला का एक सुन्दर नमूना है। मदिर की चारो दिशाओ में चार द्वार है। अदर शिव की मूर्ति है, जिसके चारो ओर तीन-तीन मुह हैं। धार्मिक लोगो की मान्यता है कि जिसने पशुपतिनाथ के दर्शन कर लिये, उसे एक साथ जगन्नाथपुरी, बदरीनारायण, रामेश्वरम तथा द्वारिका के दर्शन का लाभ मिल गया। इसमे सचाई हो या न हो, पर वास्तविक बात यह है कि यह मदिर अत्यन्त रमणीक स्थान पर अवस्थित है। चारो ओर हरियाली है और बागमती नदी शिव के चरण पखारती है। मदिर की परिक्रमा की खुली गैलरी में बागमती के घाट से ऊपर सीढियो पर खडे होकर ऐसे-ऐसे दृश्य दिखाई देते हैं कि दर्शक की कल्पना किसी दूसरे लोक में पहुच जाती है। अग्रेजी के महान कवि वर्डवर्थ ने अपनी एक कविता में लिखा है

"हम दुनिया मे इतने लिप्त है कि उसी मे खो गए है। उसके माया-जाल में फसकर हम अपनी शक्तियो को क्षीण कर डालते है। जो हमारी है, जो हमे प्राण देती है, उस प्रकृति को हम नही देख पाते।" सचमुच वहा की प्रकृति प्राणदायक है। आदमी अपने को भूल जाता है, घर और समाज को भूल जाता है और सच तो यह है कि एकबारगी दुनिया को भी भूल जाता है।

वागमती के तट पर जगह-जगह गोल चबूतरे बने हैं। उन्हे देखकर लगता है कि वहा खडे होकर नदी की शोभा देखने के लिए वे बनाये गए होगे। पर नही, बात ऐसी नही है। उन पर मृतको की अत्येष्टि की जाती है। सभवत मूल कल्पना यह रही होगी कि एक तो दाह पवित्र नदी के किनारे हो जाय। दूसरे, भस्म वही-की-वही बहा दी जाय। पर मदिर के सदर्भ मे यह सब वडा विचित्र-सा लगता है। इस प्रकार के घाट नदी के किनारे जगह-जगह बने है, पर वहा के निवासी मानो इस प्रकार के दृश्यो के अभ्यस्त हो गए है।

मदिर के भीतर जाने की किसी को अनुमति नही है। उसमे पूजा करने का अधिकार केवल कर्नाटक के ब्राह्मणो को है। वही मूर्त्ति की पूजा करते है, वही यात्रियो से चढावा लेते है। चढावे में फूल और फूल-मालाए विशेष रूप से चढाई जाती हैं। उनमें से कुछ फूल और कुछ चदन आदि आशीर्वाद के रूप मे तजारी लौटा देते है। चरणामृत भी प्रसाद के रूप में देते है। कुछ लोग कमल के बडे-बडे फूल लाकर चढाते है। सभवत. कमल का चढावा विशेष महत्वपूर्ण माना जाता है। जब उनका अदर अधिक सग्रह हो जाता है तो पुजारी उन्हे उठा-उठा कर यात्रियो पर फेकते है। जिसके जो हाथ पड जाता है, उसे वह सौभाग्य मानकर ग्रहण कर लेता है और अपने साथ ले आता है।

मदिर वास्तव मे बडा विशाल है। उसके बाहरी हिस्से पर बहुत-सी मूर्त्तिया है। उसके ऊपर सोने के कलश है, जो सूर्य के प्रकाश मे अलौकिक-से लगते है। लेकिन वहा जितनी चाहिए उतनी सफाई नही है। इसका कारण शायद यह है कि वहा यात्री बराबर आते रहते है और फूल-पत्तिया आदि को जगह-जगह पर अनजाने गिरा जाते है।

मदिर की चहारदीवारी के अंदर और भी वहुत से मदिर हैं। एक ओर को नेपाल के राजाओ के चित्र लगे हैं। एक ओर को गद्दी है, जहा शास्त्रपाठ या कीर्त्तन होता है।

इस स्थान की मानता इतनी है कि धर्मभीरु नरनारी जाने क्या-क्या इच्छाए लेकर वहा आते है। दूसरी बार के प्रवास में मैंने देखा कि एक मरणासन्न स्त्री को लोग डोली में लाये। हमने पूछा तो मालूम हुआ कि कही दूर के गाव से लबी यात्रा करके बेटे अपनी मा को वहा इसलिए लाये थे, क्योंकि उसकी अतिम इच्छा पशुपतिनाथ का दर्शन करके प्राण त्यागने की थी। बुढिया इतनी अशक्त थी कि हाथ-पैर भी नही हिला सकती थी। डोली को मदिर के वाहर रखकर, स्त्री को करवट लिवा कर, उसका मुह मदिर की ओर करा दिया और उसके हाथ से छुवा कर कुछ पैसे मदिर मे चढा दिये गए। बुढिया को परम तृप्ति हो गई। पता नहीं, वाद में उसका क्या हुआ, पर दर्शन करके बुढिया की श्रद्धा ने जैसे उसके अत करण को पावन कर दिया। ऐसे एक-दो नही, सैकडो दृष्टात वहा उपस्थित होते रहते हैं।

मदिर मे बदरो की भरमार है। इसमें ही नही, सवमें। दूसरी बार जव मैं नेपाल गया था और गुह्येश्वरी के मदिर के भीतर मूर्ति पर फूल चढा रहा था कि एक वदर मेरे पास आकर बैठ गया। मैंने लाड में आकर उसकी पीठ पर हाथ फिराने की कोशिश की तो उसने जोर से मुझपर हमला किया। इतना ही नही, उसका एक साथी दौडकर उसकी मदद को आया और मेरी पीठ में मुह मार दिया। अच्छा यह हुआ कि उसके दात गहरे नही लगे, अन्यथा लेने-के-देने पड जाते। इसी प्रकार पशुपतिनाथ के मदिर के बाहर की फूल-मालाओ आदि की दुकान से मार्तण्डजी ने कुछ मालाए खरीदी। एक बदर ने झपट्टा मारा ओर उनके हाथ से पुडिया को छीनकर ले गया और कई मालाए उसने तोड डाली। सबसे बडी कठिनाई यह है कि धार्मिक भावना होने के कारण लोग बदरो के उत्पात को सहन कर लेते हैं और कोई स्वप्न मे भी कल्पना नही कर सकता कि बदरो को मारकर या सताकर उस झझट को खत्म कर दिया जाय। काठमाण्ड तथा अन्य नगरो मे मदिरो की भरमार है और मदिर भी एक-से-एक

बढकर है। इसीलिए नेपाल को 'मदिरो का देश' कहा जाता है।

काठमाण्डू से कुछ दूर पर कोई २०० फुट की ऊँचाई पर **'स्वयंभूनाथ का मंदिर'** अपने ढग की निराली चीज है। ३०० सीढियाँ चढते हुए बीच-बीच मे बुद्ध की अनेक विशाल प्रतिमाए मिलती हैं। ऊपर पहुचने पर सही अनुमान होता है कि मदिर कितना बडा है। वह **बौद्ध**-मदिर है। पर नेपाल की विशेषता यह है कि वहा हिन्दू और **बौद्ध** दोनो का अद्भुत समन्वय हुआ है। स्वयभू के स मदिर के प्रागण मे पिछवाडे शीतलादेवी का मन्दिर है। मुख्य स्तूप ठोस है, अर्थात उसके भीतर कोई प्रतिमा नही है। पर उसके चारो ओर बुद्ध की अलग-अलग मुद्राओ की मूर्तिया हैं। मदिर के वाहरी भाग पर परिक्रमा की परिधि मे २०९ घटे लगे है, जिन पर 'मनी पद्म' शव्द अकित हैं। स्तूप के निकट मदिर मे बुद्ध की बड़ी ही विशाल और मनोज्ञ प्रतिमा है। उसके दर्शन करने के लिए हम अदर गये तो प्रतिमा की भव्यता को देखकर मन बहुत आनन्दित हुआ। एक ओर को कई लामा बैठे धर्मग्रथो का पाठ कर रहे थे। स्तूप का शिखर हमारे मदिरो की चोटी की तरह नोकीला है और उसके ऊपर सोने का काम हो रहा है। कहते है, इस स्थान पर स्वय बुद्ध आये थे। मदिर वडे रमणीक स्थान पर बना हुआ है। वहा से काठमाण्डू की बस्ती दिखाई देती है।

'तुण्डीखेल' के मैदान मे **'भीमसेन की मीनार'** अपनी ऊचाई के कारण कुतुब मीनार जैसी लगती है। उसके उत्तर मे **'रानी पोखरी'** और मध्य मे शिवमदिर है। 'रानी पोखरी' के चारो ओर सुन्दर वगीचा है। वहा पर ऐतिहासिक मल्ल हाथी की प्रतिमा भी देखने योग्य है। 'रानी पोखरी' का निर्माण राजा प्रताप मल्ल की रूपमती रानी ने अपने सबसे छोटे पुत्र चक्रवर्तीन्द्र की स्मृति मे कराया था।

लेकिन काठमाण्डू का सबसे बडा आकर्षण वहा का **'सिंह दरबार'** है। राजा और राजघराने की यो तो वहा बहुत-सी इमारतें है, पर सिंह-दरवार का मुकाबला शायद ही कोई कर सके। यह दरवार-भवन पहले राणा प्रधानमत्रियो का निवास-स्थान था, अब उसे नेपाल सरकार ने अपने हाथ मे ले लिया है और उसमे केन्द्रीय सचिवालय के दफ्तर है। उसके चारो ओर झरने तथा हरे-भरे मैदान है। इस भवन की सजावट भी वडे सुन्दर

ढग से की गई है।

सिंह-दरबार के निकट ही **संसद भवन** है। स्थापत्य कला की दृष्टि से इन दोनो भवनो का विशेष महत्त्व है।

शहर के मध्य में मल्ल शासको का पुरातन निवास-स्थान 'दरबार-चौक' है, जो **'हनुमान ढोका'** कहलाता है। स्थानीय लोग उसे 'लायकू' कहते हैं। इसका निर्माण राजा प्रताप मल्ल ने सन १६५० मे कराया था। उसके पीछे उनका यह विश्वास था कि उनका राज्य अनिष्टो तथा व्याधियो से बचा रहे। प्राचीन राजमहल का यह प्रवेश-द्वार था। वर्तमान राजा का राज्याभिषेक आज भी इसी के प्रागण में होता है। दरबार चौक में पगोडा के आकार मे कई मजिलो का यह भवन दूर से ही दर्शको को अपनी ओर आकृष्ट करता है। वहा लकडी तथा पत्थरो पर की गई का गिरी देखते ही बनती थी। मुख्य इमारत मे ललितपुर (पाटन), कीर्तिपुर, कान्तिपुर (काठमाण्डू) और भक्तिपुर के राजाओ के पृथक-पृथक कक्ष हैं। स प्रासाद की निर्माण-कला पाश्चात्य कलाविदो को भी आश्चर्य मे डाल देती है। प्रवेशद्वार के निकट ही राजाओ के विशाल चित्र काल-क्रमानुसार दिये हुए हैं। राजा तथा रानी के बैठने के स्थान भी नियत हैं।

महल के निकट कई मदिर हैं, जिनमे **'पंचमुखी हनुमान'** तथा **'तुलजा भवानी'** का दिर विख्यात है। भवानी के मदिर मे हर अष्टमी को एक भैंसा, छ बकरे और सात हसो की वलि दी जाती हैं। मूल चौक मे १५४ भैंसो की वलि दी जाती है। इसी भवन मे एक ृत्य-चौक भी है।

यह भवन नेपाली-कला का उत्कृष्ट नमूना है। उसके द्वार पर हनु-मान की विशाल प्रतिमा है और दरबार-चौक के अदर काल-भैरव की। हर मजिल पर चढकर चारो ओर के ृश्य देखे जा सकते हैं। पूरा महल पुराने वैभव की याद दिलाता है। यद्यपि अब वहा पर निस्तब्धता व्याप्त रहती है, तथापि इतिहास-प्रेमियो से यह छिपा नही रहता कि किसी समय में यहा जनरव से सारा महल मुखरित होता रहता होगा।

महल के निकट ही गाइड उस कुए को भी दिखाता है, जिसमे प्रथम राजा जंगबहादुर अपनी बहादुरी दिखाने के लिए कूद पडा था। इसी

प्रकार वह मीनार भी दिखाई जाती है, जिस पर से वह राजा अपनी बहादुरी के जोश मे छलाग मार कर नीचे कूदा था।

इधर के मन्दिर वास्तव मे वडे शानदार है, लेकिन उनके ऊपरी भागो पर ऐसी गदी मूर्त्तिया मिलती है, जिन्हें देखकर दर्शको को निगाह नीची कर लेनी पडती है। प्राय मदिरो के ऊपरी हिस्से पर चारो ओर ऐसी मतिया दिखाई देती है। सभवत यह तान्त्रिक युग का प्रभाव है।

शहर के उत्तर-पूर्व मे धान तथा मक्की के खेतो के बीच एक विशाल मदिर है, जो **'बूढ़ानाथ का मंदिर'** कहलाता है। इस मदिर मे बुद्ध की मूर्ति है। कहा जाता है कि यह ससार का सबसे बडा स्तूप है और इसका निर्माण २००० वर्ष पहले हुआ था।

काठमाण्डू का नया रूप देखना हो तो **'बालाजू औद्योगिक क्षेत्र'** देखना चाहिए। वहा पर कई वडे-वडे औद्योगिक सस्थान अपने-अपने उद्योग-धधे खडे कर रहे है। मैदान मे नये-नये मकानो का निर्माण हो रहा है। ऐसा जान पडता है कि कुछ ही समय मे यह क्षेत्र धनिको की कमाई का वहुत वडा केन्द्र वन जायगा। इसमे कोई शक नही कि इससे वहा की जनता को भी लाभ पहुचेगा। उनकी वेकारी दूर होगी, उनकी माली हालत सुधरेगी।

आगे वढकर **'बाईस धारा'** पहुचते है। यह एक विशाल उद्यान है, जिसके बीच-बीच मे जलाशय एव प्रपात बनाये गए है और भाति-भाति के फूल लगाये गए है। अन्दर घुसते ही सबसे पहले **'प्रजिमा देवी'** के मदिर मे गये। यह देवी बच्चो की सरक्षिका मानी जाती है। उसके सामने एक शिला पर बीच मे शिव की वडी सुन्दर मूर्ति है, उसके दाए-बाए दो छोटी-छोटी मूर्तिया है। वास्तव मे यह बड़ी प्रशसनीय बात है कि नेपाल मे धार्मिक विद्वेष को पनपने का तनिक भी मौका नही मिला। शिव, विष्णु, ब्रह्मा, बुद्ध सबकी मूर्त्तियां आज भी वहा विद्यमान हैं, मानो वे एक ही परिवार की हो। जहा धर्म को लेकर सकीर्ण रेखाएं है, उनके लिए नेपाल सर्वधर्म-समभाव का निस्सन्देह एक आदर्श प्रस्तुत करता है। धर्म-समन्वय की सूचक इस तरह की मूर्तिया वहा जगह-जगह पर मिलती है।

स स्थान का निर्माण महाराजाधिराज महेंद्र वीर विक्रम की ४५वी वर्षगाठ के अवसर पर विक्रमसवत २०१८ मे हुआ था और उसका उद्घाटन वहा

के तत्कालीन प्रधानमत्री श्री तुलसी गिरि ने किया था ।

इस स्थान का नाम **'बाईस धारा'** इसलिए पडा है कि ऊपर पहाड पर से आते एक झरने को ेक कर बाईस गोमुख बनाये गए है, जिनमे से जल-धाराए प्रपात की भाति निकल कर आती है । बगीचे के दाई ओर ऊचे-ऊचे पहाड है, जो हरे-भरे वृक्षो से आच्छादित है । इसी पहाड मे से बाईस धाराओ को पानी पहुचानेवाला प्रपात बह कर आता है । वही ऊपर एक विश्राम-गृह है, जो एकात-प्रिय व्यक्तियो के लिए आनन्ददायक स्थान है । इसी उद्यान मे एक छोटे-से जलाशय मे 'नीलकठ' की शेषशायी मूर्त्ति है, जिसका निर्माण छठी शताब्दी मे हुआ था । इस मूर्ति के दर्शन के लिए बडी धार्मिक भावना से लोग आते है, लेकिन नेपाल की प्रथा के अनुसार राजा को विष्णु माना जाता है इसलिए उस मूर्ति के दर्शन के लिए राजा को नही आना चाहिए, ऐसी धारणा प्रचलित है । बौद्ध लोग राजा को बोधिसत्व मानते है । इसी उद्यान मे वर्तमान राजा-रानी की प्रतिमाए एक स्थान पर बनी है । कुल मिलाकर जगह बडी आनन्ददायक है । सैला-नियो के लिए तो बहुत ही अच्छी है ।

मदिरो का उस नगरी मे अन्त नहीं । **अन्नपूर्णा, महेन्द्रनाथ, आकाश भैरव, नर-देवी, अटक-नारायण, इंद्राय ी,** आदि-आदि ।

कला-प्रेमियो के लिए काठमाण्डू मे एक विशेष स्थान है, वहा का **'राष्ट्रीय सग्रहालय** । दरबार चौक के पश्चिम मे यह कोई मील भर के फासले पर है । नेपाल के प्राचीन पुरातत्त्व का यह एक समृद्ध भण्डार है । सग्रहालय दो भागो मे बटा है । पहले भाग मे मूर्त्तियो तथा अस्त्रो का सग्रह है । उसके पहले कक्ष मे बाराह, ब्रह्मा, भगवती, चामुण्डा, वैष्णवी, नारायण, इन्द्र, नागकन्या, कुबेर, सूर्य, भैरव, बुद्ध आदि की प्रतिमाए है । दूसरे कक्ष मे बर्तन, चर्खे आदि है । एक अन्य कक्ष मे तोपे, तलवारें इत्यादि । सी कक्ष मे नेपोलियन बोनापार्ट की वह तलवार है, जो राणा जग बहादुर को भेंट में दी गई थी । एक कक्ष मे चमडे की एक तोप है, जो नेपाल-तिब्बत की लडाई मे तिब्बतियो से सन १८५६ मे छीनी गई थी । सी कक्ष मे एक हाथी के अग्रभाग की री तथा एक बडी मछली के दो लम्बे जबडे है । मिट्टी और धातु के बर्तन भी । एक अन्य कक्ष मे कृषि का सामान है ।

दूसरी मजिल मे शस्त्रास्त्रो का अच्छा सग्रह है। अलग-अलग राजाओ के अपने-अपने हथियार है। लोहे के अभाव मे किसी जमाने मे चमडे की तोपें बना करती थी। उनके नमूने भी वहा मौजूद है। कुछ वे हथियार भी है, जो दुश्मनो से छीने गए थे।

तीसरी मजिल मे पोशाकें, पगडिया, सेनापतियो की टोपिया, तमगे आदि है। हस्तलिपियो का भी सग्रह है। इसी कक्ष मे लुम्बिनी मे भगवान बुद्ध के जन्म की स्मृति मे निर्मित 'महेंद्र-स्तम्भ' है और मृत पक्षी, शेर, मगर, वनमानुस आदि है।

इस कक्ष मे राजा महेंद्र और रानी रत्न राजलक्ष्मी देवी के साथ चाऊ एन लाई का रेशम पर कढा हुआ चित्र है। दूसरा चित्र प्रेसीडेंट अयूब के साथ है। लेकिन पूरे कक्ष मे भारतीय नेताओ के चित्रो का अभाव है।

दूसरा बौद्ध खड है, अर्थात उसमे मुख्यत बुद्ध की प्रतिमाए है यहा पर भी बौद्ध तथा हिन्दू धर्म की समन्वय-बोधक अनेक मूर्तिया है। इन मूर्तियो के बीच मलका (विक्टोरिया) तथा जार्ज पचम के चित्र दीख पड़ते है।

नेपाली भाषा मे हिन्दी के बहुत-से शब्दो का समावेश हुआ है। चौराहो पर लिखा है—'बाटो काटने ठाऊ'। बाट माने रास्ता, काटने माने पार करने, ठाऊ माने स्थान, अर्थात् पैदल रास्ता पार करने की जगह। इसी प्रकार चौराहो पर लाल सिगनल होने पर रुकने के स्थान पर लिखा है—'प्रतीक्षा रेखा'। लैटर-बक्स पर लिखा है—'पत्र-मजूषा'। सुप्रीम कोर्ट के लिए 'सर्वोच्च न्यायालय' 'नो एट्री' के लिए 'प्रवेष निषेध', 'नो ट्रैसपास के लिए 'अतिक्रमण निषेध'—ऐसे दस-पाच नही, सैकडो शब्द हिन्दी-सस्कृत के कदम-कदम पर लिखे दीख पड़ते है, या बोलने मे सुनाई देते है। वहा का सरकारी तथा गैरसरकारी सारा कारोबार नेपाली भाषा मे चलता है। कुछ साइनबोर्ड कही-कही अग्रेजी मे दीख पडते है, लेकिन अधिकाश बोर्ड तो हिन्दी तथा देवनागरी अक्षरो मे है। वहा की लिपि देवनागरी ही है।

: ५७ :

ऐतिहासिक नगरी पाटन

काठमाण्डू उपत्यका मे थोडे-थोडे फासले पर कई ऐतिहासिक नगर हैं, जो वहा के विभिन्न राजाओ की राजधानिया रही थी। अब वे मिलकर एक राज्य का अग बन गई है, पर उनका आज भी अपना व्यक्तित्व है। इनमे पाटन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कला-प्रेमियो के लिए तो वह बहुत ही रोमाचाकारी है। काठमाण्डू से दक्षिण-पूर्व मे लगभग साढे तीन मील पर वह है। रास्ते मे सचिवालय, सर्वोच्च न्यायालय आदि के भवन देखते हुए पाटन पहुचे। वास्तव मे उसकी जैसी ख्याति सुनी थी, वैसा ही उसे पाया। यो ऊपर से देखने में वह एक मामूली-सा कस्बा जान पडता है, उसकी छोटी-छोटी पतली गलिया है, पुराने ढग के मकान है, छोटा-सा बाजार है, लेकिन कला-प्रेमी आखो से छिपा नही रहता कि वहा पर कला की दृष्टि से कितनी अमूल्य निधि है।

पाटन का पुराना नाम ललितपुर है, जिसका अर्थ है 'सौंदर्य की नगरी'। उसका निर्माण काठमाण्डू के ढग पर ही हुआ है, पर उसके कुछ चौक काठमाण्डू के चौको की अपेक्षा कुछ बडे है। सच बात यह है कि काठमाण्ड मे जहा एक आधुनिक नगर के दर्शन होते है, वहा पाटन या ललितपुर मे वह नेपाल दिखाई देता है, जिसकी सस्कृति आधुनिकता के बाने से आज भी अछूती है। उसकी सडको और मदिरो मे आज भी प्राचीन सस्कृति सुरक्षित है। नेपाली स्थापत्य कला का वह एक उत्तम नमूना है। कई-कई मजिल के मदिर आज भी वहा विद्यमान है। बौद्ध सस्कृति के लिए तो ललितपुर सदा विख्यात रहा है। वहा के पगोडाओ (बौद्ध मदिरो) को देखकर वर्मा, थाईलैण्ड तथा कम्बोज आदि के मदिरो का स्मरण हो आता है।

इस छोटे-से नगर मे कई मदिर दर्शनीय है। सबसे बडी बात यह देखने मे आती है कि वहा पर विभिन्न धर्मों के देवालय है। एक ही स्थान पर कृष्ण मदिर, विष्णु मदिर, शिव मदिर, बुद्ध मदिर आदि है।

हम लोग सबसे पहले **'कृष्ण मंदिर'** देखने गए। मल्ल-राजाओं के निवास-स्थान की सबसे खास चीज यह कृष्ण मंदिर है। पाषाण-कला की दृष्टि से यह अद्वितीय है। वर्षों तक नेपाली कलाकार तथा दस्तकारों ने रात-दिन काम करके छेनी-हथौड़ी की मदद से इस विशाल मंदिर की रचना की होगी। वह पंचमंजिला है। फतहपुर सीकरी के पंचमहल की भांति उसकी रचना हुई है। मंदिर की दीवारों पर चारों ओर रामायण और महाभारत के दृश्य अंकित हैं। पंद्रहवीं शताब्दी में राजा सिद्धिनरसिंह मल्ल ने इसका निर्माण कराया था। मंदिर के ठीक सामने इस राजा की विशाल प्रतिमा है, जो प्राचीन राजमहल की ओर उन्मुख है। कहते हैं, तीस साल पहले बड़े जोर का भूचाल आया था। सारे मंदिर गिर गए थे, पर इस मंदिर को आंच भी नहीं आई।

महाबुद्ध मंदिर भी पुरातत्त्व की दृष्टि से कम महत्त्व का नहीं है। यह मंदिर बहुत-कुछ बोध गया के मंदिर से मिलता-जुलता है। इस विशाल मंदिर की सबसे बड़ी खूबी यह है कि इसके प्रत्येक पट्ट पर बुद्ध की एक-एक कलापूर्ण मूर्ति बनी है।

'मछेन्द्रनाथ का मंदिर' दरबार चौक के बाहर के अनेक मंदिरों के बीच है। इसका निर्माण सन १४०८ में हुआ था। उसकी छत में संगमरमर की कारीगरी देखने योग्य है। मछेन्द्रनाथ को हिन्दू और बौद्ध दोनों मानते हैं।

'हिरण्यवर्ण महाविहार' को बिना देखे ललितपुर की यात्रा अधूरी रह जाती है। यह मंदिर एक गली के भीतर है। अपरिग्रही भगवान बुद्ध को खूब सजाकार परिग्रह से सज्जित करके प्रतिष्ठित किया गया है। मुख्य मंदिर के ऊपर तीन पगोडा हैं, जिनकी छतों पर सोने का बढ़िया काम हो रहा है। इस मंदिर की दीवारों पर बुद्ध के जीवन के दृश्य अंकित हैं।

इन मंदिरों के अतिरिक्त वहां पर **कुंभेश्वर शिव-मंदिर, भीमसेन मंदिर** आदि भी देखने योग्य हैं। भीमसेन के मंदिर को व्यापारी समुदाय मानता है, क्योंकि वे मानते हैं कि भीम उनके मनोरथ पूरे कर देते हैं।

'दरबार चौक' की शान तो निराली ही है। वहां के मंदिरों के केन्द्र में यह चौक है। वस्तुतः यह एक नहीं, अनेक चौकों का समूह है। इन चौकों

मूर्तिया तो है ही, लकड़ी का काम भी अद्भुत है। मंदिर भी कई है। फ्रेंच विद्वान सिल्वन लेवी ने ठीक ही लिखा है, "ललितपुर का दरबार-चौक एक ऐसा आश्चर्य है, जिसका वर्णन शब्दो मे नहीं हो सकता।"

वह आगे लिखता है, "अतीत के ये स्मारक चकाचौंध मे डालनेवाले दृश्यो की याद दिलाते है। ऐसी निधि की महिमा का बखान कौन कर सकता है।"

इस चौक के निर्माण मे जाने कितने कला-विदो के हाथ लगे होंगे? काठ पर सुनहरी, नीली तथा लालवर्ण की कारीगरी दर्शको को मुग्ध कर देती है।

इन चौको मे **'सुन्दर चौक'** तथा **'महारानी का स्नान-घर'** आदि बहुत सी चीजे दर्शको का ध्यान अपनी ओर खीचती है। कुछ मूर्तिया तो इतनी सजीव है कि उन्हे देखते-देखते जी नहीं भरता।

छोटे-से नगर के बाजार का बड़ा होना कहा सभव है, पर उसमे आवश्यकता की प्राय सभी चीजो के साथ लोकजीवन की अच्छी झाकी मिल जाती है। शहर की चारों दिशाओ मे चार स्तूप हैं। उनके निर्माण के पीछे सभवत यह भावना रही होगी कि वे आपदाओ से शहर की रक्षा करेंगे।

तुलसी मेहरजी के **'चर्खा प्रचारक गुठी'** तथा **महिला उद्योग मदिर** अच्छा लोकोपयोगी कार्य कर रहे है। लगभग ८० महिलाए उद्योग मदिर मे काम करती हैं। उनमे से अधिकाश बाहर से काम पर आती है। चर्खा प्रचारक गुठी खादी के उत्पादन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। उसके द्वारा लगभग ७५ हजार रुपया वार्षिक की खादी की खपत हो जाती है।

'शंखमूल घाट' पर, जो कि बागमती के तट पर है, श्री तुलसी मेहरजी का निवासस्थान है। धार्मिक दृष्टि से यह बड़ा पवित्र है। उससे कुछ ही गज के फासले पर बागमती, मनोहरा तथा रुद्रमती नदियो का सगम है। प्रयाग के सगम की भाति रुद्रमती यहा अदृश्य रहती है। स्थान निर्जन है। वह एक धर्मशाला है, पर सुनसान तथा श्मशान भूमि पर होने के कारण शायद ही कोई उसमे ठहरने का साहस कर सकता था। उसी के ऊपर की मजिल मे तुलसी मेहरजी की आठ फुट चौड़ी, पन्द्रह फुट लम्बी और पाच

फुट ऊंची कोठरी है। कोठरी क्या, साधना-स्थली कहिये। यहीं से तुलसी मेहरजी वर्षों से पाटन, मनोहरा, जनकपुर आदि में रचनात्मक प्रवृत्तियों को बड़ी निष्ठापूर्वक और परिश्रम से चला रहे हैं।

इंडियन एण्ड मिशनर की ओर से एक औद्योगिक केन्द्र बन रहा है, पर अभी उसकी शुरूआत ही हुई है।

: ५८ :

कला की अपूर्व स्थली

काठमाण्डू से ६ मील पर एक और नगर है भक्तपुर। वह भी अपने ढग का निराला है। उसकी स्थापना सन ८८९ मे राजा आनन्द मल्ल ने की थी। यह नगरी 'भातगाव' के नाम से प्रसिद्ध है। इसका अर्थ होता है 'भक्ति का स्थान'। इस नगरी की सबसे बड़ी बात है, वहा के निवासी, सुन्दर मदिर और पगोडा।

रास्ते मे छिर्मीछिर्मी (मध्यपुर) गाव को देखते हुए भक्तपुर गये। छिर्मी सागभाजी तथा मिट्टी के बर्तनो के लिए दूर-दूर तक मशहूर है। घर-घर मे छोटे-बडे बर्तन बनते है और उनकी खपत सारी वादी मे होती है। बर्तनो का काम देखते हुए भक्तपुर पहुचे।

भक्तपुर को देखकर नेपाल की प्राचीन सस्कृति का बोध होता है। इस तथा अन्य नगरो मे आज भी लकडी की इतनी सुन्दर कारीगरी है कि देखकर दातो तले उगली दवा लेनी पडती है। मकानो के ऊपरी भागो मे काठ के कगूरे आदि ऐसे जडे है, जैसे अगूठियो मे रत्न जडे हो।

भक्तपुर की सबसे दर्शनीय वस्तु **'दरबार चौक'** है। उसके चारो ओर महल और प्राचीन मदिर है। उसका स्वर्ण द्वार तथा महल की ५५ अलकृत खिडकिया देखते ही बनती है। इस स्वर्ण-द्वार का निर्माण राजा रणजीत मल्ल के समय मे सन १७५६ मे हुआ था। प्रत्येक पक्ति मे ५५ खिडकिया राजा यक्ष्य मल्ल के समय मे सन १४२७ मे बनी थी और उनका पुनरुद्धार सन १७८६ मे हुआ।

स्वर्ण-द्वार की कला वास्तव मे बेजोड है। कला-शास्त्री पर्सी ब्राउन ने लिखा है, "इस द्वार का कला अथवा धार्मिक पहलू से पूरी तरह वर्णन करना असभव है। उनसे नेवारो की बुद्धिमत्ता, कलात्मकता तथा धार्मिकता का पता चलता है।"

इस महल के अन्दर सबसे आकर्षक हमे **कुमारी चौक** लगा। उसमे

अन्य मूर्तियो के साथ कालिन्दी, उग्र चण्डी, पचमुखी हनुमान, माहेश्वरी, सिद्धि विनायक आदि की बीसियो बड़ी ही सजीव मूर्तिया हैं। दुर्गा की मूर्तियो का तो कहना ही क्या! उससे पहले के एक चौक मे अष्टादश भैरव, तुलजा भवानी आदि की मूर्तिया भी दर्शनीय हैं। उन्हें देखकर उनके निर्माता की भक्ति-भावना के आगे श्रद्धा से सिर झुक जाता है। द्वार के बाहर उसके निर्माता राजा भूपतेन्द्र मल्ल की विशाल मूर्ति है।

'नयांतपोला मन्दिर', जोकि वहा के सबसे ऊचे मदिरो मे है, सन १७०८ मे शिव की आराधना के लिए बनाया गया था। वह पाच मजिल का है और वे पाचो ही मजिलें कला की दृष्टि से अभूतपूर्व हैं। प्रत्येक मंजिल का आकार-प्रकार बहुत ही आकर्षक है।

उनकी सीढियो पर दोनो ओर द्वारपाल, नरसिह, वाराह आदि की पाषाण मूर्तिया हैं। उनकी विशेषता यह है कि पहली सीढी की मूर्तियो से दूसरी की दस गुनी, तीसरी की उससे दस गुनी और चौथी की उससे दस गुनी भारी है। सबसे ऊपर की मूर्तिया अत्यन्त लोकप्रिय हैं। यह मदिर एक चौक के बीच मे बना हुआ है और कुमारी देवी का है।

इसके अतिरिक्त **'दत्तात्रेय का मन्दिर'**, जो कि ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर को समर्पित है, देखने योग्य है।

तीन सौ गज लम्बी और सौ गज चौडी, **'सिद्ध पोखरी'** का भी वहा बडा माहात्म्य है। उसे राजा मल्ल ने सन १६४० मे बनवाया था।

भक्तपुर छोटी-सी जगह है, पर वहा कला की सस्कृति की, इतनी वस्तुए हैं कि बारीकी से देखें तो महीनो मे भी पूरी न हो।

: ५९ :

रचनात्मक तथा औद्योगिक विकास

काठमाण्डू की उपत्यका मे देखने को बहुत-कुछ है । काठमाण्डू का विश्वविद्यालय, कालेज, महाराजा का प्रासाद, रानाओ के महल, बाजार आदि बहुत-कुछ है, जो मनोरजन के साथ दर्शको को ज्ञानवर्द्धक सामग्री प्रदान करता है । काठमाण्डू का बाजार बाहर के मुल्को के सामान से अटा पडा है । यो चीन के साथ हमारा झगडा है, पर भारतीय व्यापारी बेधडक चीनी माल बेचते है । बहुत-सी दुकानो पर लिखा रहता है--यहा र , और चीनी माल बिकता है । जोहो, तस्वीर का दूसरा पहलू भी है। रचनात्मक तथा औद्योगिक दृष्टि से नेपाल का बडी तीव्रता से विकास हो रहा है । मनोहरा ग्राम के 'गाधी आदर्श महिला विद्यालय' आदि को देखे बिना वहा के रचनात्मक कार्य की कल्पना नही हो सकती । 'नेपाल गाधी स्मारक निधि' के अन्तर्गत वहा कई सस्थाए काम कर रही है । जनक-पुर के 'गाधी सेवाश्रम' और मनोहरा ग्राम के 'महिला विद्यालय' का कार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है । अन्य केन्द्र भी जन-सामान्य की अच्छी सेवा कर रहे है । महिला विद्यालय का मूल-मत्र मुझे बडा प्रिय लगा ।

* ज्ञान प्राप्त करो कर्म करने के लिए
* कर्म करो ज्ञान प्राप्त करने के लिए
* स्वावलम्बी बनो जीने के लिए
* जीओ सेवा करने के लिए ।

इन सारे केन्द्रो मे अनेक भाई-बहन सेवा-भावना तथा लगन से कार्य कर रहे हैं । उनका मुख्य उद्देश्य वहा की सामान्य जनता को शिक्षित करना ही नही, उन्हें स्वावलम्बी बनाना भी है, साथ-साथ उनके वर्तमान स्तर को भी ऊचा उठाना है । विद्यालय, उद्योग तथा खादी-केन्द्र सभी इस दिशा में प्रयत्नशील हैं ।

भौगोलिक दृष्टि मे नेपाल छोटा-सा देश है । अत उसके साधन

सीमित होना स्वाभाविक है। पर वह अपने साधनो का पूरा उपयोग कर रहा है। बाहरी सहायता भी उसे काफी मिल रही है। 'इडियन एड मिशन' उसके चहु मुखी विकास मे पूरी दिलचस्पी ले रहा है। आर्थिक सहायता भी दे रहा है। इसी प्रकार अमरीका ने भी वहा पर एक बडा औद्योगिक केन्द्र स्थापित किया है। वह अभी पूरा नही हुआ है। लेकिन उसे पूरा करने के लिए तेजी से प्रयास हो रहा है। पनौती मे जलविद्युत परियोजना चल रही है। कुछ समय पहले के छोटे से गोचर हवाई अड्डे को तो अब पहचानना ही मुश्किल है। वह इतना विशाल हो गया है कि वहा बडे-से-बडे जहाज मजे मे उतर सकते है। महेन्द्र-राजमार्ग बनकर तैयार हो ही गया है। इस तरह काठमाण्डू को ल्हासा से जोडनेवाली सडक बन रही है। इस सडक के लगभग १४ मील के हिस्से को देखने का हमे मौका मिला। आगे बनेला गाव मे, जो कि अत्यन्त सुन्दर स्थान है, रचनात्मक कार्यो का अच्छा केन्द्र विकसित हो रहा है। 'गाधी स्मारक निधि' की आर्थिक सहायता और तुलसी मेहरजी एव उनके सहयोगियो के प्रयत्न से वहा अबर चर्खे का एक बडा केन्द्र तैयार हो रहा है। उसकी इमारत का कुछ भाग बन गया है, कुछ बन रहा है। वहा एक स्कूल भी चल रहा है, जिसमे आसपास के स्थानो के लडके-लडकिया सर्वागीण विकास की शिक्षा पाते है। नेपाल की आबादी लगभग १ करोड है, जिसमे से करीब आधी तराई मे रहती है। शिक्षितो की सख्या बहुत ही सीमित है। लोगो मे अन्धविश्वास आज भी बुरी तरह फैले हुए है। जरा-जरा-सी बात पर भैसो की बलि चढा दी जाती है। हमारे सामने ही एक दिन खुलेआम बाजार मे भैसे की गर्दन उडा दी गई। अत शिक्षा का व्यापाक प्रसार आवश्यक है। उद्योग आदि की दृष्टि से भी अभी बहुत कुछ काम होने को बाकी है। हमे पूरी आशा है कि इन सब योजनाओ के साथ साथ बालाजू औद्योगिक क्षेत्र के विकसित होने से नेपाल के अभ्युदय मे पर्याप्त सहायता मिलेगी।

नेपाल के यातायात के साधन आज भी बहुत अपर्याप्त है। पार्वत्य प्रदेशो मे रास्ते बनाना आसान नही होता। पहाडो को काटकर, जग ो के बीच मे रास्ता बनाना सचमुच बडा मुश्किल होता है। फिर पहाडी नदिया और नाले और भी कठिनाई पैदा करते है। उन पर पुल बनते

बाढ आने पर मजबूत-से-मजबूत पुल तक उड जाते है ।

इतना होने पर भी नेपाल मे यातायात की काफी सुविधाए हुई है और हो रही है । दुर्गम स्थानो तक पहुचने के लिए रास्ते बनाने के प्रयत्न हो रहे हैं । पोखरा नेपाल का अत्यन्त रमणीक स्थान है । हमे मालूम हुआ है कि वहा जाने के लिए काठमाण्डू से सडक बनाने की योजना विचाराधीन है, वैसे हवाई जहाज से तो अब भी वहा जाया जा सकता है । और भी बहुत से दर्शनीय स्थान है ।

नेपाल मे पशुपतिनाथ का बहुत बडा तीर्थ है । भारत के कोने-कोने से धर्मपरायण नर-नारी वहा आने के लिए लालायित रहते है । कुछ जाते भी है । रेल, बस, टट्टू आदि पर जाने मे कई दिन लग जाते है । हमे विश्वास है कि यातायात की सुविधा हो जाने पर लोगो के आवागमन मे निश्चय ही वृद्धि होगी और उससे नेपाल तथा भारत दोनो को लाभ पहुचेगा । आर्थिक लाभ के साथ-साथ साहित्यिक एव सास्कृतिक आदान-प्रदान भी हितकारी होगा ।

: ६० :

उपसंहार

नेपाल दो बार जाने का मुझे मौका मिला, लेकिन समयाभाव के कारण काठमाण्डू की उपत्यका के बाहर नही जा पाया । २०९ मील के क्षेत्रफल की इस उपत्यका को भी पूरी कहा देख पाया । बहुत-सी दर्शनीय चीजे छूट गई । लेकिन कुल मिलाकर ऐसा लगा कि वहा कुछ अधिक समय व्यतीत करना चाहिए । पूरा देश रमणीक स्थलो से भरा पडा है । यद्यपि यातायात के साधनो की कमी के कारण वहा जितनी चहल-पहल होनी चाहिए, उतनी नही है, फिर भी वहा की भूमि और उस भूमि पर बसनेवाले निवासियो की अपनी विशेषता है । भूमि जितनी सुन्दर है, वहा के निवासी उतने ही भोले-भाले और आडम्बरहीन है । आमतौर पर महिलाए वहा चादर ओढती है । उन्हे उस पोशाक मे देखते है तो लगता है, भारत की बहने हमारे सामने है । भारत के साथ वहा के लोगो के सबध और प्रगाढ हो, इसके लिए नेपालवासी उतने ही लालायित है, जितने भारत-वासी नेपाल के साथ तादात्म्य स्थापित करने के लिए इच्छुक है । इस दिशा मे अनेक साहित्यिक एव सास्कृतिक सस्थाए काम कर रही है । 'नेपाल भारत मैत्री सघ' ने हम लोगो के सम्मान मे काठमाण्डू मे एक सभा का आयोजन किया । उसमे वहा के अनेक प्रमुख साहित्यकारो तथा नागरिको ने भाग लिया । भाई विष्णु प्रभाकर तथा मेरे भाषण हुए । अन्य साहित्यकार भी बोले । कुछ ने अपनी कविताए सुनाई, जिन्हे सुनकर लगा कि नेपाल की आत्मा ठीक वैसी है, जैसी कि भारत की । वहा के साहित्यिक एव सास्कृतिक क्षेत्र मे विकास की बडी सभावनाए है । पुराने साहित्यकार उच्च कोटि के साहित्य की रचना करते है । उदीयमान लेखक उभर कर ऊपर आ रहे है ।

२८ मई १९६५ को दूसरी बार नेपाल जाने का सयोग हुआ था । सौभाग्यवश इस बार हमारे वर्तमान राजदूत श्री श्रीमन्नारायण, उनकी पत्नी

मैत्रेयी बहन; सास्कृतिक सचिव डा० इन्दूशेखर, श्री तुलसीमेहरजी, नेपाल-कौसिल के सम्मानित सदस्य बधुवर खड्गमानसिहजी आदि सब वही थे। कितने आनन्द से पाच दिन उनके बीच व्यतीत हुए। इन तथा अन्य बधुओ और बहनो की आत्मीयता एव स्नेह को भुलाया नही जा सकता। श्रीमती खड्गमानसिह ने तो पिछली बार और इस बार भी अपने आतिथ्य मे हमे सदा के लिए जीत लिया।

एशिया मे नेपाल एकमात्र हिन्दू राज्य है। भारत और उसके बीच सस्कृति, धर्म और अध्यात्म की ऐसी मजबूत कडिया है, जो कभी टूट नही सकेगी। देशो के जीवन मे राजनैतिक उतार-चढाव आते रहते है, पर जिन सबधो की बुनियाद हृदय की एकता तथा पारस्परिक प्रेम पर होती है, उनके स्रोत बागमती और गगा की तरह सदा हरे-भरे रहते है।

●